श्री नवतत्व प्रकरण

मुसाफिर

शरीर

अनुकूल पवन

प्रतिकूल पवन

नाव में छिद्र

छिद्र बंध करना

पानी बाहर निकालना

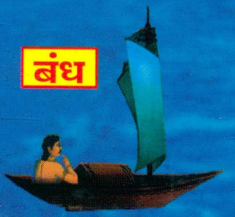

जीव से कर्म का संबंध

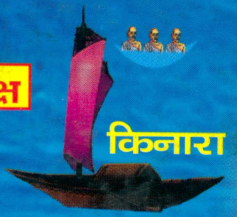

सकल कर्म क्षय

साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री

श्री जिनकान्तिसागरसूरि स्मा

जहाज मंदिर, मांडवला - जालोर (राज.)

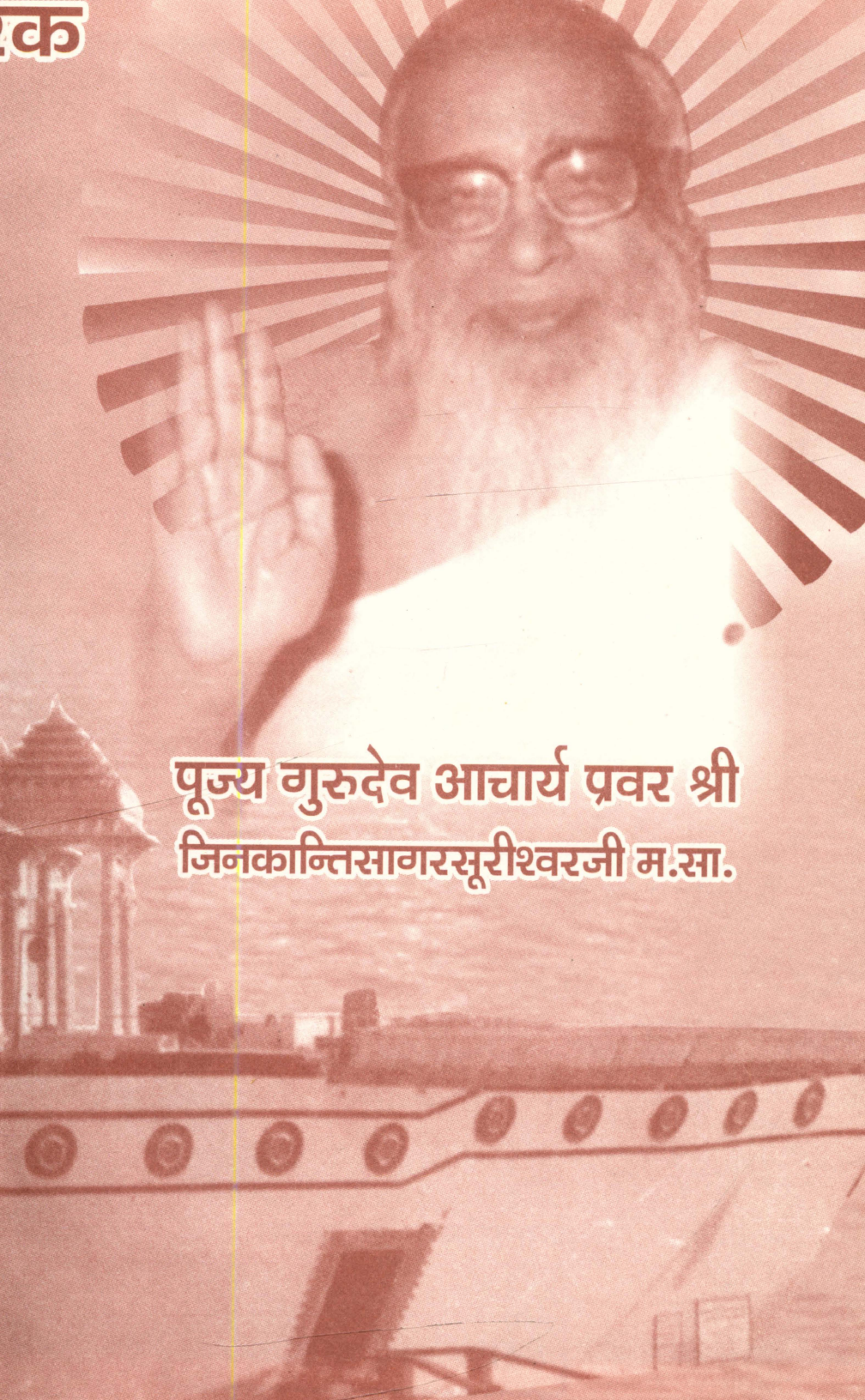

पूज्य गुरुदेव आचार्य प्रवर श्री
जिनकान्तिसागरसूरीश्वरजी म.सा.

चिंरतनाचार्य विरचित

श्री नवतत्व प्रकरण

(अर्थ-विवेचन-प्रश्नोत्तर सहित)

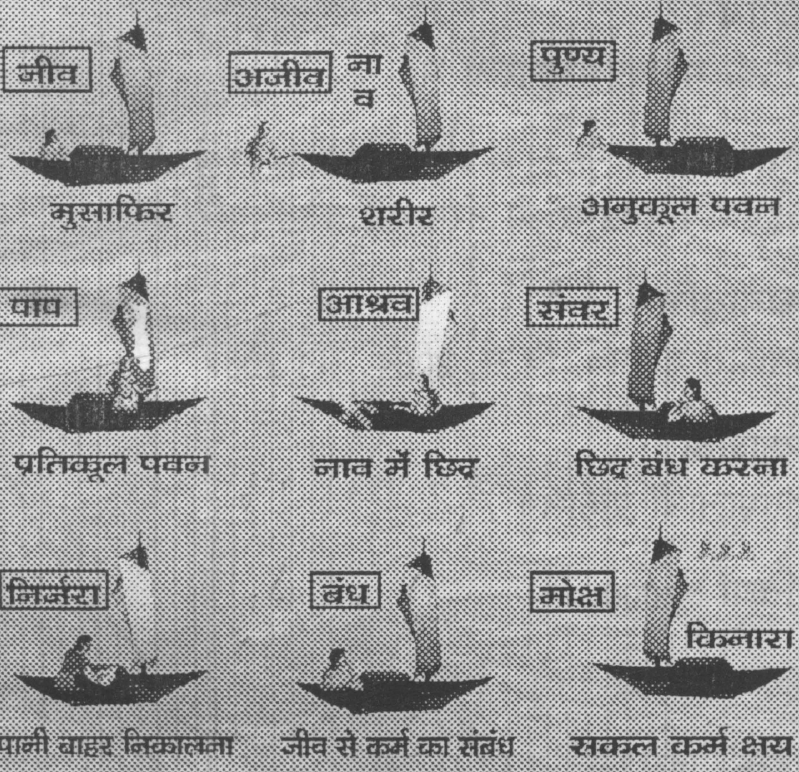

साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री

रतनमालाश्री प्रकाशन की तत्त्वज्ञान की मणियों से सजी अनुपम-माला

आशीष :
पू. गुरुदेव उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.
पूज्या गुरुवर्याश्री डॉ. विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा.

अनुवाद-विवेचन :
साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री

संशोधन :
मुनिश्री मनितप्रभसागरजी म.

संपादन :
विद्वद्वर्य पंडितप्रवर श्री नरेन्द्रभाई कोरडिया

प्रथमावृत्ति :
संवत्सरी महापर्व, वि.सं. 2064, सन् 2007

प्रकाशक :
रतनमालाश्री प्रकाशन

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : 80-00 रुपये

मुद्रक : जय जिनेन्द्र ग्राफिक्स
30, स्वाति सोसायटी, सेन्ट झेवियर्स हाइस्कूल रोड,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद-380 014.
फोन : (ओ.) 25621623, (घर) 26562795,
(मो.) 98250 24204

'त्वदीयमेव गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये'

"उस पावन एवं निर्दोष वीर-वाणी
को,
जिसके आधार पर मैं साधना
में
गतिमान हूँ।"

– साध्वी नीलांजना

अर्थ सहयोग

पूज्य गुरुदेव प्रज्ञापुरुष स्व. आचार्य प्रवर
श्री जिनकान्तिसागरसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्य
पूज्य गुरुदेव मरुधरमणि उपाध्याय प्रवर
श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.

पू. मुनि श्री मुक्तिप्रभसागरजी म., पू. मयंकप्रभसागरजी म.
पू. मनितप्रभसागरजी म., पू. मौनप्रभसागरजी म.
पू. मैत्रीप्रभसागरजी म., पू. मानसप्रभसागरजी म.
पू. मननप्रभसागरजी म. ठाणा ८
एवं
पूजनीया बहिन म. डॉ. विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या
पू. साध्वी श्री शासनप्रभाश्रीजी म., पू. नीतिप्रज्ञाश्रीजी म.
पू. विज्ञांजनाश्रीजी म. ठाणा ३
के शासन प्रभावक चातुर्मास (सन् २००७)
के उपलक्ष्य में

श्री महावीर स्वामी जैन श्वे. संघ,
फीलखाना, हैदराबाद
के ज्ञान खाते से प्रकाशित

आवश्यक सूचना

इस पुस्तक का प्रकाशन ज्ञान खाते से होने के कारण श्रावक-श्राविकाओं से निवेदन है कि इस पुस्तक का मूल्य चुकाकर ही उपयोग करें, अन्यथा ज्ञान-द्रव्य की विराधना का दोष लगता है।

अमृत-स्वर

तीन प्रश्न उठने जरुरी हैं और उनका समाधान भी जरुरी है।

पहला प्रश्न है - मैं कौन हूँ ?

दूसरा प्रश्न है - मेरा लक्ष्य क्या है ?

तीसरा प्रश्न है - लक्ष्य को पाने का रास्ता क्या है ?

इन तीन प्रश्नों में जीवन का राज छिपा है। मैं कौन हूँ, यह जाने बिना लक्ष्य के प्रति रुचि का जागरण संभव नहीं है। और लक्ष्य को पाने की उत्कट प्यास जगे बिना कोई भी व्यक्ति उसे पाने का रास्ता नहीं पूछा करता।

प्रस्तुत ग्रन्थ हमें इन तीन प्रश्नों का समाधान देता है। नवतत्त्वों में इन तीनों प्रश्नों के उत्तर छिपे हैं। और किसी ग्रन्थ का अभ्यास न भी कर पाये, लेकिन यदि इस ग्रन्थ का बोध प्राप्त कर लिया, तो आप जैन दर्शन और जीवन दर्शन का ज्ञान पा लेते हैं।

मुख्यतः तत्व दो ही है। जीव और अजीव ! इन दो तत्वों को ही तत्वार्थ सूत्र में सात और नवतत्व प्रकरण में नौ तत्वों के रूप में व्याख्यायित किया है।

जब जिनेश्वर विद्यापीठ की नींव रखी गई, तब पाठ्यक्रम के निर्माण एवं उसके प्रकाशन की विशद चर्चा चली। उसमें यह तय किया गया कि लेखन, विवेचन कुछ नवीनता लिये हों और अपने आप में पूर्ण हो। एक कार्ययोजना बनाई गई और आलेखन के लिये कार्य का विभाजन किया गया। उसके अन्तर्गत मुनि मनितप्रभ द्वारा जीव-विचार प्रकरण पर कार्य किया गया, जिसका प्रकाशन हो चुका है। कर्मग्रन्थ का प्रकाशन भी तैयारी में है।

नवतत्त्व के बहुत सारे संस्करण उपलब्ध होने पर भी यह संस्करण कुछ अलग और अनूठा है। जो न केवल पाठशालाओं के लिये उपयोगी होगा, पर साधु साध्वियों और अध्यापकों के लिये भी उपयोगी होगा।

साध्वी डॉ. नीलांजना ने इस आलेखन / विवेचन में बहुत परिश्रम किया है और नवतत्वों को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। उसमें प्रतिभा है, बुद्धि-वैभव है, तत्वबोध है। मैं कामना करूँगा कि भविष्य में अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग कर नये-नये ग्रन्थों के सर्जन करेंगी।

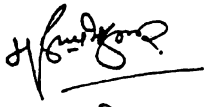

उपाध्याय मणिप्रभसागर

आशीः स्वर

जैनदर्शन की यह एक सर्व सामान्य नीति है कि वह अहिंसा का आचरण करने से पूर्व ज्ञान प्राप्त करे। 'पढमं नाणं तओ दया' ज्ञान के अभाव में आचरण अपनी सार्थकता नहीं बना सकता। ज्ञान की परिभाषा परमात्मा महावीर के अनुसार भाषागत विद्वत्ता या संसार से जुडी उच्चस्तरीय डिग्री नहीं बल्कि आत्मज्ञान है। उनका यह स्पष्ट कथन है कि 'जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ' जो एक (स्वयं) को जानता है, वह सर्व को जानता है।

आत्मज्ञान ही उसे अहिंसा पालन और संयम आचरण में राह दिखाता है। जिसे आत्मा का ज्ञान, स्वयं का ज्ञान न हो, वह संसार के पदार्थों को जानकर क्या करेगा ? जिसे स्वयं का ज्ञान है, उसे सृष्टि में फैले अन्य जीवराशि के संबंध में ज्ञान होना स्वाभाविक है और जिसे जीव एवं अजीव, इन दोनों का ज्ञान है, उसे संयम के आचरण एवं अहिंसा की साधना में बाधा नहीं आ सकती।

परमात्मा महावीर का यह स्पष्ट विधान है –

"जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणइ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सो हु नाहीइ संजमं॥"

जो जीव और अजीव इन दोनों तत्त्वों को नहीं जानता, वह संयम को कैसे जानेगा और संयम को जाने बिना संयम का पालन कैसे करेगा ? जो संयम का पालन नहीं करेगा, वह इस संसार से स्वयं की चेतना को मुक्त कैसे करेगा ?

भारतीय सभी धर्मदर्शनों ने मात्र चार्वाक को छोडकर इस सृष्टि की द्वैत के रूप में व्याख्या की है। किसी ने प्रकृति-पुरुष के रूप में तो किसी ने नाम और रूप से। जैनदर्शन ने इस सृष्टि को जीव और अजीव के रूप में व्याख्यायित-विश्लेषित किया है।

यद्यपि परमात्मा के लिये और जो भी परमात्मा होना चाहे उसके लिये मात्र चेतना का ही महत्त्व है, फिर भी अध्यात्म के क्षेत्र में जीव के साथ अजीव की व्याख्या भी प्रस्तुत हुई। इसका कारण यह है कि जब तक चेतना संसार

से मुक्त नहीं होती, तब तक उसका अजीव से संयोग बना रहता है। अजीव से मुक्त होने के लिये उसका अजीव को जानना आवश्यक ही नहीं बल्कि उसकी अनिवार्यता है क्योंकि जिससे मुक्त होना है, उससे मुक्ति आवश्यक क्यों है, यह जानना जरूरी है। इसलिये जीव के साथ अजीव का अध्ययन साधक के लिये अनिवार्य है।

प्रस्तुत ग्रंथ इसी द्वैत जीव और अजीव का विस्तार है। अनुजा शिष्या साध्वी नीलांजना की शैशव से ही तत्त्वज्ञान के प्रति विशेषरूचि रही है। उसके जीवन के विविध आयामों, चाहे लेखन हो या प्रवचन या अध्ययन, इन सभी में तत्त्वज्ञान की छाप अवश्य रहती है।

प्रस्तुत ग्रंथ भी उसी अभिरूचि का परिणाम है। निःसंदेह इस ग्रंथ की अपनी उपयोगिता है।

अगर प्रारंभिक स्तर पर कोई जैन तत्त्वज्ञान से संबंधित जानकारी लेना चाहे तो यह ग्रन्थ आसानी से उसकी पूर्ति कर सकता है। यह ग्रन्थ संक्षिप्त तथा विस्तृत, दोनों ही अपेक्षाओं पर खरा उतरता है।

साध्वी नीलांजना प्रज्ञासंपन्न एवं जागरूक चेतनायुक्त है। उसकी कोमल एवं मंजी हुई लेखनी ने इस ग्रंथ को जैसे प्राणवान् बना दिया है।

परिश्रमपूर्वक तैयार की गयी यह कृति तत्त्वजिज्ञासु पाठकों को स्वाध्याय की प्रेरणा देने के साथ अंतिम मंजिल मोक्ष की प्राप्ति में रूचि पैदा करे, यही इस लेखन की सार्थकता है।

साध्वी नीलांजना प्रस्तुत कृति पर ही इतिश्री न करें बल्कि वह साहित्य को और अधिक समृद्ध करती हुई शासन की सफलतम लेखिका एवं श्रेष्ठतम साधिका बने, इसी मंगल भावना के साथ...

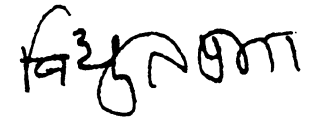

साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री

आत्मीय-स्वर

जीव की जीवन यात्रा की वास्तविक शुरूआत तत्त्व-संबोधि से होती है। जब तक जीव तत्व से अनभिज्ञ है, तब तक वह केवल मिथ्यात्व और अज्ञान का ही संपोषण करता है। वह अ-तत्त्व को तत्त्व का नाम देकर, जामा पहनाकर अपने आपको तसल्ली दे सकता है परंतु झूठी। तोषानुभव कर सकता है परंतु नकली ! आनंद पा सकता है लेकिन पराया !

कागज के फूल को व्यक्ति फूल तो कह सकता है परंतु उसमें सुगंध का अनुभव कैसे किया जा सकता है ? पीलियाग्रस्त व्यक्ति को हर पदार्थ सोना नजर आता है परंतु उसमें स्वर्णत्व कैसे हो सकता है ? ऐसी मिथ्या और भ्रम भरी समझ में तत्व का उजाला और जीवन का निचोड कैसे हो सकता है ?

मुश्किल तत्व को पाने की नहीं, समझने की है। जब तक तत्व समझ का हिस्सा नहीं बनता है, तब तक ही परेशानी है। जन्म और मरण की पीडाएँ हैं। तत्त्व को समझ लेने के बाद यथार्थ की गंगा स्वतः उपलब्ध हो जाती है। ठीक वैसे ही, दही मथा नहीं कि नवनीत मिला नहीं। पर नवनीत पाने के लिये दही को मथना होता है, परिश्रम करना होता है।

तत्व को पाना इसलिये सरल है कि उसे कहीं ओर से लाना नहीं है। वह बाहर से आना नहीं है। वह मेरे पास ही है। मेरे सामने ही है। बस ! दृष्टि को बदलना होता है। नयन में श्रद्धा का अंजन आंजना होता है। व्यवहार को मांजना होता है। कदमों को अपनी दिशा में मोडना होता है।

चला नहीं कि पाया नहीं ! समझा नहीं कि मिला नहीं ! उतरा नहीं कि उपलब्ध हुआ नहीं !

पर इस तात्विक दृष्टि का विकास कर पाना बहुत कठिन है क्योंकि जीव अनादि-अनंतकाल से परायों में जीता जाया है मोह के कारण। पदार्थों में बंधता आया है नासमझी के कारण। अपना मानता आया है मूर्च्छा के

कारण ।

इस ममत्व और अ-तत्व के प्रति लगाव के दुष्चक्र को भेदना अतिदुष्कर है । इसलिये परमात्मा महावीर जगत के जीवों को पुनः पुनः यही संदेश देते हैं कि तत्त्व को जानो । तत्त्व को जानकर, मानकर उसके रहस्य को उपलब्ध करो ।

और जब तत्त्व का स्वरुप, रहस्य और खजाना हाथ लग जाता है, तब वह जीव परम समाधि को उपलब्ध हो जाता है । फिर न राग रहता है, न द्वेष । वीतरागता का प्रकाश उतर आता है आत्मा के असीम धरातल पर ।

संपूर्ण जगत पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि इस जगत में मुख्यतः दो ही तत्व हैं - एक जीव तत्व और दूसरा अजीव तत्व ।

तत्वज्ञान को सरल बनाने के लिये आगमों में नवतत्त्वों को निरुपित किया गया है । प्रश्न हो सकता है कि तत्वार्थ सूत्र में तो सात तत्त्वों का ही वर्णन है । समाधान यह है कि उसमें आश्रव तत्व का जो वर्णन है, पुण्य और पाप, इन दो तत्वों को पृथक् न मान कर उन्हें आश्रव में ही सम्मिलित कर लिया है । इस अपेक्षा से सात भी वही हैं और नौ भी वही हैं ।

नवतत्त्व जैन दर्शन की आधारशिला है और रहस्य भी । जिसने नवतत्त्व को समझ लिया, समझो ! उसे जैन दर्शन समझ में आ गया । सब कुछ समाविष्ट हो गया नवतत्त्वों में ।

आगमों में यत्र-तत्र तत्व के मणि-मुक्ता बिखरे पडे हैं परंतु उनका परिशीलन कर पाना हर व्यक्ति के बस की बात नहीं हैं । इसी सोच के तहत निर्माण हुआ है नवतत्त्व प्रकरण का ।

तत्व प्रवेशी एवं तत्व को जानने की रुचि रखने वालों की रुचि को ध्यान में रखकर इस नवतत्त्व प्रकरण का ज्ञानी तत्वाचार्य ने लेखन किया है परंतु उनका नाम प्रकरण में उल्लिखित नहीं है ।

यह प्रकरण इतनी सुंदर शैली, सुगम भाषा एवं सहज समझ के साथ आलेखित किया गया है कि प्रारंभिक तत्वपिपासु के हृदय को छू जाता है,

आत्मा में उतर जाता है। इसलिये इसे यदि तत्व प्रवेशद्वार की कुंजी कहा जाये तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

मेरे परम प्रिय बहिन म. साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म., जिनका तत्त्व के क्षेत्र में अच्छा-ऊँचा ज्ञान है, ने इस नवतत्त्व प्रकरण को नयी, सरल और प्रांजल शैली में अनुवादित कर तत्वजिज्ञासुओं और ज्ञानपिपासुओं को बेनमून उपहार प्रदान किया है।

नवतत्त्व के पूर्व में अनेक अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं फिर भी इस नवीन अनुवाद में उन्होंने तत्व को मथकर जो नवनीत प्रस्तुत किया है, वह उनकी कसी और मंजी हुई लेखनी का साक्षात् प्रमाण है।

उन्होंने गाथार्थ-विवेचन की लडी में प्रश्नोत्तर - खण्ड की कडी को जोडकर प्रस्तुत कार्य अधिक उपयोगी बनाया है। मैं गौरवान्वित हूँ उनके इस साहित्यिक अनमोल अवदान पर। सुंदर और सरल अनुवाद कार्य में सफल बनी उनकी तात्विक प्रतिभा और ज्यादा उभरे तथा लेखनी नये-नये विषयों का स्पर्श करती रहे। यह मेरी शासनदेव से प्रार्थना है।

मेरा विश्वास है कि विदुषी अग्रजा का यह अनुवाद कार्य जन-जन के मध्य गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने में सौ फीसदी सफल बनेगा और तत्व के सागर में गोते लगा रहे तत्वजिज्ञासुओं को समाधान के मोती प्रदान करेगा। इन्हीं मनोकामनाओं के साथ....

मणि चरण रज

मुनि मनितप्रभसागर

अनुभूत-स्वर

भारतीय साहित्य में तत्त्व के संबंध में गहन और सूक्ष्म दृष्टि से अनुशीलन-परिशीलन हुआ है। 'तत्त्व' शब्द का निर्माण 'तत्' शब्द से हुआ है, जो संस्कृत भाषा में सर्वनाम शब्द है। सर्वनाम शब्द सामान्य अर्थ के वाचक होते हैं। शब्द तत् से भाव अर्थ में 'त्व' प्रत्यय लगकर 'तत्त्व' शब्द बना है, जिसका अर्थ होता है – उसका भाव – 'तस्य भावः तत्त्वम्'। अतः वस्तु के स्वरूप को और स्वरूपभूत वस्तु को तत्त्व कहा जाता है।

दर्शन के क्षेत्र में तत्त्व शब्द गंभीर चिन्तन प्रस्तुत करता है, ऐसा कहने की अपेक्षा यह कहना ज्यादा उपयुक्त होगा कि चिन्तन-मनन का प्रारंभ तत्त्व से ही होता है। द्वादशांगी की रचना का मूल-बीज है - 'किं तत्त्वम्' तत्त्व क्या है ? यही जिज्ञासा दर्शन के उद्भव का आधार है।

लौकिक दृष्टि से तत्त्व शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे - वास्तविकता, यथार्थता या सारांश। दार्शनिकों ने प्रस्तुत अर्थ को स्वीकार करते हुए भी परमार्थ, द्रव्य-स्वभाव, पर-अपर, शुद्ध, परम आदि के लिये भी तत्त्व शब्द को प्रयुक्त किया है। वेदों में ईश्वर या ब्रह्म के लिये तत्त्व शब्द का उपयोग किया गया है। सांख्य मत में जगत के मूल कारण के रूप में तत्त्व शब्द का प्रयोग हुआ है।

सभी दर्शनों ने अपनी-अपनी दृष्टि से तत्त्वों का निरूपण करते हुए यह मन्तव्य भी प्रस्तुत किया है कि जीवन में तत्त्वों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जीवन और तत्त्व एक दूसरे के पर्याय हैं। जीवन से तत्त्व को पृथक् नहीं किया जा सकता और तत्त्व के अभाव में जीवन गतिशील नहीं हो सकता। जीवन से तत्त्व को पृथक् करने का अर्थ है - आत्मा के अस्तित्व से इन्कार करना।

समस्त भारतीय दर्शन तत्त्व के आधार पर ही खडे हुए हैं। आस्तिक दर्शनों में से प्रत्येक दर्शन ने अपनी-अपनी परम्परा और कल्पना के अनुसार तत्त्व-मीमांसा की स्थापना की है। न्यायदर्शन ने तत्त्व के रूप में सोलह

पदार्थों की विवक्षा की है - प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान। वैशेषिक दर्शन में मूल तत्त्व सात माने गये हैं - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। सांख्य तथा योग दार्शनिक पच्चीस तत्त्वों की मीमांसा करते हैं - प्रकृति, महत्, अहंकार, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र) पांच कर्मेन्द्रियाँ (पायु, उपस्थ, मुख, हाथ, पाँव) पांच तन्मात्राएँ (वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और शब्द), मन, पंच महाभूत (पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु, आकाश) और पुरुष। मीमांसा दर्शन वेदविहित कर्म को सत् और तत्त्व मानता है। वेदान्त दर्शन एकमात्र ब्रह्म को ही सत् मानता है। बौद्धदर्शन ने चार आर्य-सत्य की स्थापना की है - १. दुःख, २. दुःख-समुदय, ३. दुःख-निरोध, ४. दुःख-निरोध मार्ग। इन आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त भौतिकवादी चार्वाक दर्शन भी पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि, ये चार तत्त्व मानता है। वह आकाश को नहीं मानता क्योंकि उसका ज्ञान प्रत्यक्ष न होकर अनुमान से होता है।

तत्त्व जैनदर्शन का मूल आधार है। जैनदर्शन का विराट् महल तत्त्व की गहरी और सुदृढ नींव पर टिका हुआ है। तत्त्व ही अध्यात्म की प्राण-पूँजी है। जिसने तत्त्व अर्थात् यथार्थ स्वरूप को समझ लिया, उसने जीवन का रहस्य समझ लिया।

जैन साहित्य में विभिन्न स्थलों पर सत्, सत्त्व, तत्त्व, तत्त्वार्थ, अर्थ, पदार्थ और द्रव्य-इन शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया गया है। आचार्य उमास्वाति ने अपने तत्त्वार्थ सूत्र में तत्त्वार्थ, सत् और द्रव्य शब्द का प्रयोग तत्त्व अर्थ में किया है अतः जैनदर्शन में जो तत्त्व है, वह सत् है और जो सत् है, वह द्रव्य है।

सत् क्या है ? तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार जो उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य युक्त है, वही सत् है, सत्य है, तत्त्व है, द्रव्य है।

तत्त्व कितने है ? इस प्रश्न का उत्तर प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थों का आलोडन करने पर विभिन्न संख्या में उपलब्ध होता है। संक्षेप तथा विस्तार की दृष्टि से तत्त्व के प्रतिपादन की मुख्य रूप से तीन शैलियाँ है। एक शैली

के अनुसार तत्त्व दो हैं - जीव तथा अजीव। दूसरी शैली के अनुसार तत्त्व सात हैं – जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। तीसरी शैली के अनुसार तत्त्व नौ हैं - जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध तथा मोक्ष। दार्शनिक ग्रन्थों में प्रथम तथा द्वितीय शैली मिलती है जबकि आगम साहित्य में तृतीय शैली के दर्शन होते हैं। भगवती, प्रज्ञापना, उत्तराध्ययन आदि में तत्त्वों की संख्या नौ बतायी गयी है परन्तु स्थानांग में दो राशि का उल्लेख है – जीव-राशि, अजीव-राशि। आचार्य नेमिचन्द्र ने भी द्रव्य संग्रह में तत्त्व के दो भेद प्रतिपादित किये हैं - जीव तथा अजीव। आचार्य उमास्वाति ने पुण्य तथा पाप को आश्रव या बंध तत्त्व में समाविष्ट कर तत्त्वों की संख्या सात मानी है।

एक जिज्ञासा सहज ही हो सकती है कि जब जीव और अजीव इन दो तत्त्वों में ही संपूर्ण तत्त्व-सार समाविष्ट हो सकता है, तब नौ तत्त्वों का विस्तार क्यों किया गया ? इसका समाधान यों किया जा सकता है कि वस्तु को स्मृति में स्थापित करने की दृष्टि से भले ही समास (संक्षिप्त) शैली उपयुक्त हो परंतु बोध के लिये तो व्यास (विस्तार) शैली ही उपयुक्त है। यही कारण है कि शास्त्रकारों ने और उसके बाद अनेक आचार्यों ने वही शैली अपनायी है।

अद्यावधि पर्यंत प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी व गुजराती भाषा में नवतत्त्व पर अनेकानेक स्वतंत्र ग्रन्थों का निर्माण हुआ है।

नवतत्त्व प्रकरण की स्वतंत्र रचने करने-वालों में आचार्य उमास्वाति, देवेन्द्रसूरि, देवगुप्तसूरि, जयशेखरसूरि आदि के नाम प्रमुख रुप से उल्लेखनीय है। मूल नवतत्त्व प्रकरण पर विस्तृत वृत्ति की रचना भी अनेक श्रुतधरों द्वारा की गयी है। श्रीमद् देवेन्द्रसूरि, कुलमंडनसूरि, महोपाध्याय समयसुन्दरगणि आदि ने जहाँ नवतत्त्ववृत्ति का निर्माण किया है, वहीं साधुरत्नसूरि, श्री मानविजयगणि, श्री विजयोदयसूरि ने अवचूर्णि के लेखन द्वारा नवतत्त्व विषयक विवेचन प्रस्तुत किया है। श्री देवगुप्तसूरि रचित नवतत्त्व प्रकरण पर नवांगी वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि ने भाष्य की रचना की है और उसी भाष्य पर उपाध्याय श्री यशोविजयजी म.ने वृत्ति का निर्माण

भी किया है। श्री हर्षवर्धनगणि, पार्श्वचन्द्र आदि के द्वारा प्राकृत भाषा में रचित नवतत्त्व बालावबोध भी महत्त्वपूर्ण है, श्री मानविजयजी श्री मणिरत्नसूरि ने नवतत्त्व पर टबों का भी सर्जन किया है। और भी अनेक अज्ञातकर्तृक बालावबोध तथा टबे प्राचीन ज्ञानभंडारों में उपलब्ध होते हैं। गुजराती भाषा में भी कई श्रुत-साधक महापुरुषों ने नवतत्त्व पर रास, जोड, चौपाई, स्तवन आदि विविध विधाओं में अपनी कलम चलाई है। नवतत्त्व की तर्ज पर सप्त तत्त्व प्रकरण की रचना भी श्री हेमचंद्रसूरि व देवानन्दसूरि द्वारा की गयी है। इनके अतिरिक्त नवतत्त्व पर रचित और अनेक ग्रंथ हैं, जिनका यहाँ नामोल्लेख करना विस्तार भय से संभव नहीं है।

प्रस्तुत नवतत्त्व प्रकरण चिरंतनाचार्य द्वारा रचित है। कहीं - कहीं पर इसके रचनाकार के रुप में पार्श्वनाथ परम्परा के ४४वें पट्टधर देवगुप्ताचार्य का उल्लेख भी मिलता है।

नवतत्त्व प्रकरण अपने आप में एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। यह लघुकाय होने पर भी जैनदर्शन की संपूर्ण विषय-वस्तु अपने भीतर समेटे हुए हैं। तत्त्व हो या द्रव्य, कर्म हो या मार्गणा, सभी का विवेचन इसमें पूर्ण प्रासंगिक रुप से हुआ है। यह ग्रंथ अपने आप में एक ऐसा संपूर्ण शास्त्र है, जिसे तत्त्वशास्त्र कहा जाता है तो दर्शनशास्त्र, कर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र कहने में भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती। नौ-तत्त्वों का विवेच्य ग्रंथ होने से यह तत्त्वशास्त्र है। जीव तथा अजीव, इन दो तत्त्वों में षड्द्रव्य का विवेचन होने से यह दर्शन शास्त्र भी है। कर्म के स्वरुप, लक्षण, स्थिति, बंध के प्रकार तथा मूल व उत्तर प्रकृतियों का सांगोपांग विवेचन होने से यह कर्मशास्त्र भी है। समिति, गुप्ति, परीषह, यतिधर्म, भावना, चारित्र, तप आदि आत्मा को शुद्ध-विशुद्ध करने वाले विविध उपायों का विश्लेषण होने से यह नीतिशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र भी है।

जब मैंने अपने स्वाध्याय के अंतर्गत इस विशिष्ट ग्रंथ का पारायण किया तो इस ग्रंथ के प्रति मेरे हृदय में एक अनूठी श्रद्धा का जन्म हुआ। मुझे लगा, अगर इस ग्रंथ को सरल, सहज भाषा में प्रस्तुत किया जाय तो तत्त्वजिज्ञासु इसके माध्यम से अवश्य ही तत्त्व के प्रति और अधिक

श्रद्धान्वित हो सकेंगे ।

उस समय ही संयोग से पूज्य गुरुदेव उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी संघीय आवश्यकता को महसूस करते हुए कहा कि प्रकरण चतुष्टय पर पुनः नवीनता से कलम चले, जिसमें विवेचन के साथ विषय से संबंधित विस्तृत प्रश्नोत्तरी भी संलग्न हो । जीव विचार प्रकरण का कार्य उन्होंने बंधुमुनि मनितप्रभजी को सौंपा तो नवतत्त्व के लिये मुझे आदेश दिया ।

'आज्ञां गुरुणां ह्यविचारणीया' मैंने सर झुकाते हुए आदेश को स्वीकार कर लिया और इस प्रकार यह कृति आठ माह के गहन परिश्रम से तैयार हो गयी । मैं पूज्यप्रवर के प्रति विनम्रभाव से नतमस्तक हूँ, जिन्होंने मुझे प्रस्तुत कृति के लेखन-विवेचन का आदेश देकर मेरी लेखन-क्षमता को अनावृत्त किया ।

जिनका वात्सल्यमय अनुग्रह मेरे अंतर में प्राण ऊर्जा बनकर प्रवाहित होता है, जिनका ममतामय सान्निध्य जीवन में प्रत्येक कदम पर मेरा मार्गदर्शन करता है, उन परम पूजनीया, श्रद्धेया, गुरुवर्या डॉ. विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. के श्रीचरणों में मेरी अगणित वंदनाएँ समर्पित हैं । प्रस्तुत कृति का निर्माण उन्हीं की उष्माभरी प्रेरणा का परिणाम है । अन्यथा मुझमें वह क्षमता कहाँ ? उनका अमीभरा वरदहस्त सदा मुझे भीगा भीगा रखे, यही एक मात्र काम्य है ।

मैं कैसे विस्मृत कर सकती हूँ मेरे प्रिय, लघुवयी अनुज मुनि मनितप्रभजी को, जिन्होंने अपने हर कार्य में मुझे अपना सहभागी बनाया है तो मेरे हर लक्ष्य संपूर्ति में भी जो सदैव सहयोगी रहे हैं । प्रस्तुत सर्जन से भी वे अछूते कैसे रहते ? उनका महत्त्वपूर्ण सहकार उपलब्ध हुआ है परंतु इसके लिये कृतज्ञता-ज्ञापन कर मैं अपनी आत्मीयता एवं अभिन्नता पर प्रश्नचिह्न ही लगाऊंगी । वे मेरे अपने हैं और उनका सहकार मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है । असीम मंगलकामनाएँ हैं बंधुमुनि के लिये ।

परम आत्मीय, सहज-सरल व्यक्तित्व के धनी विद्वद्वर्य श्री नरेंद्रभाई

कोरडिया, अध्यापक-नाकोडा ज्ञानशाला के प्रेमपूर्ण सहयोग ने प्रस्तुत सर्जन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उन्होंने समय की अल्पता और अत्यंत व्यस्तता में भी मेरे निवेदन को सहर्ष स्वीकार कर इस कृति को अपने कुशल संपादन से संवारा है। उनका यह अपनत्व और प्रेमपगा अवदान मेरे स्मृतिकक्ष में सदैव बिराजमान रहेगा।

प्रस्तुत कृति की निर्मिति में मैंने जिन-जिन महापुरुषों, आचार्यों एवं साधकों द्वारा रचित साहित्य का आलंबन लिया, उन समस्त को मैं हृदय से श्रद्धासिक्त वंदनाएँ प्रेषित करती हूँ।

इस आलेखन में मुझे प्रत्यक्ष वा परोक्ष रुप से जिन-जिन का सहयोग मिला है, मैं उनके प्रति भी सादर कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तुत विवेचन ने मेरे स्वाध्याय को जहाँ प्राणवान् बनाया है, वहीं मेरी तत्त्वरुचि को भी और अधिक गहरा किया है। इसके लेखन में मैं कहाँ तक सफल हो पायी हूँ, इसकी समीक्षा तो पाठकजन ही कर पायेंगे।

इस विवेचन में मेरे द्वारा वीतराग-वाणी के विरुद्ध ज्ञाताज्ञात भाव से अगर कुछ भी लिखा गया हो तो मैं अंत:करण से क्षमाप्रार्थी हूँ।

विद्युत चरण रज

साध्वी नीलांजना

(साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री)

अनुक्रमणिका

१.	नवतत्त्व प्रकरण मूल	१९
२.	नवतत्त्व प्रकरण गाथा-अन्वय-संस्कृत पदानुवाद-शब्दार्थ-गाथार्थ-विवेचन	२५
	नवतत्त्व प्रश्नोत्तरी	**१६५**
३.	प्रारंभिक प्रश्नोत्तरी	१६५
४.	जीव-तत्त्व का विवेचन	१७५
५.	अजीव तत्त्व का विवेचन	२०६
६.	काल द्रव्य का विवेचन	२२२
७.	षड् द्रव्यों का विशेष विवेचन	२३५
८.	पुण्य तत्त्व का विवेचन	२४०
९.	पाप तत्त्व का विवेचन	२५३
१०.	पाप तत्त्व की बयासी प्रकृतियाँ	२५५
११.	आश्रव-तत्त्व का विवेचन	२७१
१२.	संवर-तत्त्व का विवेचन	२८३
१३.	बावीस परीषहों का विवेचन	२९३
१४.	दस प्रकार के यति धर्मों का विवेचन	२९९
१५.	बारह प्रकार की भावनाओं का विवेचन	३०२
१६.	पांच प्रकार के चारित्रों का विवेचन	३०६
१७.	निर्जरा तत्त्व का विवेचन	३१०
१८.	छह प्रकार के बाह्य तप का विवेचन	३११
१९.	छह प्रकार के आभ्यन्तर तप का विवेचन	३२०
२०.	चार प्रकार के ध्यान का विवेचन	३२७
२१.	बंध तत्त्व का विवेचन	३३५
२२.	कर्म तत्त्व की प्रकृतियों का विवेचन	३४३
२३.	मोक्ष तत्त्व का विवेचन	३६२
२४.	चौदह मार्गणाओं का विवेचन	३६३
२५.	पन्द्रह प्रकार के सिद्धों का विवेचन	३८०

श्री नवतत्त्व प्रकरण-मूल

जीवाऽजीवा पुण्णं, पावाऽऽसव संवरो य निज्जरणा ।
बन्धो मुक्खो य तहा, नवतत्ता हुंति नायव्वा ॥१॥

चउदस चउदस बायालीसा, बासी अ हुंति बायाला ।
सत्तावन्नं बारस, चउ नव भेया कमेणेसिं ॥२॥

एगविह दुविह तिविहा, चउव्विहा पंच छव्विहा जीवा ।
चेयणातस इयरेहिं, वेय-गई-करण-काएहिं ॥३॥

एगिंदिय सुहुमियरा, सन्नियर पणिंदिया य सबितिचउ ।
अपज्जता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥४॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥५॥

आहारसरीरिंदिय, पज्जत्ती आणपाण भास मणे ।
चउ पंच पंच छप्पि य, इगविगलाऽसन्निसन्नीणं ॥६॥

पणिंदिअ त्ति बलूसा, साऊ दस पाण चउ छ सग अट्ठ ।
इग-दु-ति-चउरिंदीणं, असन्नि-सन्नीणं नव दस य ॥७॥

धम्माऽधम्मागासा, तिय-तिय भेया तहेव अद्धा य ।
खंधा देस पएसा, परमाणु अजीव चउदसहा ॥८॥

धम्माऽधम्मा पुग्गल, नह कालो पंच हुंति अज्जीवा ।
चलण सहावो धम्मो, थिर संठाणो अहम्मो य ॥९॥

अवगाहो आगासं, पुग्गलजीवाण पुग्गला चउहा ।
खंधा देस पएसा, परमाणु चेव नायव्वा ॥१०॥

सद्दंधयार उज्जोअ, पभा छायातवेहि अ ।
वण्ण गंध रसा फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥११॥

एगा कोडि सतसट्ठि, लक्खा सत्तहत्तरी सहस्सा य ।
दो य सया सोलहिया, आवलिया इगमुहुत्तम्मि ॥१२॥

समयावली मुहुत्ता, दीहा पक्खा य मास वरिसा य ।
भणिओ पलिया सागर, उस्सप्पिणिसप्पिणी कालो ॥१३॥

परिणामि जीव मुत्तं, सपएसा एग खित्त किरिया य ।
णिच्चं कारण कत्ता, सव्वगय इयर अप्पवेसे ॥१४॥

सा उच्चगोअ मणुदुग, सुरदुग पंचिंदिजाइ पणदेहा ।
आइतितणूणुवंगा, आइमसंघयणसंठाणा ॥१५॥

वन्नचउक्कागुरुलहु, परघा उस्सास आयवुज्जोअं ।
सुभखगइ निमिण तसदस, सुरनरतिरिआउ तित्थयरं ॥१६॥

तस बायर पज्जत्तं, पत्तेअ थिरं सुभं च सुभगं च ।
सुस्सर आइज्ज जसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥१७॥

नाणंतरायदसगं, नव बीए नीअ साय मिच्छत्तं ।
थावरदस-निरयतिगं, कसाय पणवीस तिरियदुगं ॥१८॥

इग-बि-ति-चउ जाइओ, कुखगइ उवघाय हुंति पावस्स ।
अपसत्थं वन्नचऊ, अपढमसंघयण संठाणा ॥१९॥

थावर सुहुम अपज्जं, साहारणमथिरमसुभ-दुभगाणि ।
दुस्सरणाइज्जजसं, थावर दसगं विवज्जत्थं ॥२०॥

इंदिअ कसाय अव्वय, जोगा पंच चउ पंच तिन्नि कमा ।
किरियाओ पणवीसं, इमा उ ताओ अणुक्कमसो ॥२१॥

काइअ अहिगरणिआ, पाउसिया पारितावणी किरिया ।
पाणाइवायारंभिय, परिग्गहिआ मायावत्ती अ ॥२२॥

मिच्छादंसणवत्ती, अपच्चक्खाणी य दिट्ठि पुट्ठि य ।
पाडुच्चिय सामंतो, वणीअ नेसत्थि साहत्थी ॥२३॥

आणवणि विआरणिया, अणभोगा अणवकंखपच्चइआ ।
अन्ना पओग समुदाण, पिज्ज दोसेरियावहिया ॥२४॥

समिइ गुत्ति परिसह, जइधम्मो भावणा चरित्ताणि ।
पण ति दुवीस दस बार, पंचेभेएहिं सगवन्ना ॥२५॥

इरिया भासेसणादाणे, उच्चारे समिइसु अ ।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती तहेव य ॥२६॥

खुहा पिवासा सी उण्हं, दंसाचेलारइत्थिओ ।
चरिया निसीहिया सिज्जा, अक्कोस वह जायणा ॥२७॥

अलाभ रोग तणफासा, मल-सक्कार-परिसहा ।
पन्ना अन्नाण सम्मत्तं, इअ बावीस परिसहा ॥२८॥

खंती मद्दव अज्जव, मुत्ती तव संजमे अ बोधव्वे ।
सच्चं सोअं आकिंचणं च, बंभं च जइधम्मो ॥२९॥

पढममणिच्चमसरणं, संसारो एगया य अन्नत्तं ।
असुइत्तं आसव, संवरो य तह णिज्जरा नवमी ॥३०॥

लोगसहावो बोही, दुल्लहा धम्मस्स साहगा अरिहा ।
एआओ भावणाओ, भावेअव्वा पयत्तेणं ॥३१॥

सामाइअत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीअं ।
परिहारविसुद्धीअं, सुहुमं तह संपरायं च ॥३२॥

तत्तो अ अहक्खायं, खायं-सव्वंम्मि जीवलोगम्मि ।
जं चरिऊण सुविहिया, वच्चंति अयरामरं ठाणं ॥३३॥

बारसविहं तवो णिज्जरा य, बंधो चउविगप्पो अ ।
पयइ-ट्ठिइ-अणुभाग-प्पएसभेएहिं नायव्वो ॥३४॥

अणसणमूणोअरिया, वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ ।
कायकिलेसो संलीणया य, बज्झो तवो होइ ॥३५॥

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं उस्सग्गोऽवि अ, अब्भिंतरओ तवो होइ ॥३६॥

पयइ सहावो वुत्तो, ठिइ कालावहारणं ।
अणुभागो रसो णेओ, पएसो दलसंचओ ॥३७॥

पडपडिहारऽसिमज्ज, हडचित्तकुलाल भंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा, कम्माणऽवि जाण तह भावा ॥३८॥

इह नाणदंसणावरण, वेयमोहाउनामगोआणि ।
विग्घं च पण नव दु, अट्ठवीस चउ तिसय दु पणविहं ॥३९॥

नाणे अ दंसणावरणे, वेयणिए चेव अंतराए अ ।
तीसं कोडाकोडी, अयराणं ठिइ अ उक्कोसा ॥४०॥

सत्तरि कोडाकोडी, मोहणिए वीस नाम-गोएसु ।
तित्तीसं अयराइं, आउट्ठिइबन्ध उक्कोसा ॥४१॥

बारस मुहुत्तं जहन्ना, वेयणिए अट्ठ नाम गोएसु ।
सेसाणंतमुहुत्तं, एयं बन्धट्ठिइमाणं ॥४२॥

संतपयपरुवणया, दव्वपमाणं च खित्तफुसणा य ।
कालो अ अन्तरं भाग, भाव अप्पाबहुं चेव ॥४३॥

संतं सुद्धपयत्ता, विज्जंतं खकुसुमंव्व न असंतं ।
मुक्खत्ति पयं तस्स उ, परूवणा मग्गणाईहिं ॥४४॥

गइ इंदिए अ काए, जोए वेए कसाय नाणे अ ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सन्नि आहारे ॥४५॥

नरगइ पणिंदि तस भव, सन्नि अहक्खाय खइअ सम्मत्ते ।
मुक्खोऽणाहार केवल, दंसणनाणे न सेसेसु ॥४६॥

दव्वपमाणे सिद्धाणं, जीवदव्वाणि हुंति ऽणंताणि ।
लोगस्स असंखिज्जे, भागे इक्को य सव्वेवि ॥४७॥

फुसणा अहिया कालो, इग-सिद्ध पडुच्च साइओणंतो ।
पडिवायाभावाओ, सिद्धाणं अंतरं नत्थि ॥४८॥

सव्वजियाणमणंते, भागे ते तेसिं दंसणं नाणं ।
खइए भावे परिणामिए, अ पुण होइ जीवत्तं ॥४९॥

थोवा नपुंससिद्धा, थी नरसिद्धा कमेण संखगुणा ।
इअ मुक्खतत्तमेअं, नवतत्ता लेसओ भणिआ ॥५०॥

जीवाइ नव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।
भावेण सद्दहंतो, अयाणमाणोवि सम्मत्तं ॥५१॥

सव्वाइं जिणेसर, भासियाइं वयणाइं नन्नहा हुंति ।
इअ बुद्धि जस्स मणे, सम्मत्तं निच्चलं तस्स ॥५२॥

अंतोमुहुत्तमित्तंपि फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढपुग्गल, परियट्टो चेव संसारो ॥५३॥

उस्सप्पिणी अणंता, पुग्गल परिअट्टओ मुणेयव्वो ।
तेऽणंताऽतीअद्धा, अणागयद्धा अणंतगुणा ॥५४॥

जिणअजिण तित्थ ऽतित्था, गिहि अन्न सलिंगथीनरनपुंसा ।
पत्तेय सयंबुद्धा, बुद्धबोहिय इक्कणिक्का य ॥५५॥

जिणसिद्धा अरिहंता, अजिणसिद्धा य पुंडरिअपमुहा ।
गणहारि तित्थसिद्धा, अतित्थसिद्धा य मरुदेवी ॥५६॥

गिहिलिंगसिद्ध भरहो, वक्कलचिरी य अन्नलिंगम्मि ।
साहू सलिंगसिद्धा, थी सिद्धा चंदणापमुहा ॥५७॥

पुंसिद्धा गोयमाइ गांगेयाइ नपुंसया सिद्धा ।
पत्तेय सयंबुद्धा, भणिया करकंडु-कविलाइ ॥५८॥

तह बुद्धबोहि गुरुबोहिया य, इगसमये इगसिद्धा य ।
इगसमयेऽवि अणेगा, सिद्धा ते ऽणेग सिद्धाय ॥५९॥

जइआइ होइ पुच्छा, जिणाण मग्गंमि उत्तरं तइया ।
इक्कस्स निगोयस्स, अणंतभागो य सिद्धि-गओ ॥६०॥

॥ इति श्री नवतत्त्वमूलम् ॥

नवतत्त्व प्रकरण

नवतत्त्वों के नाम

गाथा

जीवाऽजीवा पुण्णं, पावासव संवरो य निज्जरणा ।
बंधो मुक्खो य तहा, नव तत्ता हुंति नायव्वा ॥१॥

अन्वय

जीव अजीवा पुण्णं पाव, आसव संवरो य निज्जरणा तहा बन्धो य मुक्खो, नवतत्ता नायव्वा हुंति ॥१॥

संस्कृत पदानुवाद

जीवाऽजीवो पुण्यं, पापाश्रवो संवरश्च निर्जरणा ।
बन्धो मोक्षश्च तथा, नवतत्त्वानि भवन्ति ज्ञातव्यानि ॥१॥

शब्दार्थ

जीव - जीव	**बन्धो** - बन्ध
अजीवा - अजीव	**मुक्खो** - मोक्ष
पुण्णं - पुण्य	**य** - और
पाव - पाप	**तहा** - तथा
आसव - आश्रव	**नव** - नौ
संवरो - संवर	**तत्ता** - तत्त्व
य - और	**हुंति** - होते हैं
निज्जरणा - निर्जरा	**नायव्वा** - जानने योग्य

भावार्थ

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष, ये नौ तत्त्व जानने योग्य है ॥१॥

विशेष विवेचन

१. **जीव** - जीवति - 'प्राणान् धारयतीति जीवः' जो जीता है अर्थात् प्राणों

को धारण करता है, वह जीव है। स्वयं के शुभाशुभ कर्मों का कर्त्ता एवं भोक्ता तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुणों से एवं चैतन्य लक्षण से युक्त है, वह जीव कहलाता है।

२. **अजीव** - जीव से विपरीत स्वभाव एवं विपरीत लक्षण वाला अर्थात् जो प्राण और चैतन्य रहित है, जिसमें सुख-दुःख का अनुभव करने की शक्ति नहीं है, ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि गुणों से जो रहित है, वह अजीव तत्त्व है।

३. **पुण्य** - जीव जिसके द्वारा सुख भोगता है, आमोद-प्रमोद के साधन और अनुकूलताओं को प्राप्त करता है, वह पुण्य कहलाता है। पुनाति अर्थात् जो जीव को पवित्र करें, वह पुण्य तत्त्व है।

४. **पाप** - जो आत्मा को मलिन करें, जिसकी अशुभ प्रकृति हो अथवा जिसके द्वारा जीव हिंसा, अत्याचार, चोरी, जुआ आदि करें, वह पाप कहलाता है। पातयति नरकादिषु अर्थात् जो जीव को नरकादि दुर्गतियों में डालता है, वह पाप है।

५. **आश्रव** - जिसके माध्यम से आत्मा में शुभाशुभ कर्मों का आगमन हो, उसे आश्रव कहते हैं। अथवा आश्रीयते, उपार्ज्यते कर्म एभिः इति आश्रवाः अर्थात् जिसके द्वारा जीव कर्म का उपार्जन करें, वह आश्रव है।

६. **संवर** - आश्रव का विरोधी तत्त्व संवर है। आत्मा में आते हुए कर्मों का रुक जाना संवर कहलाता है। 'संव्रीयते कर्मकारणं प्राणातिपातादि निरुध्यते येन परिणामेन स संवरः' अर्थात् कर्म और हिंसादि कर्मबंध के कारण जिस आत्म परिणाम द्वारा संवृत हो जाय, उसे संवर कहते है।

७. **निर्जरा** - 'निर्ज्जरणं, विशरणं परिशटनं निर्ज्जरा' अर्थात् आत्मा से बंधे हुए शुभाशुभ कर्मपुद्गलों का विनाश हों जाना, आत्मा से निर्जरित होना या झड जाना निर्जरा तत्त्व कहलाता है।

८. **बन्ध** - जीव के साथ क्षीर-नीर (दुध-पानी) अथवा लोहाग्नि (लोहे का गोला व अग्नि) की तरह कर्मों का परस्पर गाढ संबंध होना, बंध तत्त्व है।

नवतत्त्व = नौका और समुद्र के दृष्टांत से बोध

चित्र : नवतत्त्व के लक्षण

९. **मोक्ष** - समस्त कर्मों का आत्मा से सर्वथा अलग हो जाना अथवा नष्ट हो जाना, मोक्ष कहलाता है।

नवतत्त्वों में हेय-ज्ञेय-उपादेय

हेय - त्यागने योग्य।

ज्ञेय - जानने योग्य।

उपादेय - स्वीकार करने योग्य।

१. जीव तथा अजीव तत्त्व ज्ञेय है।

२. पुण्य तत्त्व मोक्ष तक पहुँचने के लिये सहायक और मार्गदर्शक है। अतः व्यवहार नय की अपेक्षा से पुण्य उपादेय है परन्तु पुण्य प्रकृति भी शुभकर्मरूप और स्वर्णशृंखला के समान है, अतः मोक्ष प्राप्ति के लिये इसका क्षय भी आवश्यक है। जिस प्रकार मार्गदर्शक को मंजिल प्राप्त होते ही छोड दिया जाता है, उसी प्रकार निश्चय नय से पुण्य तत्त्व भी हेय है।

जैसे पुण्य तत्त्व सोने की बेडी है, उसी प्रकार पाप तत्त्व लोहे की बेडी है और बेडी तो बंधन रूप होने से सर्वथा त्याज्य है, अतः पुण्य के साथ पाप तत्त्व भी हेय है।

कर्मों का आगमन होने से आश्रव तत्त्व तथा आत्मा को कर्मों से संबद्ध करने के कारण बंध तत्त्व भी हेय है।

३. संवर तथा निर्जरा तत्त्व जीव के स्वभावरूप होने से उपादेय है। पुण्यतत्त्व मोक्ष तक पहुँचने में सहायभूत होने से उपादेय है। जिससे शाश्वत आनंद की उपलब्धि हो जाय, वह मोक्ष तत्त्व सर्वश्रेष्ठ उपादेय है।

हेय तत्त्व - (पुण्य) पाप, आश्रव, बंध।

ज्ञेय तत्त्व - जीव, अजीव।

उपादेय तत्त्व - संवर, निर्जरा, मोक्ष (पुण्य)

नवतत्त्वों में रूपी-अरुपी

१. यद्यपि निश्चय नय की अपेक्षा से जीव तत्त्व अरूपी ही है परंतु व्यवहारनय की अपेक्षा से जब तक मोक्ष नहीं प्राप्त करता तब तक नानाविध शरीर धारण करने से वह रूपी भी है।

२. अजीव तत्त्व रूपी तथा अरूपी दोनों प्रकार का है।

३. पुण्य, पाप, आश्रव और बंध, ये चार तत्त्व कर्म-परिणाम होने से रूपी है।

४. संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये तीनों जीव के परिणाम होने से अरूपी है।

नवतत्त्वों में ४ जीव एवं ५ अजीव

जीव, यह जीव तत्त्व है। संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये तीन तत्त्व भी जीव स्वरुप होने से अथवा जीव का स्वभाव होने से जीव तत्त्व है। अतः जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये ४ तत्त्व जीव है। बाकी के ५ तत्त्व अजीव है। पुण्य, पाप, आश्रव और बंध, ये चारों कर्म परिणाम होने से अजीव तत्त्व है तथा अजीव, अजीव तत्त्व ही है।

नवतत्त्वों में संख्या भेद

इन नौ तत्त्वों का एक-दूसरे में समावेश करने पर सात, पांच अथवा दो तत्त्व भी हो जाते हैं।

१. पुण्य तथा पाप का आश्रव या बंध में समावेश होने पर सात तत्त्व हो जाते हैं।

२. आश्रव, पुण्य तथा पाप को बन्ध तत्त्व में समाविष्ट करने पर तथा निर्जरा और मोक्ष दोनों में से एक को गिनने पर पांच तत्त्व हो जाते हैं।

३. संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये जीव स्वरुप है, अतः इन्हें जीव में गिने एवं पुण्य, पाप, आश्रव तथा बंध अजीव स्वरुप होने से इन्हें अजीव में गिने तो जीव और अजीव, ये दो ही तत्त्व होते हैं। यह तो विवक्षाभेद की अपेक्षा से कहा गया है परन्तु प्रस्तुत प्रकरण में नौ तत्त्वों का विस्तृत प्रतिपादन किया गया है।

नवतत्त्वों के भेद

गाथा

चउदस-चउदस बायालीसा, बासी य हुंति बायाला।
सत्तावन्नं बारस, चउ नव भेया कमेणेसिं ॥२॥

अन्वय

एसिं कमेण चउदस चउदस बायालीसा बासी बायाला सत्तावन्नं बारस चउ अ नव भेया हुंति ॥२॥

संस्कृत पदानुवाद

चतुर्दश चतुर्दश द्वि चत्वारिंशद्, द्वयशीतिश्च भवन्ति द्विचत्वारिंशत् ।
सप्तपञ्चाशद् द्वादश, चत्वारो नव भेदाः क्रमेणैषाम् ॥२॥

शब्दार्थ

चउदस - चौदह	**सत्तावन्नं** - सत्तावन
चउदस - चौदह	**बारस** - बारह
बायालीसा - बयालीस	**चउ** - चार
बासी - बयासी	**नव** - नौ
अ - और	**भेया** - भेद
हुंति - होते हैं	**कमेण** - क्रमशः
बायाला - बयाली	**एसिं** - इन नौ तत्त्वों के

भावार्थ

इन नौ तत्त्वों के अनुक्रम से १४-१४-४२-८२-४२-५७-१२-४-९ भेद होते हैं । अर्थात् जीव तत्त्व के १४, अजीव तत्त्व के १४, पुण्य तत्त्व के ४२, पाप तत्त्व के ८२, आश्रव तत्त्व के ४२, संवर तत्त्व के ५७, निर्जरा तत्त्व के १२, बंध तत्त्व के ४ और मोक्ष तत्त्व के ९ भेद होते हैं ॥२॥

विशेष विवेचन

नवतत्त्वों के सर्वभेदों की संख्या २७६ होती है। इसमें ९२ भेद जीव के तथा १८४ भेद अजीव के होते हैं। इसी प्रकार २७६ भेदों में से ८८ भेद अरुपी तथा १८८ भेद रुपी है ।

अरुपी भेद : धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, इन तीनों के स्कंध, देश, प्रदेश ये तीन तीन भेद गिनने से ९ भेद तथा अद्धाकाल मिलाकर ये अजीव के १० अरुपी भेद है तथा संवर के ५७, निर्जरा के १२ तथा मोक्ष के ९ भेद गिनने पर अरूपी द्रव्य के ८८ भेद होते हैं ।

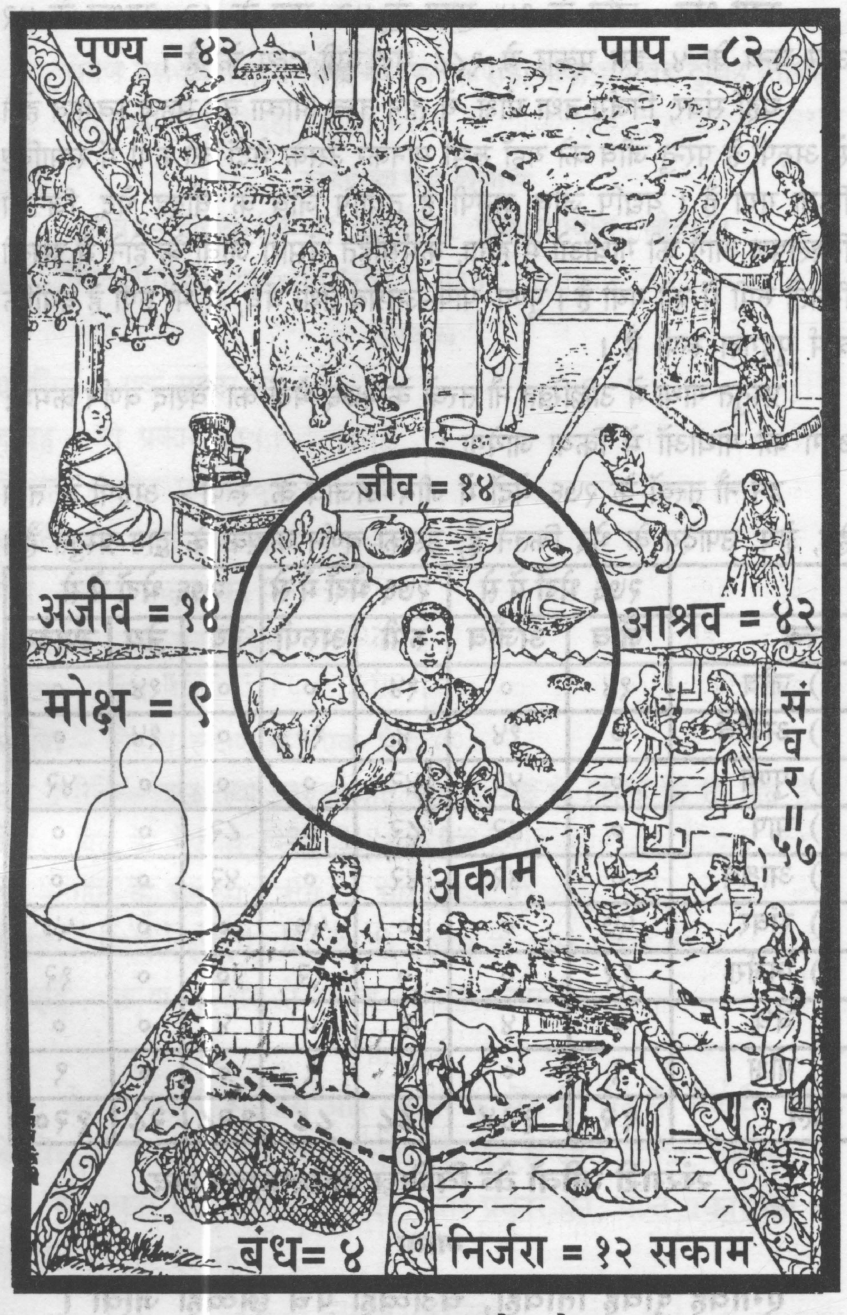

चित्र : नवतत्त्व के भेद

रुपी भेद : जीव के १४, पुण्य के ४२, पाप के ८२, आश्रव के ४२ और बन्ध के ४, इस प्रकार ये १८८ भेद रुपी द्रव्य के है।

यहाँ संवर, निर्जरा तथा मोक्ष, ये तीन तत्त्व आत्मा का सहज स्वभाव होने से अरुपी है परन्तु जीव को यहाँ रूपी मानकर उसके भेदों को रुपी में समाविष्ट किया गया है। यद्यपि जीव अरुपी है तथापि जीव के चौदह भेद, जिनका विश्लेषण आगे की गाथाओं में होगा, कर्मसहित संसारी जीवों के होने से इसकी गिनती रुपी में की गयी है। पुण्य-पाप-आश्रव तथा बंध, ये भी रुपी है क्योंकि कर्म पुद्गल रूपी है।

प्रस्तुत गाथा में उल्लिखित नौ तत्त्वों के २७६ भेदों का विशद वर्णन क्रमशः आगे की गाथाओं में किया जायेगा।

इन नौ तत्त्वों के २७६ भेदों में जीव, अजीव के, रूपी - अरुपी के तथा हेय, ज्ञेय, उपादेय के भेद कितने हैं, उसका वर्णन कोष्टक के द्वारा प्रस्तुत है।

	२७६ भेदों में से		२७६ भेदों में से		२७६ भेदों में से		
तत्त्व	**जीव**	**अजीव**	**रुपी**	**अरुपी**	**हेय**	**ज्ञेय**	**उपादेय**
१) जीव	१४	०	१४	०	०	१४	०
२) अजीव	०	१४	४	१०	०	१४	०
३) पुण्य	०	४२	४२	०	०	०	४२
४) पाप	०	८२	८२	०	८२	०	०
५) आश्रव	०	४२	४२	०	४२	०	०
६) संवर	५७	०	०	५७	०	०	५७
७) निर्जरा	१२	०	०	१२	०	०	१२
८) बंध	०	४	४	०	४	०	०
९) मोक्ष	९	०	०	९	०	०	९
कुल	**९२**	**१८४**	**१८८**	**८८**	**१२८**	**२८**	**१२०**

संसारी जीवों के विभिन्न अपेक्षाकृत भेद

गाथा

एगविह दुविह तिविहा, चउव्विहा पंच छव्विहा जीवा।
चेयण तस इयरेहिं, वेयगइकरणकाएहिं ॥३॥

अन्वय

चेयण तस इयरेहिं, वेय-गइ-करण-काएहिं जीवा एगविह दुविह तिविहा चउव्विहा पंचछव्विहा (हुंति) ॥३॥

संस्कृत पदानुवाद

एकविध-द्विविध-त्रिविधा, श्चतुर्विधाः पंच षड्विधाः जीवाः ।
चेतनत्रसेतरैर्वेद-गति-करण-कायैः ॥३॥

शब्दार्थ

एगविह - एक प्रकार का
दुविह - दो प्रकार का
तिविहा - तीन प्रकार का
चउव्विहा - चार प्रकार का
पंच - पांच प्रकार का
छव्विहा - छह प्रकार का
जीवा - जीव है
चेयण - चेतन्य लक्षण से (एक भेद)
तस इयरेहिं - त्रस तथा इतर अर्थात् स्थावर भेद से (जीव के दो भेद हैं)
वेय - वेद के भेद से (जीव के तीन भेद हैं)
गइ - गति के भेद से (जीव के चार प्रकार हैं)
करण - करण (इन्द्रिय) के भेद से (जीव के पांच प्रकार हैं)
काएहिं - काया के भेद से (जीव के छह प्रकार हैं)

भावार्थ

चेतना लक्षण से, त्रस और स्थावर के भेद से, वेद के भेद से, गति के भेद से, करण के भेद से एवं काय के भेद से जीव क्रमशः एक प्रकार का, दो प्रकार का, तीन प्रकार का, चार प्रकार का, पांच प्रकार का व छह प्रकार का है ॥३॥

विशेष विवेचन

१. चैतन्य लक्षण से एक प्रकार का जीव : इस संसार में अनंतानन्त

जीव हैं। वे जीव चाहे व्यवहार राशि के हो, चाहे अव्यवहार राशि के हो, परन्तु उन सभी जीवों में चैतन्य लक्षण एक समान है। समस्त जीवों के मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान का अनन्तवां भाग प्रकट होने से समस्त जीव चेतना लक्षण द्वारा एक प्रकार के है।

२. त्रस व स्थावर के भेद से जीव के दो प्रकार : समस्त संसारी जीव त्रस एवं स्थावर इन दो प्रकारों में समाविष्ट हो जाते हैं।

त्रस वे जीव है, जो अपनी इच्छानुसार गमनागमन करने में समर्थ तथा स्वतंत्र है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ-जा सकते हैं। विकलेंद्रिय एवं पंचेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं।

स्थावर में वे जीव आते है, जो सुख-दुःख में इच्छानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन नहीं कर सकते। समस्त एकेन्द्रिय अर्थात् पृथ्वी-कायादि पांच काय के जीव स्थावर कहलाते है।

३. वेद की अपेक्षा से जीवों के तीन प्रकार : संसार की समस्त जीवराशि का तीन वेदो में समावेश हो जाता है। कई जीव पुरुष वेद वाले, कई जीव स्त्री वेद वाले तो कई जीव नपुंसक वेद वाले होते हैं।

४. गति की अपेक्षा से जीवों के चार प्रकार : गतिचतुष्क अर्थात् नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य तथा देव, इन चार गतियों में संसार के समस्त जीव समा जाते हैं। अतः गति के भेद से जीव के चार प्रकार कहे गये हैं।

५. इन्द्रियों की अपेक्षा से जीवों के पांच प्रकार : पांच इन्द्रियों की अपेक्षा से संसारी जीव पांच प्रकार के है। संसारी जीवों में कोई एकेन्द्रिय है, कोई द्वीन्द्रिय है, कोई त्रीन्द्रिय है, कोई चतुरिन्द्रिय है, तो कोई पंचेन्द्रिय है। परन्तु इन पांच इन्द्रियों से रहित अथवा पांच इन्द्रियों से अधिक किसी भी जीव की सत्ता नहीं है।

६. काय की अपेक्षा से जीवों के छह प्रकार : छहकाय के भेदों में समस्त संसारी जीवों का समावेश होने से जीव के छह प्रकार भी है। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय, इन षट्काय में सभी संसारी जीव समाविष्ट हो जाते हैं।

संसारी जीवों के १४ भेद

गाथा

एगिंदिय सुहुमियरा, सन्नियर पणिंदिया य सबितिचउ ।
अपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥४॥

अन्वय

सुहुमियरा एगिंदिय य स-बि-ति-चउ सन्नियर-पणिंदिया अपज्जत्ता-पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥४॥

संस्कृत पदानुवाद

एकेन्द्रियाः सूक्ष्मेतराः, संज्ञीतर पंचेन्द्रियाश्च सद्वित्रिचतुः ।
अपर्याप्ताः पर्याप्ताः, क्रमेण चतुर्दश जीवस्थानानि ॥४॥

शब्दार्थ

एगिंदिय - एकेन्द्रिय	**बि** - बेइन्द्रिय
सुहुम - सूक्ष्म	**ति** - तेइन्द्रिय
इयरा - इतर अर्थात् बादर	**चउ** - चउरिन्द्रिय
सन्नि - संज्ञी	**अपज्जत्ता पज्जत्ता**-अपर्याप्त-पर्याप्त
इयर - दूसरा अर्थात् असंज्ञी	**कमेण** - क्रमशः, अनुक्रम से
पणिंदिया - पंचेन्द्रिय	**चउदस** - चौदह
य - और	**जियट्ठाणा** - जीवस्थान (होते है)
स - सहित	

जीव के १४ भेद

१. अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय	८. पर्याप्त त्रीन्द्रिय
२. पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय	९. अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय
३. अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय	१०. पर्याप्त चतुरिन्द्रिय
४. पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय	११. अपर्याप्तअसंज्ञी पंचेन्द्रिय
५. अपर्याप्त द्वीन्द्रिय	१२. पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय
६. पर्याप्त द्वीन्द्रिय	१३. अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय
७. अपर्याप्त त्रीन्द्रिय	१४. पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय

भावार्थ

सूक्ष्म और इतर अर्थात् बादर एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संज्ञी तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय अनुक्रम से पर्याप्त तथा अपर्याप्त, (ऐसे) जीव के चौदह स्थानक है ॥४॥

१. अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय : जिन जीवों के केवल एक स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा) ही होती है, उन्हें एकेन्द्रिय कहते हैं। इन जीवों के अनेक शरीर एकत्रित होने पर भी चक्षु से दृष्टिगोचर नहीं होते, स्पर्श से भी नहीं जाने जाते, अतः इन्हें सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कहा जाता है। ऐसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव संपूर्ण लोकाकाश में सर्वत्र व्याप्त है। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव न हो। ये जीव शस्त्रादि के द्वारा कटते नहीं, अग्नि से जलते नहीं, मनुष्य को किसी भी इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण होते नहीं, न मनुष्य के उपयोग में आते हैं। सूक्ष्म नाम कर्म का उदय होने से ये जीव सूक्ष्म शरीर प्राप्त करते हैं, जो अदृश्य ही रहता है। इनकी हिंसा मन के अशुभ योग से ही संभव है, वचन, काया से इनकी हिंसा असंभव है। ये सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु तथा वनस्पति रुप पांच प्रकार के हैं।

जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त कर लेता है, वह अपर्याप्त कहलाता है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव जब स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किये बिना ही मर जाते हैं, तब इन्हें अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय कहा जाता है।

२. पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय : जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के बाद मरते हैं, उन्हें पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय कहा जाता है।

३. अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय : जिस कर्म के उदय से बादर अर्थात् स्थूल शरीर प्राप्त हो, ऐसे बादर नामकर्म वाले पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु तथा वनस्पतिकाय के जीव बादर एकेन्द्रिय कहलाते हैं। ये बादर एकेन्द्रिय जीव शस्त्रादि से छेदे-भेदे जा सकते हैं, अग्नि से जलाये जा सकते हैं, मनुष्यादि के भोग-उपभोग में सहायक बनते हैं। ये जीव सम्पूर्ण लोकाकाश में नहीं मात्र नियत भाग में ही व्याप्त है। पृथ्वीकायादि के जीव एक दूसरे का परस्पर हनन भी करते हैं तथा स्वकायिक जीव स्वकायिक जीवों का भी हनन करते हैं। अतः बादर

एकेन्द्रिय स्वकाय शस्त्र, परकाय शस्त्र तथा उभयकाय शस्त्र भी कहे गये हैं। जो बादर एकेन्द्रिय जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना ही मरते है, वे अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय कहलाते हैं।

४. पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय : जो बादर एकेन्द्रिय जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के बाद मरते हैं, वे पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय कहलाते हैं।

५. अपर्याप्त द्वीन्द्रिय : जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय तथा रसनेन्द्रिय, ये दो इन्द्रियाँ होती है, वे द्वीन्द्रिय जीव कहलाते हैं। एकेन्द्रिय को छोडकर सभी जीव केवल बादर नाम कर्म वाले ही होते हैं। शंख, कौड़ी, सीप, कृमि, केंचुआ आदि जीव द्वीन्द्रिय कहलाते है। वे द्वीन्द्रिय जीव जो स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना ही मरण को प्राप्त हो जाते हैं तो उन्हें अपर्याप्त द्वीन्द्रिय कहा जाता है।

६. पर्याप्त द्वीन्द्रिय : जो द्वीन्द्रिय जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करके मरते हैं, उन्हें पर्याप्त द्वीन्द्रिय कहा जाता है।

७. अपर्याप्त त्रीन्द्रिय : जिन जीवों के स्पर्श, रस तथा घ्राण, ये तीन इन्द्रियाँ होती है, वे मकोडा, जूं, दीमक, इयल, कीडी, इन्द्रगोप आदि जीव त्रीन्द्रिय कहलाते हैं। वे जीव जो स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना मरते हैं, वे अपर्याप्त त्रीन्द्रिय कहलाते हैं।

८. पर्याप्त त्रीन्द्रिय : जो त्रीन्द्रिय जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करके मरते हैं, वे जीव पर्याप्त त्रीन्द्रिय कहलाते हैं।

९. अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय : जिन जीवों के स्पर्श, रस, घ्राण और चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ होती है, उन्हें चतुरिन्द्रिय कहा जाता है। भ्रमर, बिच्छु, टिड्डी, मच्छर, मक्खी, कंसारी, तितली आदि जीव चतुरिन्द्रिय हैं। वे चतुरिन्द्रिय जीव जो स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना ही मरते हैं, वे अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं।

१०. पर्याप्त चतुरिन्द्रिय : जो चतुरिन्द्रिय जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करके मरते हैं, उन्हें पर्याप्त चतुरिन्द्रिय कहा जाता है।

११. अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय : जिन जीवों के स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, ये पांच इन्द्रियाँ होती है, उन्हें पंचेन्द्रिय कहा जाता है। माता-पिता

के संयोग के बिना ही जल, मिट्टी आदि बाह्य संयोगों के मिलने पर स्वतः उत्पन्न होने वाले मेंढक आदि सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय तथा मनुष्य के मल-मूत्र-थूंक आदि १४ अशुचि स्थानों में उत्पन्न होनेवाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य विशिष्ट प्रकार के मनोविज्ञान रुप दीर्घकालिकी संज्ञा अर्थात्-भूत-भविष्यकाल संबंधी दीर्घकालीन पूर्वापर की विचारशक्ति से रहित एवं मनस् शक्ति से रहित होने के कारण असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते है। जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किये बिना ही मर जाते हैं, उन्हें अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहा जाता है।

१२. पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय : जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करके मरते हैं, वे पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं।

१३-१४. अपर्याप्त-पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय : स्पर्शादि पांच इन्द्रियों वाले, माता-पिता के संयोग से उत्पन्न होनेवाले मनुष्य एवं तिर्यञ्च तथा उपपात जन्म से पैदा होने वाले देव तथा नारकी मन एवं दीर्घकालिकी संज्ञा से युक्त होने के कारण संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं। यदि ये जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना ही मर जाय तो अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं और यदि पूर्ण करके मरे तो पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं।

प्रत्येक अपर्याप्त जीव प्रथम तीन पर्याप्तियाँ ही पूर्ण कर सकता है, जबकि पर्याप्त जीव स्वयोग्य ४, ५ अथवा ६ पर्याप्तियाँ पूर्ण करके ही मरता है।

पर्याप्तियों का वर्णन छट्ठी गाथा में करेंगे।

जीव का लक्षण

गाथा

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥५॥

अन्वय

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा वीरियं य उवओगो, एयं जीवस्स लक्खणं ॥५॥

संस्कृत पदानुवाद

ज्ञानं च दर्शनं चैव, चारित्रं च तपस्तथा ।
वीर्यमुपयोगश्चैतज्जीवस्य लक्षणं ॥५॥

शब्दार्थ

नाणं - ज्ञान	**तहा** - तथा
च - और	**वीरियं** - वीर्य
दंसणं - दर्शन	**उवओगो** - उपयोग
चेव - निश्चय	**य** - और
चरित्तं - चारित्र	**एयं** - ये
च - और, एवं	**जीवस्स** - जीव के
तवो - तप	**लक्खणं** - लक्षण हैं ।

भावार्थ

ज्ञान और दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य तथा उपयोग ये जीव के लक्षण है ॥५॥

विशेष विवेचन

लक्षण की व्याख्या :

जो धर्म अथवा गुण जिस वस्तु का कहलाता है, वह उसमें सर्वथा व्याप्य हो, उसके सिवाय अन्य किसी भी वस्तु में संभव न हो, वह लक्षण कहलाता है । लक्षण को सदा असाधारण धर्म से युक्त होना चाहिए ।

तर्कशास्त्र में लक्षण के ३ दोष बताये गये हैं -

१. अव्याप्ति : 'लक्ष्यैकदेशवृत्तित्वम्' अर्थात् जो धर्म लक्ष्य पदार्थ के एक अंश में रहे । जैसे 'गो:कपिलत्वम्' कपिलत्व गाय का लक्षण है । यहाँ गाय का लक्षण कपिल वर्ण बताया परंतु सब गायें केवल कपिल वर्ण की नहीं होती हैं । कोई सफेद तो कोई काली भी होती है । अत: कपिलत्व संपूर्ण गाय जाति का लक्षण नहीं हो सकता । यह लक्षण अधूरा होने से अव्याप्ति दोष है ।

२. अतिव्याप्ति : 'अलक्ष्यवृत्तित्वम्' अर्थात् जो धर्म लक्ष्य पदार्थ के

सर्वांश से अतिरिक्त अन्य पदार्थों में भी रहे। जैसे 'गो:शृङ्गित्वम्' गाय शृंग वाली होती है। यह लक्षण भी सही नही है क्योंकि सिंग केवल गाय के ही नहीं, भैंस और बकरी के भी होते हैं। यहाँ जो लक्षण बताया, वह लक्षण उस पदार्थ से अतिरिक्त पदार्थ में भी व्याप्त होने से यहाँ पर अतिव्याप्ति दोष है।

३. असंभव : 'लक्ष्यमात्राऽवर्त्तनम्' अर्थात् लक्षित पदार्थ में उस गुण का सर्वथा अभाव हो। जैसे 'गो:एकशफत्वम्' यहाँ गाय का लक्षण एक शफत्व बताया, जो कि गाय के होता ही नहीं है। अत: यहाँ असंभव दोष है।

गाय का निर्दोष तथा सही लक्षण है 'गो:सास्नादिमत्वम्' अर्थात् जो सास्ना (गले में चमडे की झालर) से युक्त है, वह गाय है। यह लक्षण प्रत्येक गाय में विद्यमान होता है तथा अन्य किसी भी भैंस आदि पशुओं में नहीं होता। यह संपूर्ण गाय जाति में व्याप्त है। उसके अतिरिक्त अन्य किसी भी जाति में नहीं है। अत: यह लक्षण सर्वथा उपयुक्त है। इसी प्रकार ज्ञानादि छह लक्षण, जिसका उल्लेख प्रस्तुत गाथा में किया गया है, ये जीव के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ में नहीं मिलते। जहाँ-जहाँ जीव है, वहाँ-वहाँ ज्ञानादि गुण है, यह अन्वय व्याप्ति तथा 'जहाँ-जहाँ ज्ञानादि गुण का अभाव है, वहाँ-वहाँ जीव का अभाव है', यह व्यतिरेक व्याप्ति, दोनों ही व्याप्तियाँ इसमें घटित होती है।

१. ज्ञान : जिससे वस्तु के विशेष धर्म को जाना जाय, वह ज्ञान मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यव तथा केवलज्ञान की अपेक्षा से पांच भेद वाला है। यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि सम्यग्दृष्टि जीव का ज्ञान, ज्ञान है। मिथ्यादृष्टि का ज्ञान, अज्ञान है, जिसके ३ भेद है, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान तथा विभंग ज्ञान (अवधि ज्ञान का विपरीत)। जहाँ-जहाँ जीव है, वहाँ-वहाँ ज्ञान है और जहाँ-जहाँ ज्ञान है, वहाँ-वहाँ जीव है। अत: ज्ञान जीव का ही लक्षण हैं। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से हीनाधिक ज्ञान तथा क्षय से केवल ज्ञान आत्मा में प्रकट होता है।

२. दर्शन : वस्तु के सामान्य धर्म को जानने की शक्ति दर्शन है, जिसके चार भेद है - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। इन चार प्रकार के दर्शनों में से एक या अधिक दर्शन हीनाधिक प्रमाण में प्रत्येक जीव को होता है। जीव के साथ दर्शन का परस्पर अविनाभावी संबंध है। दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से हीनाधिक तथा क्षय से संपूर्ण दर्शन प्रगट

ज्ञान
दर्शन
चारित्र
तप
विनय
वैयावच्च
स्वाध्याय
ध्यान
कायोत्सर्ग
नवपदों के ध्यान

होता है ।

३. चारित्र : जिसके द्वारा अष्ट कर्मों का क्षय हो, जिसके द्वारा प्रशस्त और शुभ आचरण हो, वह चारित्र है । इसके ७ भेद हैं - सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात चारित्र, देशविरति चारित्र तथा सर्वविरति चारित्र । इनमें से कोई भी चारित्र अल्पाधिक प्रमाण में प्रत्येक जीव में होता है । चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम या क्षयोपशम से हीनाधिक तथा क्षय से संपूर्ण चारित्र प्रकट होता है ।

४. तप : जो आत्मा पर लगे ८ प्रकार के कर्म रूपी कचरे को जलावे, रसादि (रस, अस्थि, मेद, मांस, मज्जा, रक्त और वीर्य) सप्त धातुओं को तपावे, उसे तप कहते है । तप के छह बाह्य और छह आभ्यन्तर कुल बारह भेद हैं । तप मोहनीय और वीर्यान्तराय, इन दोनों कर्मों के क्षयोपशम से अल्पाधिक और क्षय से संपूर्ण प्रकट होता है । तप हीनाधिक रूप से जीवमात्र मे रहता है ।

५. वीर्य : आत्मा के योग, उत्साह, बल, पराक्रम, शक्ति आदि को वीर्य कहते है । यह करणवीर्य और लब्धिवीर्य के भेद से २ प्रकार का है । मन-वचन-काया के आलंबन से होने वाला वीर्य, करण वीर्य कहलाता है और ज्ञान-दर्शनादि के उपयोग में प्रवर्तित होने वाला आत्मा का स्वाभाविक वीर्य लब्धिवीर्य कहलाता है । करणवीर्य सब सयोगी संसारी जीवों को होता है । लब्धिवीर्य वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से समस्त छद्मस्थ जीवों में हीनाधिक होने से असंख्य प्रकार का होता है । केवली तथा सिद्धात्मा के वीर्यान्तराय कर्म का संपूर्ण क्षय होने से अनन्त लब्धि वीर्य प्रकट होता है ।

६. उपयोग : जिसके द्वारा ज्ञान और दर्शन गुण की प्रवृत्ति होती है, उसे उपयोग कहते है । यह पांच ज्ञान, तीन अज्ञान और ४ दर्शन के भेद से कुल १२ प्रकार का है । इसमें भी ज्ञान का साकारोपयोग एवं दर्शन का निराकारोपयोग होता है । इसलिये इन साकार-निराकार रूप १२ उपयोगों में से यथासमय एकाधिक उपयोग हीनाधिक प्रमाण में प्रत्येक जीव में अवश्य होता है ।

संसारी जीवों में पर्याप्ति भेद

गाथा

आहारसरीरिंदिय - पज्जत्ती आणपाण भास मणे ।
चउ पंच पंच छप्पिय, इगविगलासन्निसन्नीणं ॥६॥

अन्वय

आहार-सरीर-इंदिय-पज्जत्ती-आणपाण-भास-मणे इग-विगल-असन्नि-सन्नीणं, चउ पंच पंच य छप्पि ॥६॥

संस्कृत पदानुवाद

आहार शरीरेन्द्रिय, पर्याप्तय आन प्राण भाषामनांसि ।
चतस्त्रः पंच-पंच षडपि, चैक विकलाऽसंज्ञि संज्ञिनाम् ॥६॥

शब्दार्थ

आहार - आहार	**पंच-पंच** - पांच-पांच
सरीर - शरीर	**छप्पि** - छह
इंदिय - इंद्रिय	**य** - और
पज्जत्ती - पर्याप्ति	**इग** - एकेन्द्रिय जीवों को
आणपाण - श्वासोच्छ्वास	**विगल** - विकलेन्द्रिय जीवों को
भास - भाषा	**असन्नि** - असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को
मणे - मन	**सन्नीणं** - संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को
चउ - चार	

भावार्थ

आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा तथा मन, ये छह पर्याप्तियाँ होती है । एकेन्द्रिय, विकलेंन्द्रिय, असंज्ञी तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को क्रमशः चार, पांच, पांच, छह पर्याप्तियाँ होती है ॥६॥

विशेष विवेचन

पर्याप्ति : अर्थात् शक्ति या सामर्थ्य विशेष जो पुद्गल द्रव्य के उपचय (समूह) से पैदा होता है । संसारी जीवों को शरीर के रूप में जीने की जीवन शक्ति को पर्याप्ति कहते है । कोई भी शरीर धारण करने के लिये आत्मा शक्तिमान् है पर इस शक्ति का प्रगटीकरण बिना पुद्गल-परमाणुओं की सहायता के असंभव है। पुद्गल परमाणुओं के समूह के निमित्त से आत्मा में प्रकट हुई तथा शरीरधारी अवस्था में जीवित रहने के लिये उपयोगी पुद्गलों को ग्रहण

कर तद्-तद् विषय में परिणमित करने वाली आत्मा की जीवन शक्ति को पर्याप्ति कहते है। पर्याप्तियाँ निम्नोक्त छह प्रकार की है :

१. आहार पर्याप्ति : उत्पत्ति स्थान में रहे हुए आहार को जीव जिस शक्ति के द्वारा ग्रहण कर खल और रस में परिणमित करता है, उसे आहार पर्याप्ति कहते है।

२. शरीर पर्याप्ति : रस के योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर जीव शरीर रूप सप्त धातुओं की रचना करता है, उस शक्ति विशेष को शरीर पर्याप्ति कहते है।

३. इन्द्रिय पर्याप्ति : सात धातुओं में परिणत रस से इन्द्रिय योग्य पुद्गलों को ग्रहणकर इन्द्रिय रूप में परिणमन करने की जो शक्ति है, उसे इन्द्रिय पर्याप्ति कहते है।

४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति : श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उसे श्वासोच्छ्वास के रूप में बदलने की शक्ति को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते है।

५. भाषा पर्याप्ति : जीव जिस शक्ति के द्वारा भाषा योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर भाषा के रूप में परिणत करता है, उसे भाषा पर्याप्ति कहते है।

६. मन पर्याप्ति : मन के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण कर उसे मन रूप में परिणत करने की शक्ति को मन पर्याप्ति कहते है।

समस्त संसारी जीवों के पर्याप्तियाँ होती है। इनके बिना जीवन की संभावना नहीं की जा सकती परंतु इन्द्रियों की हीनाधिक अवस्था में जीव के कम या अधिक पर्याप्तियाँ होती है। प्रस्तुत गाथा में यह स्पष्ट किया गया है।

एकेन्द्रिय जीव को प्रथम चार (आहार-शरीर-इंद्रिय-श्वासोच्छ्वास) पर्याप्तियाँ, विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) एवं असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को प्रथम पांच (उपरोक्त चार तथा भाषा) पर्याप्तियाँ, संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को छह अर्थात् सभी पर्याप्तियाँ होती हैं।

जो जीव स्वयं की जीवन शक्ति पाने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेता है, वह पर्याप्त जीव कहलाता है। जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किये बिना ही मर जाता है, वह अपर्याप्त जीव कहलाता है।

पर्याप्त अवस्था प्राप्त कराने वाले कर्म को पर्याप्त नाम कर्म तथा अपर्याप्त अवस्था प्राप्त कराने वाले कर्म को अपर्याप्त नाम कर्म कहते है ।

संसारी जीवों के प्राण

गाथा

पणिंदिअ-त्ति बलूसा - साऊ दस पाण चउ छ सग अट्ठ ।
इग-दु-ति-चउरिंदीणं, असन्निसन्नीणं नव दस य ॥७॥

अन्वय

पण-इंदिय त्ति बल ऊसास आऊ दस पाण इग-दु-ति-चउरिंदीणं असन्नि-सन्नीणं चउ-छ-सग-अट्ठ-नव य दस ॥७॥

संस्कृत पदानुवाद

पंचेन्द्रिय-त्रिबलोच्छ्वासायूंषि दश प्राणाश्चत्वारः षट् सप्ताष्टौ ।
एक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियाणमसंज्ञि-संज्ञिनां नव दश च ॥७॥

शब्दार्थ

पणिंदिअ - पांच इन्द्रियाँ	**इग** - एकेन्द्रिय को
त्ति बल - तीन बल	**दु** - बेइन्द्रिय को
ऊसास - श्वासोच्छ्वास	**ति** - तेइन्द्रिय को
आऊ - आयुष्य	**चउरिंदीणं** - चउरिंद्रिय को
दस - दश	**असन्नि** - असंज्ञी पंचेन्द्रिय को
पाण - प्राण हैं ।	**सन्नीणं** - संज्ञी पंचेन्द्रिय को
चउ - ४ प्राण	**नव** - नौ प्राण
छ - ६ प्राण	**दस** - दस प्राण
सग - ७ प्राण	**य** - और
अट्ठ - ८ प्राण	

भावार्थ

पांच इन्द्रियाँ, तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य, ये दस प्राण हैं । एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय तथा संज्ञी

पंचेन्द्रिय को क्रमशः चार, छह, सात, आठ, नौ और दस प्राण होते हैं ॥७॥

विशेष विवेचन

प्राण : जिसके द्वारा जीव जीवित रहे अथवा जीवन धारण करे, वह प्राण कहलाता है ।

प्राण के मुख्य दो भेद है - द्रव्य प्राण तथा भाव प्राण । जिसके संयोग से जीव जीवित रहता है व वियोग से मृत्यु को प्राप्त होता है, वह द्रव्य प्राण है । ये द्रव्य प्राण १० होते है जो केवल जीव द्रव्य में ही होते है । प्राणों से ही संसारी जीव का जीवन है । इन प्राणों के अभाव में कोई भी जीव जीवित नहीं रह सकता । ये द्रव्य प्राण जीव के बाह्य लक्षण है । आत्मा के निज-गुणों को भावप्राण कहते है । ये चार है - अनंतज्ञान-दर्शन-सुख एवं वीर्य।

५ इन्द्रिय प्राण : जीव तीन लोक के ऐश्वर्य से सम्पन्न है, अतः इसे इंद्र कहते है । इंद्र अर्थात् आत्मा, इसका जो चिन्ह है, उसे इन्द्रिय कहते है । इन्द्रियाँ ५ है - स्पर्शेन्द्रिय, रसेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय तथा श्रोतेन्द्रिय ।

३ बल प्राण : मन, वचन, काया के निमित्त से होने वाले जीव के व्यापार को योग कहते है । इस शक्ति को ही बल प्राण कहा जाता है, जो कि तीन प्रकार का है - मनोबल प्राण, वचनबल प्राण, कायबल प्राण ।

श्वासोच्छ्वास प्राण : श्वासोच्छ्वास के योग्य पुद्गल-वर्गणाओं को ग्रहण कर उन्हें श्वासोच्छ्वास रूप परिणत करके उसके आलंबन से वायु को शरीर में ग्रहण करने और बाहर निकालने की जो शक्ति है, उसे श्वासोच्छ्वास प्राण कहा जाता है ।

आयुष्य प्राण : जीव जिसके उदय में एक शरीर में अमुक समय तक रहता है और जिसके अनुदय से उस शरीर से निकलता है, उसे आयुष्य प्राण कहते है। जीव को जीने में मुख्य कारण आयुष्य कर्म के पुद्गल ही है। आयुष्य कर्म के पुद्गल समाप्त होते ही जीव आहारादि अनेक साधनों द्वारा भी जीवित नहीं रह सकता है ।

किस जीव को कितने प्राण :

एकेन्द्रिय जीव को - १) स्पर्शनेन्द्रिय, २) काय बल, ३) श्वासोच्छ्वास तथा ४) आयुष्य, ये चार प्राण होते है ।

बेइन्द्रिय को - १) स्पर्शेन्द्रिय, २) रसनेन्द्रिय, ३) वचन बल, ४) कायबल, ५) श्वासोच्छ्वास तथा ६) आयुष्य, ये छह प्राण होते हैं।

तेइन्द्रिय को घ्राणेन्द्रिय तथा उपरोक्त छह, ये सात प्राण होते हैं।

चतुरिन्द्रिय को चक्षुरिन्द्रिय अतिरिक्त होने से उपरोक्त सात सहित आठ प्राण होते हैं।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय को श्रोत्रेन्द्रिय अधिक होने से नौ प्राण होते हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय को मनोबल प्राण सहित कुल १० प्राण होते हैं।

अजीव तत्त्व के चौदह भेद

गाथा

धम्मा-धम्मागासा - तिय-तिय भेया तहेव अद्धा य।
खंधा देस पएसा, परमाणु अजीव चउदसहा ॥८॥

अन्वय

तिय-तिय-भेया-धम्म-अधम्म-आगासा, तह एव अद्धा य खंधा-देस-पएसा, परमाणु चउदसहा अजीव ॥८॥

संस्कृत पदानुवाद

धर्माऽधर्माऽकाशा- स्त्रिकत्रिक भेदास्तथैवाद्धा च।
स्कन्धा देश प्रदेशाः, परमाणवोऽजीवश्चतुर्दशधा ॥८॥

शब्दार्थ

धम्म - धर्मास्तिकाय	**य** - और
अधम्म - अधर्मास्तिकाय	**खंधा** - स्कन्ध
आगासा - आकाशास्तिकाय	**देस** - देश
तिय-तिय - तीन-तीन	**पएसा** - प्रदेश
भेया - भेद वाले हैं।	**परमाणु** - परमाणु
तहेव - तथैव (उसी प्रकार)	**अजीव** - अजीव के
अद्धा - काल	**चउदसहा** - चौदह भेद हैं।

भावार्थ

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय के स्कंध, देश एवं प्रदेश की अपेक्षा से तीन-तीन भेद तथा पुद्गलास्तिकाय के परमाणु सहित चार भेद होते हैं, उसमें काल का एक भेद मिलाने से पांच अजीव द्रव्यों के कुल चौदह भेद होते हैं ॥९॥

विशेष विवेचन

अजीव : जो चैतन्य रहित एवं जड लक्षण से युक्त हो, जिसे सुख-दुःख का अनुभव न हो, वह अजीव है ।

अजीव के मुख्य भेद ५ है - १) धर्मास्तिकाय २) अधर्मास्तिकाय, ३) आकाशास्तिकाय, ४) काल तथा ५) पुद्गलास्तिकाय । धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय तथा आकाशास्तिकाय इन तीन द्रव्यों के स्कंध-देश-प्रदेश, ये तीन-तीन उपभेद होने से कुल ९ भेद होते हैं । काल का एक भेद मिलाने से १० भेद होते हैं । पुद्गल के स्कंध-देश-प्रदेश-परमाणु ये चार भेद मिलने से ५ अजीव द्रव्यों के कुल १४ भेद होते हैं । जो निम्न है -

१) धर्मास्तिकाय स्कंध, २) धर्मास्तिकाय देश ३) धर्मास्तिकाय प्रदेश, ४) अधर्मास्तिकाय स्कंध, ५) अधर्मास्तिकाय देश, ६) अधर्मास्तिकाय प्रदेश, ७) आकाशास्तिकाय स्कंध, ८) आकाशास्तिकाय देश, ९) आकाशास्तिकाय प्रदेश, १०) काल, ११) पुद्गलास्तिकाय स्कंध, १२) पुद्गलास्तिकाय देश, १३) पुद्गलास्तिकाय प्रदेश, १४) पुद्गलास्तिकाय परमाणु ।

अस्तिकाय : प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते है ।

स्कंध : वस्तु के पूरे भाग को अथवा परमाणुओं के समूह को स्कंध कहते है । जैसे मोतीचूर का पूरा लड्डू ।

देश : स्कंध की अपेक्षा न्यून सविभाज्य विभाग को देश कहते है । जैसे अनेक कणों वाले मोतीचूर के लड्डू का एक भाग ।

प्रदेश : स्कंध की अपेक्षा से न्यून निर्विभाज्य विभाग को, जो अणु के जितना ही सूक्ष्म हो परन्तु स्कंध के साथ जो प्रतिबद्ध हो, वह प्रदेश कहलाता है । जैसे मोतीचूर के लड्डू का एक कण ।

परमाणु : स्कंध या देश से पृथक् हुए निर्विभाज्य सूक्ष्मतम अंश को परमाणु कहते है । जैसे मोतीचूर के लड्डू से अलग हुआ एक कण ।

पांच अजीव एवं उनका स्वभाव

गाथा

धम्माधम्मा पुग्गल, नह कालो पंच हुंति अजीवा ।
चलणसहावो धम्मो, थिरसंठाणो अहम्मो य ॥९॥
अवगाहो आगासं, पुग्गलजीवाण पुग्गला चउहा ।
खंधा देस पएसा, परमाणू चेव नायव्वा ॥१०॥

अन्वय

धम्माधम्मा पुग्गल, नह कालो पंच अजीवा हुंति चलण सहावो धम्मो थिर संठाणो अहम्मो ॥९॥

पुग्गल जीवाण अवगाहो आगासं, खंधा देस पएसा, परमाणु चउहा चेव पुग्गला नायव्वा ॥१०॥

संस्कृत पदानुवाद

धर्माधर्मौ पुद्गला, नभः कालः पंच भवन्त्यजीवाः ।
चलन स्वभावो धर्मः, स्थिर संस्थानोऽधर्मश्च ॥९॥
अवकाश आकाशं, पुद्गल जीवानां पुद्गलाश्चतुर्द्धा ।
स्कन्धा देश प्रदेशाः, परमाणवश्चैव ज्ञातव्याः ॥१०॥

शब्दार्थ

धम्म - धर्मास्तिकाय	**चलण सहावो** - चलने में सहायता करने के स्वभाव वाला ।
अधम्मा - अधर्मास्तिकाय	**धम्मो** - धर्मास्तिकाय
पुग्गल - पुद्गलास्तिकाय	**थिर संठाणो** - स्थिर रहने में सहायता करने के स्वभाव वाला ।
नह - आकाशास्तिकाय	**अहम्मो** - अधर्मास्तिकाय
कालो - काल	**य** - और
पंच - पांच (ये पांच)	
हुंति - होते हैं ।	
अजीवा - अजीव	

शब्दार्थ

अवगाहो - अवकाश (देने के स्वभाववाला)

आगासं - आकाशास्तिकाय	**देस** - देश
पुग्गल - पुद्गलों (और)	**पएसा** - प्रदेश
जीवाण - जीवों को	**परमाणु** - परमाणु
पुग्गला - पुद्गल	**चेव** - निश्चय ही
चउहा - चार प्रकार का है	**नायव्वा** - जानने चाहिए ।
खंधा - स्कंध	

भावार्थ

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, आकाशास्तिकाय तथा काल, ये पांच अजीव (द्रव्य) हैं ।

चलने में सहायता देने के स्वभाव वाला धर्मास्तिकाय है तथा ठहरने में सहायता देने के स्वभाववाला अधर्मास्तिकाय है ॥९॥

पुद्गलों तथा जीवों को अवकाश या स्थान देने के स्वभाव वाला आकाशास्तिकाय है । स्कंध, देश, प्रदेश तथा परमाणु, ये चार पुद्गल के भेद जानने चाहिए ॥१०॥

विशेष विवेचन

धर्मास्तिकाय : जो जीव और पुद्गल को चलने में सहायता करे ।

अधर्मास्तिकाय : जो जीव और पुद्गल को रूकने में सहायता करे ।

आकाशास्तिकाय : जो पुद्गल तथा जीवों को स्थान या अवकाश दे ।

पुद्गलास्तिकाय : जो प्रतिसमय पूरण (मिलना), गलन (बिखरना) के स्वभाव वाला हो, वह पुद्गल कहलाता है ।

काल : जो द्रव्यों के परिणमन में सहकारी हो अर्थात् नये को पुराना और पुराने को नष्ट करे, उसे काल कहते है ।

उपरोक्त पांचो द्रव्य अजीव हैं । उसमें जीवास्तिकाय को सम्मिलित करने पर षड्द्रव्य होते हैं । इनमें से केवल जीव द्रव्य ही चैतन्यलक्षण से युक्त है । जीव द्रव्य की गति, स्थिति, अवकाश आदि में अजीव द्रव्य उदासीन रूप से

सहायक बनते है ।

धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल तथा जीव इन पांचों के साथ अस्तिकाय शब्द लगा हुआ होने से दर्शन ग्रंथों में इन्हें पंचास्तिकाय भी कहा जाता है। जो द्रव्य प्रदेशों का काय (समूह) रुप हो, वह अस्तिकाय है। काल को अस्तिकाय नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसमें प्रदेश समूह का अभाव है। वह केवल एक वर्तमान समय रूप ही है। तथा निश्चय से वर्तना लक्षण वाला एवं व्यवहार से भूत-भविष्य रूप भेद वाला है ।

छह द्रव्यों में द्रव्यादि वर्गणा

द्रव्य का नाम	द्रव्य से	क्षेत्र से	काल से	भाव से	गुण से	संस्थान से
१) धर्मास्तिकाय	एक	१४ राजलोक व्यापक	अनादि अनंत	अरूपी	गति में सहायक जड स्वभाव	लोकाकाश
२) अधर्मास्तिकाय	एक	१४ राजलोक व्यापक	अनादि अनंत	अरूपी	स्थिति में सहायक जड स्वभाव	लोकाकाश
३) आकाशास्तिकाय	एक	लोकालोक व्यापक	अनादि अनंत	अरूपी	अवकाश दायक जड स्वभाव	घनगोलक
४) पुद्गलास्तिकाय	अनंत	१४ राजलोक व्यापक	अनादि अनंत	रूपी	पूरण-गलन जड स्वभाव	मंडलादि
५) जीवास्तिकाय	अनंत	१४ राजलोक व्यापक	अनादि अनंत	अरूपी	ज्ञान-दर्शन चैतन्य उपयोगादि	देहाकृति
६) काल	अनंत	ढाई द्वीप	अनादि अनंत	अरूपी	वर्त्तना	—

पुद्गल का लक्षण

गाथा

सद्दंधयार उज्जोअ, पभा छायातवेहि अ ।
वण्ण-गंध-रसा-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥११॥

अन्वय

सद्द अंधयार उज्जोअ, पभा छाया अ आतवेहि वन्न गंध रसा फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥११॥

संस्कृत पदानुवाद

शब्दान्धकारावुद्योतः, प्रभा छायातपैश्च ।
वर्णो गंधो रसः स्पर्शः, पुद्गलानां तु लक्षणम् ॥११॥

शब्दार्थ

सद्द - शब्द	**वन्न** - वर्ण
अंधयार - अंधकार	**गंध** - गंध
उज्जोअ - उद्योत	**रसा** - रस
पभा - प्रभा	**फासा** - स्पर्श
छाया - प्रतिबिंब	**पुग्गलाणं** - पुद्गलों के
आतवेहि - आतप	**तु** - ही
अ - और	**लक्खणं** - लक्षण है ।

भावार्थ

शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श, ये पुद्गलों के ही लक्षण है ॥११॥

विशेष विवेचन

पूर्वोक्त गाथा में धर्मास्तिकाय आदि ३ द्रव्यों के लक्षण बताये गये थे ।

प्रस्तुत गाथा में पुद्गल के लक्षणों का वर्णन है । प्रति समय नये परमाणु आने से पूरण धर्म वाला तथा प्रतिसमय पूर्वबद्ध-परमाणु बिखरने से गलन धर्म

चित्र : पुद्गल के लक्षण

वाला पुद्गल है। इस गाथा में विवक्षित लक्षण प्रत्येक पुद्गल में अवश्य विद्यमान होते है।

१. शब्द : अर्थात् ध्वनि, आवाज या नाद। यह सचित्त, अचित्त तथा मिश्र शब्द के भेद से तीन प्रकार का है।

अ. सचित्त शब्द : जीव मुख से बोले, वह सचित्त शब्द है।

ब. अचित्त शब्द : पाषाणादि दो पदार्थों के संघर्ष से होने वाली आवाज अचित्त शब्द है।

स. मिश्र शब्द : जीव के प्रयत्न से बजने वाली वीणा, बांसुरी आदि की आवाज, मिश्र शब्द है।

शब्द की उत्पत्ति पुद्गल में से होती है और शब्द स्वयं भी पुद्गल रूप ही है। इसकी उत्पत्ति अष्टस्पर्शी पुद्गल स्कंध में से होती है जबकि शब्द स्वयं चतुःस्पर्शी है।

२. अंधकार : प्रकाश का अभाव अँधकार है जो कि पुद्गल रूप है। जैनदर्शन में अंधकार को भी पुद्गल कहा गया है जबकि नैयायिक अंधकार को पुद्गल न मानकर केवल तेज का अभाव मानते हैं।

३. उद्योत : चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा इत्यादि पदार्थों तथा जुगनू आदि जीवों के शीतल प्रकाश को उद्योत कहते है। उद्योत स्वयं भी पुद्गल स्कन्ध रूप है, जिसमें से शीत प्रकाश प्रकट होता है।

४. प्रभा : चन्द्रादि के प्रकाश में से तथा सूर्य के प्रकाश में से जो दूसरा किरण रहित उपप्रकाश पडता है, वह प्रभा है। यदि प्रभा न हो तो सूर्यादि की किरणों का प्रकाश जहाँ पडता हो, वहीं केवल प्रकाश रहे और उसके समीप के स्थान में ही अमावस्या का गाढ अन्धकार व्याप्त रहे। परन्तु उपप्रकाश रूप प्रभा के होने से ऐसा नहीं होता।

५. छाया : दर्पण, प्रकाश, अथवा जल में पडने वाला प्रतिबिम्ब छाया कहलाती है।

६. आतप : शीत वस्तु का उष्ण प्रकाश आतप कहलाता है। इस कर्म का उदय उन्हीं जीवों को होता है, जिनका शरीर स्वयं तो ठण्डा है लेकिन उष्ण

प्रकाश करते हैं। जैसे सूर्य का विमान एवं सूर्यकान्तादि रत्न स्वयं शीत है परन्तु प्रकाश उष्ण होता है। आतप नाम कर्म का उदय अग्निकाय के जीवों को नहीं होता बल्कि सूर्यबिम्ब के बाहर पृथ्वीकायिक जीवों को ही होता है।

७. वर्ण : जिस कर्म के उदय से शरीर में कृष्ण, गौर आदि वर्ण (रंग) हो, उसे वर्ण कहते है। यह पांच भेद वाला है - १) कृष्ण, २) नील, ३) लोहित, ४) हारिद्र तथा ५) श्वेत। वर्ण यह भी पुद्गल का लक्षण है, क्योंकि प्रत्येक पुद्गल परमाणु अथवा इसके स्कंध में एकाधिक वर्ण पाये जाते हैं।

८. गन्ध : घ्राणेन्द्रिय के विषय को गंध कहते है। इसके २ भेद हैं - सुरभिगंध तथा दुरभि गंध। गंध भी पुद्गल द्रव्य का लक्षण है। अन्य किसी भी द्रव्य में गंध का अस्तित्व नहीं होता। एक परमाणु में एक गंध तथा द्विप्रदेशी आदि स्कन्धों में दो गंध भी यथासंभव होती है।

९. रस : रसनेन्द्रिय के विषय को रस कहते है। इसके ५ भेद हैं – तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल तथा मधुर। प्रत्येक पुद्गल में रस होता है। एक पुद्गल में एक तथा द्विप्रदेशी स्कन्ध में एक से पांच रस पाये जाते हैं। रस भी पुद्गल का ही लक्षण है।

१०. स्पर्श : जो स्पर्शनेन्द्रिय का विषय हो, वह स्पर्श कहलाता है। इसके ८ भेद हैं - शीत-उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष, लघु-गुरु, मृदु-कर्कश। एक परमाणु में शीत और स्निग्ध अथवा शीत और रूक्ष, इन चार प्रकारों में से २ प्रकार के स्पर्श होते है। सूक्ष्म परिणामी स्कन्धों में शीत-उष्ण-स्निग्ध-रूक्ष, ये चार स्पर्श तथा बादर स्कन्धों में आठों ही स्पर्श होते हैं।

काल द्रव्य स्वरूप

गाथा

एगा कोडि सत्तसट्ठि, लक्खा सत्तहत्तरी सहस्सा य।
दोय सया सोलहिआ, आवलिआ इगमुहुत्तंम्मि ॥१२॥

अन्वय

इग मुहुत्तंम्मि एगा कोडि सत्तसट्ठि लक्खा य सत्तहत्तरी सहस्सा दो सया य सोल अहिया आवलिया ॥१२॥

संस्कृत पदानुवाद

एका कोटिः सप्तषष्टिर्लक्षाः सप्तसप्ततिः सहस्राश्च ।
द्वे च शते षोडशाधिके, आवलिका एकस्मिन्मुहूर्ते ॥१२॥

शब्दार्थ

एगा कोडि - एक करोड	**दोसया** - दो सौ
सतसट्ठि - सडसठ (६७)	**सोल** - सोलह
लक्खा - लाख	**अहिया** - अधिक
सत्तहत्तरी - सत्तहत्तर (७७)	**आवलिया** - आवलिकाएँ
सहस्सा - हजार	**इग** - एक
य - और	**मुहुत्तम्मि** - मुहूर्त में

आवार्थ

एक मुहूर्त्त में एक करोड, सडसठ लाख, सत्तहत्तर हजार, दो सौ सोलह (१,६७,७७,२१६) से (कुछ) अधिक आवलिकाएँ होती हैं ॥१२॥

प्रस्तुत गाथा में ही अर्थ स्पष्ट है । समय, आवलिका आदि कलाओं (विभागों) के समूह को काल कहते है । काल का अगली गाथा में विस्तार से विवेचन किया गया है ।

व्यवहार में उपयोगी काल

गाथा

समयावलि मुहुत्ता, दीहा पक्खा य मास वरिसा य ।
भणिओ पलिआ सागर, उस्सप्पिणिसप्पिणी कालो ॥१३॥

अन्वय

समय आवलि मुहुत्ता दीहा पक्खा मास वरिसा पलिआ सागर उस्सप्पिणी य ओसप्पिणी कालो भणियो ॥१३॥

संस्कृत पदानुवाद

समयावलि मुहूर्त्ता, दिवसाः पक्षाश्च मासा वर्षाणि च ।
भणितः पल्याः सागराः, उत्सर्पिण्यवसर्पिणी कालः ॥१३॥

शब्दार्थ

समय - समय	**भणिओ** - कहा गया है ।
आवली - आवलिका	**पलिया** - पल्योपम
मुहुत्ता - मुहूर्त्त	**सागर** - सागरोपम
दीहा - दिन	**उस्सप्पिणी** - उत्सर्पिणी
पक्खा - पक्ष	**सप्पिणी** - अवसर्पिणी
मास - मास	**कालो** - काल
वरिसा - वर्ष	**य** - और

भावार्थ

समय, आवलिका, मुहूर्त्त, दिवस, पक्ष, मास, वर्ष, पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल कहा गया है ॥१३॥

विशेष विवेचन

पूर्वोक्त गाथा में मुहूर्त्त को स्पष्ट किया गया है परन्तु प्रस्तुत गाथा में व्यवहारिक गणना करने योग्य काल का विवेचन है । जैन दर्शन में काल की व्याख्या अत्यंत सूक्ष्म होने पर भी पूर्ण तार्किक है ।

समय : काल का अत्यंत सूक्ष्म अंश, जिसका विभाग न हो सके अथवा जिसके भाग की कल्पना केवली भगवन्त के ज्ञान द्वारा भी न हो सके, ऐसे निर्विभाज्य अंश को समय कहते है । आवलिका के असंख्यातवें भाग को भी समय कहते है । जैसे, पुद्गल द्रव्य का सूक्ष्म विभाग परमाणु है, ठीक उसी प्रकार काल का सूक्ष्म विभाग समय है । आँख के एक पलकारे में असंख्यात समय व्यतीत हो जाते हैं । जैसे अति जीर्ण वस्त्र को फाडने पर एक तंतु से दूसरे तंतु के फटने में जो समय लगता है या कमल के १०० पत्रों को तीक्ष्ण शस्त्र से एक साथ बींधने पर एक पत्र से दूसरे पत्र को बींधने में जितना समय लगता है, वह भी असंख्यात समय कहलाता है । इस प्रकार जैनदर्शन में समय

की व्याख्या अतिसूक्ष्म है ।

आवलिका : असंख्यात समय की एक आवलिका होती है ।

मुहूर्त्त : एक करोड, सतसठ लाख, सत्तहत्तर हजार, दो सौ सोलह (१,६७, ७७, २१६) से कुछ अधिक आवलिकाओं का एक मुहूर्त्त होता है । अथवा २ घडी (४८ मिनट) का भी एक मुहूर्त्त होता है ।[१]

दिन : ३० मुहूर्त्त का एक दिन होता है ।

पक्ष : पन्द्रह दिनों का एक पक्ष होता है ।

मास : दो पक्ष का एक मास होता है ।

वर्ष : बारह मास का एक वर्ष होता है ।

पल्योपम : असंख्यात वर्षों का एक पल्योपम होता है ।

सागरोपम : दस कोडाकोडी[२] पल्योपम का एक सागरोपम होता है ।

उत्सर्पिणी : दस कोडाकोडी सागरोपम का एक उत्सर्पिणी काल होता है । इसमें ६ आरे होते हैं ।

अवसर्पिणी : इतने ही काल का एक अवसर्पिणी काल होता है ।

कालचक्र - उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी, दोनों को मिलाकर २० कोडाकोडी सागरोपम का एक कालचक्र होता है ।

एक पुद्गल परावर्त्तन काल : अनंत कालचक्रों का एक पुद्गल परावर्त्तन काल होता है ।

१ समय - अविभाज्य अतिसूक्ष्म काल

१ जघन्य अन्तर्मुहूर्त - नौ समय

१ आवलिका - असंख्यात समय

१ क्षुल्लक भव - २५६ आवलिकाएँ

---

१. वर्तमान समयानुसार एक सेकेंड में ५८२५ आवलिकाओं से कुछ अंश अधिक होता है ।

२. करोड को करोड से गुणा करने पर कोडाकोडी होता है ।

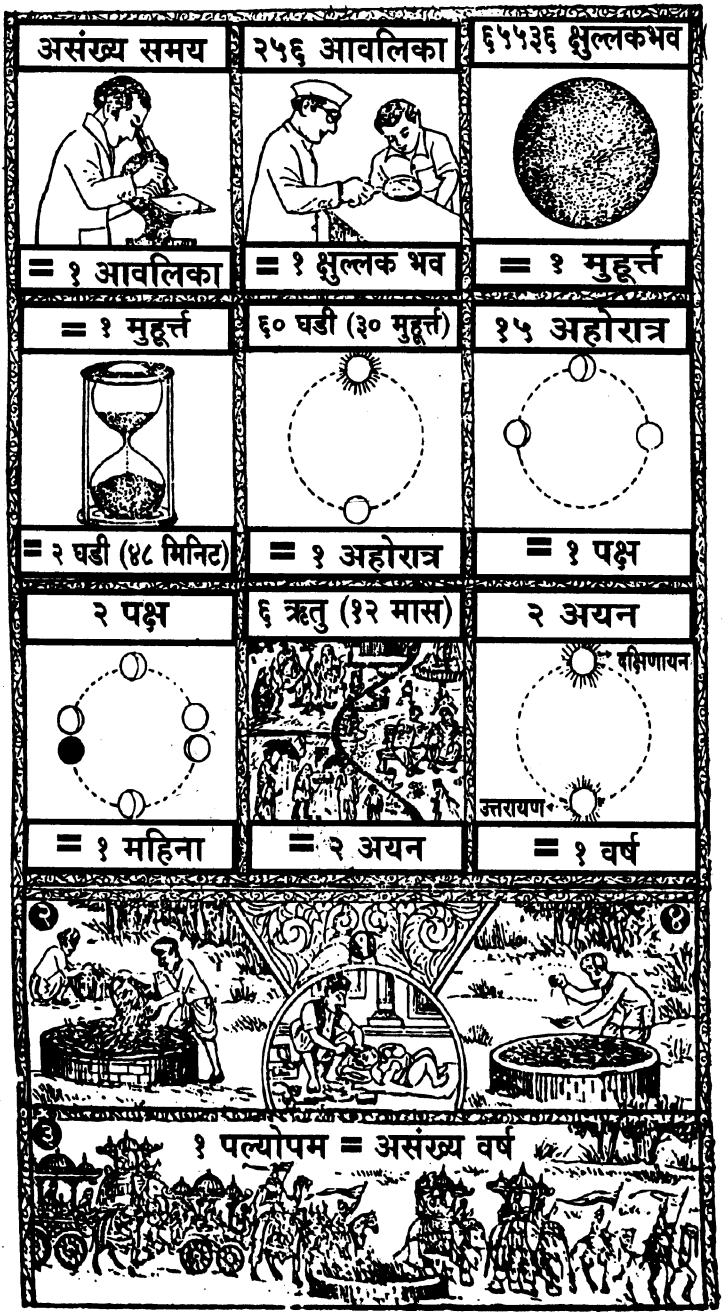
असंख्य समय
= १ आवलिका
२५६ आवलिका
= १ क्षुल्लक भव
६५५३६ क्षुल्लकभव
= १ मुहूर्त्त
= १ मुहूर्त्त
= २ घडी (४८ मिनिट)
६० घडी (३० मुहूर्त्त)
= १ अहोरात्र
१५ अहोरात्र
= १ पक्ष
२ पक्ष
= १ महिना
६ ऋतु (१२ मास)
= २ अयन
२ अयन
दक्षिणायन
उत्तरायण
= १ वर्ष
१ पल्योपम = असंख्य वर्ष

चित्र : काल के भेद

१ **श्वासोच्छ्वास** - ४४४६ $\frac{२४५८}{३७७३}$ आवलिकाएँ

१ **स्तोक** - ७ (श्वासोच्छ्वास) प्राण

१ **लव** - ७ स्तोक

१ **घड़ी** - ३८$^{१}/_{२}$ लव अथवा २४ मिनट

१ **मुहूर्त्त** - ७७ लव या २ घडी या ६५५३६ क्षुल्लक भव या ४८ मिनट

१ **उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त** - एक समय न्यून १ घडी

१ **दिवस** - १५ मुहूर्त्त या १२ घंटे

१ **अहोरात्र** - ३० मुहूर्त्त या २४ घंटे

१ **पक्ष** - १५ अहोरात्र

१ **मास** - २ पक्ष

१ **उत्तरायण या दक्षिणायन** - ६ मास

१ **वर्ष** - २ अयन या १२ मास

१ **युग** - ५ वर्ष

१ **पूर्वांग** - ८४ लाख वर्ष

१ **पूर्व** - ८४ लाख पूर्वांग अथवा ७०५६०००००००० वर्ष

१ **पल्योपम** - असंख्यात वर्ष

१ **सागरोपम** - १० कोडाकोडी पल्योपम

१ **उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल** - १० कोडाकोडी सागरोपम

१ **कालचक्र** - २० कोडाकोडी सागरोपम

१ **भूतकाल** - अनंत पुद्गल परावर्त्तन काल

१ **भविष्यत्काल** - अनंत भूतकाल

१ **वर्तमानकाल** - एक समय

१ **संपूर्ण व्यवहारकाल** - भूत-भविष्य तथा वर्तमानकाल

छह द्रव्य विचारणा

गाथा

परिणामी जीव मुत्तं, सपएसा एग खित्त किरिआ य ।
णिच्चं कारण कत्ता, सव्वगय इयर अप्पवेसे ॥१४॥

अन्वय

परिणामी जीव मुत्तं, सपएसा एग खित्त किरिया य णिच्चं कारण कत्ता सव्वगय इयर अप्पवेसे ॥१४॥

संस्कृत पदानुवाद

परिणामी जीवो मूर्त्तः, सप्रदेश एकः क्षेत्रं क्रिया च ।
नित्यः कारणं कर्त्ता, सर्वगतमितर अप्रवेशः ॥१४॥

शब्दार्थ

परिणामी - परिणामी	**णिच्चं** - नित्य
जीव - जीव	**कारण** - कारण
मुत्तं - मूर्त, रूपी	**कत्ता** - कर्त्ता
सपएसा - सप्रदेशी	**सव्वगय** - सर्वगत, सर्वव्यापी
एग - एक	**इयर** - इतर (प्रतिपक्ष भेद सहित)
खित्त - क्षेत्र	**अप्पवेसे** - अप्रवेशी
किरिया - क्रियावान्	**य** - और

भावार्थ

(छह द्रव्य में) परिणामी, जीव, मूर्त्त, सप्रदेशी, एक, क्षेत्र, सक्रिय, नित्य, कारण, कर्त्ता, सर्वव्यापी और भेदसहित प्रतिपक्ष अप्रवेशीपन की विचारणा की जाती है ॥१४॥

विशेष विवेचन

पूर्वोक्त गाथाओं में छह द्रव्यों के स्वभाव, लक्षण आदि की मीमांसा की गयी। प्रस्तुत गाथा में इन्हीं छह द्रव्यों की परिणामी आदि द्वारों की अपेक्षा से विचारणा की गयी है।

१. **परिणामी :** एक क्रिया से अन्य क्रिया में अथवा एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाना परिणाम कहलाता है। धर्मान्तर की प्राप्ति होना परिणाम है। छह द्रव्यों में जीव तथा पुद्गल, ये दो द्रव्य परिणामी हैं। इन दोनों के परिणाम के दस-दस भेद हैं। शेष चार द्रव्य धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय तथा काल अपरिणामी अर्थात् स्व-स्वभाव को छोडकर अन्य स्वभाव या धर्म को प्राप्त नहीं होने वाले हैं।

२. **जीव :** केवल जीव द्रव्य ही जीव है। शेष ५ द्रव्य अजीव हैं।

३. **मूर्त्त :** पुद्गल द्रव्य वर्ण, गंध, रस, स्पर्श सहित होने से (रूपी) मूर्त्त है। शेष ५ (अरूपी) अमूर्त्त अर्थात् वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित है।

४. **सप्रदेशी :** षट्द्रव्य में धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्य सप्रदेशी अर्थात् अणुओं के समूह वाले है। काल द्रव्य अप्रदेशी है। यह अणुओं का पिंडरूप नहीं है।

५. **एक :** धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय ये तीन द्रव्य एक-एक है। शेष तीनों द्रव्य अनंत-अनंत होने से अनेक हैं।

६. **क्षेत्र :** जिसमें पदार्थ (द्रव्य) रहे, वह क्षेत्र है और उसमें रहने वाले द्रव्य क्षेत्री है। छह द्रव्यों में आकाशास्तिकाय द्रव्य क्षेत्र है। शेष पांच द्रव्य उसमें रहते हैं, अतः क्षेत्री है।

७. **क्रिया :** गति करने वाले द्रव्य सक्रिय तथा गत्यादि क्रिया से रहित द्रव्य अक्रिय कहलाते हैं। जीव और पुद्गल, ये दो द्रव्य क्रियावान् होने से सक्रिय है। धर्मास्तिकाय आदि चार द्रव्य स्थिर स्वभावी होने से अक्रिय है।

८. **नित्य :** सदाकाल एक ही अवस्था में स्थिर रहने वाला शाश्वत द्रव्य

नित्य है तथा भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को प्राप्त करने वाला द्रव्य अनित्य है। छह द्रव्यों मे पुद्गल तथा जीव अनित्य है। हालांकि हर आत्मा नित्य है क्योंकि उसके स्वभाव, गुण में परिवर्तन नहीं होता तथापि देवादि गतियों में परिभ्रमण कर पर्यायों को परिवर्तित करता रहता है। इस अपेक्षा से जीव द्रव्य को अनित्य कहा है। धर्मास्तिकायादि ४ द्रव्य सदाकाल अपने स्वरूप में स्थिर रहने से नित्य है। यद्यपि प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रुव स्वभाव वाला होने से नित्यानित्य है तथापि स्थूल अवस्था की अपेक्षा से यहाँ विचारणा की गयी है।

९. कारण : जो द्रव्य अन्य द्रव्य के कार्य में उपकारी कारणभूत हो, वह कारण द्रव्य है और वह कारण द्रव्य जिन द्रव्यों के कार्य में कारणभूत हुआ हो, वह अकारण द्रव्य है। छह द्रव्यों मे धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्य कारण है तथा एक जीव द्रव्य अकारण है। जैसे कुम्हार के कुंभ कार्य में चक्र-दंडादि द्रव्य कारण और कुम्हार स्वयं अकारण है। उसी प्रकार जीव के गति आदि कार्यों में धर्मास्तिकाय आदि तथा योगादि कार्यों में पुद्गल उपकारी कारण है परंतु इन पांचों द्रव्यों के लिये जीव उपकारी नहीं है।

१०. कर्त्ता : जो द्रव्य अन्य द्रव्य की क्रिया के प्रति अधिकारी हो, वह कर्त्ता है। उसके उपभोग में आने वाले द्रव्य अकर्त्ता है। छह द्रव्यों में जीव द्रव्य कर्त्ता है तथा शेष ५ अकर्त्ता है।

११. सर्वगत (सर्वव्यापी) : जो द्रव्य संपूर्ण स्थान को व्याप्त करके रहे, वह सर्वव्यापी है तथा जो अमुक स्थान को व्याप्त करके रहे, वह देशव्यापी है। आकाश द्रव्य लोकालोक प्रमाण - सर्वव्यापी होने से सर्वगत है तथा शेष पांच द्रव्य लोकाकाश में ही होने से देशव्यापी है।

१२. अप्रवेशी : एक द्रव्य का अन्य द्रव्य रूप हो जाना प्रवेश कहलाता है। जो द्रव्य अन्य द्रव्यरूप में परिवर्तित हो जाते है, वे सप्रवेशी द्रव्य कहलाते हैं और जो अन्य द्रव्य में प्रविष्ट न होते हुए स्वयं के स्वरूप में कायम रहते है, वे अप्रवेशी द्रव्य कहलाते है। यद्यपि जगत में समस्त द्रव्य एक दूसरे में परस्पर प्रवेश करके एक ही स्थान में रहे हुए है तथापि कोई भी द्रव्य निज

विश्व क्या है ?

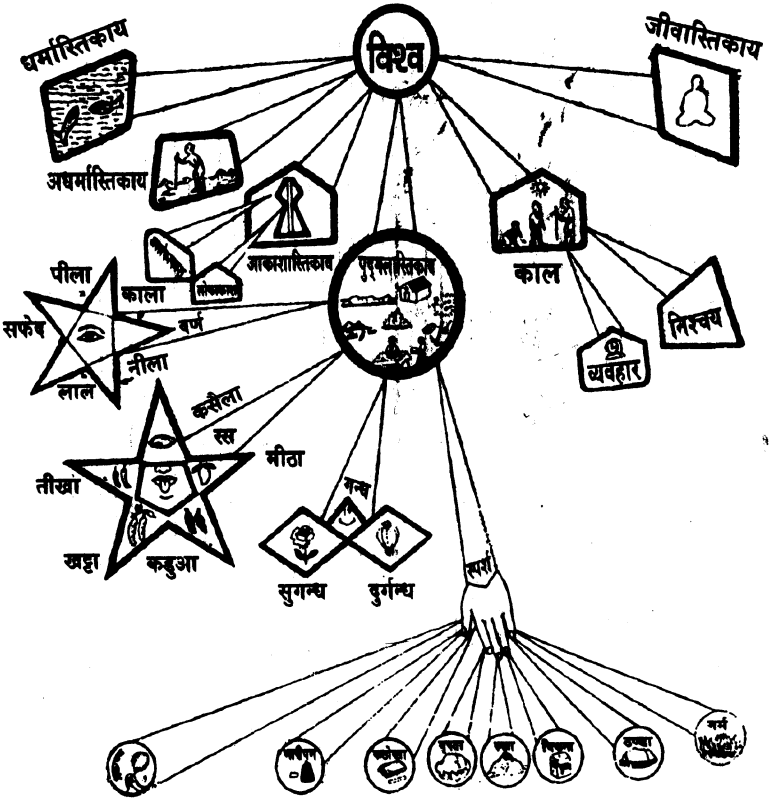

चित्र : विश्व का स्वरूप

स्वरूप का त्याग कर अन्य द्रव्य रूप नहीं होता अर्थात् जीव पुद्गल नहीं होता और पुद्गल जीव नहीं होता । अतः छहों द्रव्य अप्रवेशी है ।

·षट्-द्रव्य की उपयोगिता :

१. धर्मास्तिकाय : अगर धर्मास्तिकाय न हो तो जीव तथा पुद्गल द्रव्य गति नहीं कर सकते । हालांकि यह स्वयं संचालित नहीं करता तथापि उदासीन तथा तटस्थ होकर के जीव व पुद्गल की गति में सहायक बनता है । यह लोकाकाश में ही व्याप्त है अतः जीव केवल लोक में ही गति करता है तथा सिद्ध का जीव लोकान्त या लोकाग्र भाग में जाकर स्थिर हो जाता है। क्योंकि आगे अलोक में धर्मास्तिकाय नहीं होने से जीव की गति संभव नहीं है ।

२. अधर्मास्तिकाय : अगर अधर्मास्तिकाय न हो तो जीव और पुद्गल सदाकाल गति ही करते रहे, स्थिर ही न हो । अधर्मास्तिकाय के सहयोग से ही जीव तथा पुद्गल स्थिर रह पाते हैं । धर्म तथा अधर्म, ये दोनों द्रव्य संपूर्ण लोक में व्याप्त है । इन्हीं से लोकालोक की व्यवस्था सुव्यवस्थित है ।

३. आकाशास्तिकाय : अगर आकाशास्तिकाय न हो तो अनंत जीव, अनंत स्कंध, अनंत परमाणु धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और उनके स्कंध अमुक स्थान में नहीं रह सकते । सभी को अवकाश (स्थान) देने वाला द्रव्य आकाश ही है ।

४. जीवास्तिकाय : जीव न हो तो यह जगत जिस रूप में दिखायी दे रहा है, उस रूप में उसका दिखायी देना असंभव है । जीव कर्त्ता होकर के समस्त द्रव्यों पर शासन करता है ।

५. पुद्गलास्तिकाय : यह द्रव्य अगर जगत में न हो तो संसार में जो कुछ भी दिखायी दे रहा है । वह कुछ भी दिखायी न दे । क्योंकि हमें जो कुछ भी दृष्टिगत हो रहा है, वह पुद्गल ही है ।

६. काल : काल द्रव्य जगत में न हो तो प्रत्येक काम जो क्रमवर्ती सम्पन्न हो रहा है, वह नहीं होता । सब कार्य एक साथ करने पडते । इसलिये काल द्रव्य की भी आवश्यकता है ।

षट् द्रव्य में परिणामी आदि द्वार

क्रम	छह द्रव्य	परिणामी अपरिणामी	जीव अजीव	मूर्त्त अमूर्त्त	सप्रदेशी अप्रदेशी	एक अनंत	क्षेत्र क्षेत्री	सक्रिय अक्रिय	नित्य अनित्य	कारण अकारण	कर्त्ता अकर्त्ता	सर्वगत देशगत	अप्रवेशी सप्रवेशी
१.	धर्मास्तिकाय	अपरिणामी	अजीव	अमूर्त्त	सप्रदेशी	एक	क्षेत्री	अक्रिय	नित्य	कारण	अकर्त्ता	देशगत	अप्रवेशी
२.	अधर्मास्तिकाय	अपरिणामी	अजीव	अमूर्त्त	सप्रदेशी	एक	क्षेत्री	अक्रिय	नित्य	कारण	अकर्त्ता	देशगत	अप्रवेशी
३.	आकाशास्तिकाय	अपरिणामी	अजीव	अमूर्त्त	सप्रदेशी	एक	क्षेत्र	अक्रिय	नित्य	कारण	अकर्त्ता	सर्वगत	अप्रवेशी
४.	पुद्गलास्तिकाय	परिणामी	अजीव	मूर्त्त	सप्रदेशी	अनंत	क्षेत्री	सक्रिय	अनित्य	कारण	अकर्त्ता	देशगत	अप्रवेशी
५.	जीवास्तिकाय	परिणामी	जीव	अमूर्त्त	सप्रदेशी	अनंत	क्षेत्री	सक्रिय	अनित्य	अकारण	कर्त्ता	देशगत	अप्रवेशी
६.	काल	अपरिणामी	अजीव	अमूर्त्त	अप्रदेशी	अनंत	क्षेत्री	अक्रिय	नित्य	कारण	अकर्त्ता	देशगत	अप्रवेशी

३. पुण्य तत्त्व के ४२ भेद

गाथा

सा उच्चगोअ मणुदुग, सुरदुग पंचिंदि जाइ पण देहा ।
आइतितणूणुवंगा, आइमसंघयणसंठाणा ॥१५॥
वन्नचउक्कागुरुलहु-परघा उसास आयवुज्जोअं ।
सुभखगइ निमिण तसदस, सुरनरतिरिआउ तित्थयरं ॥१६॥
तस बायर पज्जत्तं, पत्तेअं थिरं सुभं च सुभगं च ।
सुस्सर आइज्ज जसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥१७॥

अन्वय

सा उच्चगोअ मणुदुग सुरदुग पंचिंदिजाई पणदेहा, आइ-ति-तणूण-उवंगा आइम-संघयण संठाणा ॥१५॥

वण्ण चउक्क अगुरूलहु परघा उस्सास आयव उज्जोअं सुभखगई, निमिण तस-दस सुरनर-तिरि-आउ तित्थयरं ॥१६॥

तस-बायर-पज्जत्तं-पत्तेयं-थिरं-सुभं-च सुभगं च सुस्सर आइज्ज जसं इमं तसाइ-दसगं होइ ॥१७॥

संस्कृत पदानुवाद

शातोच्चैर्गोत्र मनुष्यद्विक-सुरद्विक पंचेन्द्रियजाति पंचदेहाः ।
आदित्रितनुनामुपाङ्गा-न्यादिम संहनन संस्थाने ॥१५॥
वर्णचतुष्काऽगुरुलघु-पराघातोच्छ्वासातपोद्योतम् ।
शुभखगति निर्माण त्रसदशक, सुरनरतिर्यगायुस्तीर्थकरं ॥१६॥
त्रस बादर पर्याप्तं, प्रत्येकं स्थिरं शुभं च सुभगं च ।
सुस्वरादेय यशस्त्रसादि-दशकमिदं भवति ॥१७॥

शब्दार्थ

सा - शातावेदनीय	**मणुदुग** - मनुष्यद्विक (मनुष्यगति-मनुष्यापूर्वी)
उच्चगोअ - उच्चगोत्र	

५ **सुरदुग** - सुरद्विक (देवगति-देवानुपूर्वी)	१० **ति** - तीन
६ **पंचिंदि** - पंचेन्द्रिय	११ **तणूण** - शरीरों के
७ **जाइ** - जाति	१२ **उवंगा** - उपांग (अंगोपांग)
८ **पण देहा** - पांच शरीर	१३ **आइम** - आदि अर्थात् पहला
९ **आइ** - आदि के (प्रथम के)	१४ **संघयण** - संहनन
	१५ **संठाणा** - संस्थान

शब्दार्थ

वण्णचउक्क - वर्णचतुष्क (वर्ण-गंध-रस-स्पर्श)	**निमिण** - निर्माण
अगुरूलहु - अगुरूलघु	**तसदस** - त्रसदशक (त्रसादि दस प्रत्येक प्रकृतियाँ)
परघा - पराघात	**सुर** - सुर आयुष्य (देवायुष्य)
उसास - श्वासोच्छ्वास	**नर** - मनुष्य आयुष्य
आयव - आतप	**तिरिआउ** - तिर्यञ्चायुष्य
उज्जोअं - उद्योत	**तित्थयरं** - तीर्थंकर

सुभखगइ - शुभ खगति (शुभ विहायोगति)

शब्दार्थ

तस - त्रस	**सुस्सर** - सुस्वर
बायर - बादर	**आइज्ज** - आदेय
पज्जत्तं - पर्याप्त	**जसं** - यश
पत्तेयं - प्रत्येक	**तसाइ** - त्रसादि
थिरं - स्थिर	**दसगं** - दशक
सुभं - शुभ	**इमं** - ये (इस प्रकार)
सुभगं - सुभग	**होइ** - होती है ।
च - और	

भावार्थ

शातावेदनीय, उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक, देवद्विक, पंचेन्द्रिय जाति, पांच शरीर, प्रथम तीन शरीर के उपांग, प्रथम संहनन तथा संस्थान ॥१५॥

वर्ण चतुष्क, अगुरूलघु, पराघात, श्वासोच्छ्वास, आतप, उद्योत, शुभ विहायोगति, निर्माण, त्रसदशक, देवायुष्य, मनुष्यायुष्य, तिर्यञ्चायुष्य तथा तीर्थंकरपना ॥१६॥

त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग (सौभाग्य), सुस्वर, आदेय और यश, ये त्रस आदि दशक है ॥१७॥

विशेष विवेचन

पूर्व की १४ गाथाओं में जीव तथा अजीव तत्त्व के स्वरूप, लक्षण एवं भेदों का समग्रता से वर्णन किया गया। प्रस्तुत गाथात्रय में पुण्य तत्त्व की ४२ प्रकृतियों का वर्णन है।

पुण्य : पुण्य अर्थात् शुभ कर्म। जो आत्मा को पवित्र करे, जिसकी शुभ प्रकृति हो और सुंदर परिणाम हो, वह पुण्य है। यह ४२ प्रकार का है। इन ४२ प्रकार की प्रकृतियों का उदय होने पर जीव शुभ कर्म रूपी पुण्य का भोग करता है। पुण्य को बांधने में निमित्त बनने वाली क्रिया को शुभ आश्रव भी कहते है। ४२ प्रकार का पुण्यबंध होने में नौ प्रकार की प्रवृत्तियाँ निमित्त बनती है—

१. **अन्नपुण्य** - पात्र को अन्न देने से पुण्य होता है।
२. **पानपुण्य** - पात्र को पानी देने से पुण्य होता है।
३. **लयन पुण्य**- पात्र को स्थानादि देने से पुण्य होता है।
४. **शयन पुण्य**- पात्र को शय्या, पट्टादि देने से पुण्य होता है।
५. **वत्थपुण्य** - पात्र को वस्त्रादि देने से पुण्य होता है।
६. **मन पुण्य** - दान-शील-तप आदि में मन रखने से पुण्य होता है।
७. **वचन पुण्य**- मुख से सत्य, मधुर वचन उच्चारण करने से पुण्य होता है।
८. **काय पुण्य** - काया को शुभ व्यापार, परोपकार, विनय, वैयावृत्य आदि में लगाने से पुण्य होता है।
९. **नमस्कार पुण्य** - देव-गुरु को नमस्कार करने से पुण्य होता है।

पुण्य तत्त्व के ४२ भेदों का विवरण इस प्रकार है —

१. **शातावेदनीय :** जिस कर्म के उदय से जीव को विविध सुख भोगने के साधन, सामग्री व शक्ति मिले, उसे शाता वेदनीय कर्म कहते है।

२. **उच्चगोत्र :** जिस कर्म के उदय से जीव को उत्तम कुल, जाति, वंशादि

की प्राप्ति होती है, उच्चगोत्र कहते हैं।

३-४. मनुष्यद्विक : अर्थात् मनुष्य गति एवं मनुष्यानुपूर्वी। जो सुख-दुःख भोगने योग्य मनुष्य गति को प्राप्त कराये, वह मनुष्यगति है। जिस कर्म के उदय से मनुष्य गति में जन्म लेने वाला जीव आकाश प्रदेशों की श्रेणी के अनुसार गमन करता हुआ उत्पत्ति स्थान पर पहुँचता है, या मरणकाल के पश्चात् उत्पत्ति स्थल तक पहुँचाने में जो कर्म मदद करता है, उसे मनुष्यानुपूर्वी कहते है।

५-६. सुरद्विक : इस कर्म के उदय से जीव को देवगति एवं देवानुपूर्वी मिलती है। देवगति व देवानुपूर्वी की व्याख्या उपरोक्तवत् है।

७. पंचेन्द्रिय जाति : पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदय से जीव को स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्र, ये पांच इन्द्रियाँ पूर्ण स्वस्थ, निर्दोष एवं सम्पूर्ण शक्तियुक्त प्राप्त होती है।

८. औदारिक शरीर : इस कर्म के उदय से जीव को औदारिक वर्गणाओं से बना हुआ अस्थि, मांस, रुधिर आदि सप्तधातुमय विशिष्ट शरीर प्राप्त होता है। यह शरीर मोक्ष प्राप्ति के लिये खास उपयोगी होता है।

९. वैक्रिय शरीर : जिसमें छोटे-बडे, एक-अनेक आदि विविध प्रकार के रूप बनाने की शक्ति हो अर्थात् विकुर्वणा करने वाले शरीर को वैक्रिय शरीर कहते है। देवता व नारकी के वैक्रिय शरीर होता है।

१०. आहारक शरीर : आहारक वर्गणाओं से बने हुए शरीर को आहारक शरीर कहते है। प्रमत्त गुण- स्थानवर्ती लब्धिधारी चौदह पूर्वधर मुनि को जब किसी सूक्ष्म शंका का समाधान करने की आवश्यकता होती है अथवा तीर्थंकरों की ऋद्धि देखने की अभिलाषा होती है, तब विशुद्ध पुद्गलों का आहरण - खिंचाव करके एक हाथ अथवा मूंडे हाथ का पूतला आत्मप्रदेशों से व्याप्त कर भगवान के पास भेज कर अपनी शंका समाहित करते है। इसी पूतले के शरीर को आहारक शरीर कहते है। यह शरीर इतना सूक्ष्म होता है कि चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं देता और किसी से अवरुद्ध भी नहीं होता एवं अवरोधक भी नहीं बनता।

११. तैजस शरीर : तैजस वर्गणाओं से बना हुआ तथा शरीर में उष्मा कायम रखने वाला, ग्रहण किये हुए आहार को पचाने वाला, दृष्टि से न दिखायी

देने वाला **तैजस** शरीर है। यह शरीर प्रत्येक संसारी जीव के साथ अनादिकाल से संलग्न है।

१२. कार्मण शरीर : कार्मण वर्गणाओं से बना हुआ, ज्ञानवरणीयादि अष्ट कर्मों का समूह कार्मण शरीर है।

१३-१४-१५. उपांग (अंगोपांग) : जिस कर्म से अंग-उपांग तथा अंगोपांग मिले, उसे अंगोपांग नामकर्म कहते है। हाथ, पैर, पीठ, सिर, छाती और पेट, ये अंग है। अंग के साथ जुडे अंगुली आदि अवयव उपांग है। रेखायें अंगोपांग कहलाती है। अंग, उपांग और अंगोपांग दिलाने वाले कर्म को अंगोपांग नाम कर्म कहते है। प्रथम तीन शरीर औदारिक, वैक्रिय, आहारक के ही अंगोपांग होते है। शेष दो के नहीं होते। अतः अंगोपांग नामकर्म तीन प्रकार का है। १. औदारिक अंगोपांग, २. वैक्रिय अंगोपांग, ३. आहारक अंगोपांग।

१६. प्रथम वज्रऋषभनाराच संघयण : वज्र - खीला, ऋषभ - वेष्टन-पट्टी, नाराच-दोनों ओर मर्कटबन्ध, संहनन-हड्डियों का बंधन। जिसमें दोनों तरफ से मर्कटबन्ध से बंधी हुई दो हड्डियों पर तीसरी हड्डी का पट्टा लगा हो और इन तीनों हड्डियों को भेदने वाली हड्डी की कील लगी हुई हो, उसे वज्रऋषभनाराच संघयण कहते है।

१७. प्रथम समचतुरस्त्र संस्थान : छह संस्थानों में प्रथम यह संस्थान तीन शब्दों से निष्पन्न है - सम-समान, चतुः-चार, अस्त्र-कोण। अर्थात् पद्मासन लगाकर बैठने पर जिस शरीर के चारों कोण एक समान हो, उस आकृति को समचतुरस्त्र संस्थान कहते हैं। जिसके चारकोण - आसन और ललाट के मध्य, दोनों घुटनों के मध्य, दांये कंधे से बांये घुटने के मध्य, बांये कंधे से दांये घुटने के मध्य में समान अंतर होता है, वह सम्पूर्ण शुभ अवयव एवं अद्भुत सौंदर्यशाली शरीराकृति समचतुरस्त्र संस्थान कहलाती है।

१८-२१. वर्णचतुष्क : इसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, इन चार प्रकृतियों का समावेश है। इस कर्म के उदय से जीव को शारीरिक वर्णादि सुंदर प्राप्त होते हैं। वर्ण में श्वेत, रक्त, पीत शुभ वर्ण है। गंध में सुरभि गंध, रस में आम्ल, मधुर और कषायरस तथा स्पर्श में लघु, मृदु, उष्ण तथा स्निग्ध, ये चार शुभ स्पर्श है। ये कुल ११ शुभ प्रकृतियाँ हैं, जो शुभ वर्णचतुष्क नाम कर्म के उदय से जीव को प्राप्त होती है।

२२. अगुरूलघु : इस कर्म के उदय से जीव को न लोहे जैसा अतिभारी, न वायु समान अति हल्का शरीर प्राप्त होता है।

२३. पराघात : जिस कर्म के उदय से सामने वाला व्यक्ति बलवान होने पर भी निस्तेज हो जाता है, उसे पराघात नाम कर्म कहते हैं। इस कर्म का उदय सबल को नहीं, निर्बल परन्तु तेजस्वी को होता है।

२४. श्वासोच्छ्वास : जिस कर्मोदय से सुखपूर्वक श्वासोच्छ्वास लिया जाय, छोडा जाय, वह श्वासोच्छ्वास नाम कर्म है।

२५. आतप : इस कर्म के उदय से जीव का शरीर शीत होने पर भी उष्ण प्रकाश देने वाला होता है।

२६. उद्योत : इस कर्म के उदय से जीव का स्वयं का शरीर शीतल हो तथा उसका प्रकाश भी शीतल हो, चन्द्रप्रकाशवत् जो शीतल प्रकाश दे, वह उद्योत नाम कर्म है।

२७. शुभविहायोगति : जिसके उदय से जीव की चाल बैल, हंस, हाथी के समान मस्त, धीमी और गंभीर होती है, उसे शुभविहायोगति नामकर्म कहते है।

२८. निर्माण : इस कर्म के उदय से जीव के शरीर संबंधी अंगोपांग अपने-अपने स्थान पर व्यवस्थित होते हैं।

२९. त्रसदशक : त्रसदशक अर्थात् जिसमें त्रस आदि दश प्रकृतियों का समावेश हो। इन दस प्रकृतियों का उल्लेख १७वीं गाथा में है। प्रथम प्रकृति त्रस है। जिस कर्म के उदय से जीव को इच्छानुसार गमन करने की शक्ति प्राप्त होती है, वह त्रस नाम कर्म है।

३०. बादर : जिस कर्म के उदय से जीव को चर्मचक्षु के गोचर इच्छानुसार बादर शरीर की प्राप्ति होती है, वह बादर नामकर्म है।

३१. पर्याप्त : जिसके उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करे, वह पर्याप्त नामकर्म है।

३२. प्रत्येक : जिससे एक जीव को स्वतन्त्र एक शरीर की प्राप्ति होती है, वह प्रत्येक नामकर्म है।

३३. स्थिर : जिससे हड्डी, दाँत आदि स्थिर अवयव प्राप्त हो, वह स्थिर नामकर्म है।

३४. शुभ : जिसके उदय से नाभि के उपर के अवयव प्रशस्त शुभ हो, वह शुभ नाम कर्म है ।

३५. सुभग : जिसके उदय से जीव उपकार करे, न करे, फिर भी सभी के मन को प्रिय लगे, उसे सुभग नामकर्म कहते है ।

३६. सुस्वर : जिसके उदय से जीव का स्वर कोयल जैसा मधुर हो तथा श्रोता के मन में प्रीति उत्पन्न करे, वह सुस्वर नाम कर्म है ।

३७. आदेय : जिससे जीव के वचन युक्तियुक्त हो अथवा युक्तिविकल हो तथापि लोग उसे बहुमान दे, वह आदेय नाम कर्म है ।

३८. यश : जिससे जीव की सर्वत्र कीर्ति फैलती है, वह यश नाम कर्म है ।

३९. देवायुष्य : इस कर्म के उदय से जीव को देवत्व की प्राप्ति होती है ।

४०. मनुष्यायुष्य : इससे जीव मनुष्य जीवन को प्राप्त करता है ।

४१. तिर्यंचायुष्य : इससे जीव तिर्यञ्च अर्थात् पशु-पक्षी आदि के जीवन को प्राप्त करता है ।

४२. तीर्थंकर : इस कर्म के उदय से जीव तीन लोक में पूज्य पदवी को प्राप्त करता है। चतुर्विध धर्मसंघ की स्थापना कर अंत में निर्वाण को प्राप्त करता है ।

इस पुण्य तत्त्व के समस्त भेद अघाती कर्मों के भेद में सम्मिलित होते हैं।

१ वेदनीय कर्म, १ गोत्र कर्म, ३ आयुष्य कर्म तथा ३७ नामकर्म की प्रकृतियाँ, इस प्रकार कुल ४२ भेद पुण्य तत्त्व के है ।

पाप तत्त्व के ४२ भेद

गाथा

नाणंतराय दसगं, नव बीए नी-असाय मिच्छत्तं ।
थावरदस नरयतिगं, कसाय पणवीस तिरियदुगं ॥१८॥
इग-बि-ति चउ जाइओ, कुखगइ उवघाय हुंति पावस्स ।
अपसत्थं वन्नचउ, अपढम-संघयणसंठाणा ॥१९॥
थावर सुहुम अपज्जं, साहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।
दुस्सरणाइज्जजसं, थावरदसगं विवज्जत्थं ॥२०॥

अन्वय

नाणंतराय दसगं, बीए नव, नीअ, असाय मिच्छत्तं, थावरदस, नरयतिगं, कसाय पणवीस, तिरियदुगं ॥१८॥

इग-बि-ति-चउ-जाइओ, कु-खगइ, उवघाय, अपसत्थं-वन्नचउ, अपढम-संघयण संठाणा पावस्स हुंति ॥१९॥

थावर, सुहुम, अपज्जं, साहारणं, अथिरं, असुभ, दुभगाणि, दुस्सर, अणाइज्ज, अजसं, थावर दसगं विवज्ज-अत्थं ॥२०॥

संस्कृत पदानुवाद

ज्ञानान्तराय-दशकं नव द्वितीये नीचैरसातं मिथ्यात्वम् ।
स्थावर-दशकं-नरक-त्रिकं, कषाय-पंचविंशतिः तिर्यग् द्विकम् ॥१८॥
एक-द्वि-त्रि-चतुर्जातयः, कुखगतिरूपघातो भवन्ति पापस्य ।
अप्रशस्तं वर्ण चतुष्कमप्रथम-संहनन-संस्थानानि ॥१९॥
स्थावर सूक्ष्मापर्याप्तं, साधारणमस्थिरमशुभदुर्भाग्ये ।
दुःस्वरानादेयायशः, स्थावरदशकं विपर्ययार्थम् ॥२०॥

शब्दार्थ

नाण - ज्ञानावरणीय की पांच	**थावर दस** - स्थावरादि दस (स्थावर दशक)
अंतराय - अंतराय की पांच	**नरय तिगं** - नरक त्रिक (नरकगति-नरकानुपूर्वी-नरकायुष्य)
दसगं - दस (दोनों की मिलाकर) प्रकृतियाँ	**कसाय** - कषाय
नव - नौ	**पणवीसं** - पच्चीस (१६ कषाय, ९ नोकषाय)
बीए - दूसरे (दर्शनावरणीय कर्म की)	**तिरियदुगं** - तिर्यञ्चद्विक (तिर्यंचगति-तिर्यञ्चानुपूर्वी)
नीअ - नीच गोत्र	
असाय - अशाता वेदनीय	
मिच्छत्तं - मिथ्यात्व	

शब्दार्थ

इग - एकेन्द्रिय	**हुंति** - होते है
बि - बेइन्द्रिय	**पावस्स** - पाप के (भेद)
ति - तेइन्द्रिय	**अपसत्थं** - अप्रशस्त (अशुभ)
चउ - चतुरिन्द्रिय	**वण्णचउ** - वर्णचतुष्क
जाइओ - ये जातियाँ	**अपढम** - अप्रथम (प्रथम को छोडकर)
कुखगइ - अशुभ विहायोगति	**संघयण** - संहनन
उवघाय - उपघात	**संठाणा** - संस्थान

शब्दार्थ

थावर - स्थावर	**दुभगाणि** - दुर्भग
सुहुम - सूक्ष्म	**दुस्सर** - दुःस्वर
अपज्जं - अपर्याप्त	**अणाइज्ज** - अनादेय
साहारणं - साधारण	**अजसं** - अपयश
अथिरं - अस्थिर	**थावरदसगं** - स्थावर दशक
असुभ - अशुभ	**विवज्जत्थं** - (त्रस दशक से) विपरीत अर्थ वाला है।

भावार्थ

ज्ञानावरणीय (की ५) और अन्तराय (की ५) की मिलाकर कुल दस, दूसरे (दर्शनावरणीय) की नौ, नीच गोत्र, अशाता वेदनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, स्थावर दशक, नरक त्रिक, पच्चीस कषाय तथा तिर्यञ्च द्विक (ये पापप्रकृतियाँ हैं), ॥१८॥

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये चार जातियाँ, अशुभ विहायोगति, उपघात, अप्रशस्त, वर्णचतुष्क, प्रथम को छोडकर (पांच) संहनन तथा (पांच) संस्थान, ये पाप तत्त्व के ८२ भेद हैं ॥१९॥

स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अपयश, ये स्थावरदशक (त्रस दशक से) विपरीत अर्थ वाले हैं ॥२०॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा त्रिक में पापतत्त्व के ८२ भेद तथा स्थावर दशक का वर्णन है।

पाप : पाप अर्थात् अशुभ कर्म। जो आत्मा को मलिन करें, जिसकी अशुभ प्रकृति हो, जो बांधते समय तो सुखकारी हो किंतु भोगते समय दुखकारी

चित्र : अठारह पापस्थानक

हो, वह पाप है। पुण्य तत्व को बांधने में जैसे ९ प्रवृत्तियाँ निमित्त बनती है वैसे ही पाप को बांधने के भी १८ कारण है। ये कारण १८ पापस्थानक के नाम से प्रसिद्ध है –

१. प्राणातिपात - प्राणों का अतिपात (हिंसा) करना।

२. मृषावाद - झूठ बोलना।

३. अदत्तादान - चोरी करना।

४. मैथुन - अब्रह्म का सेवन करना।

५. परिग्रह - परिग्रह (ममत्त्व) रखना।

६. क्रोध - क्रोध करना।

७. मान - अभिमान करना।

८. माया - कपट करना।

९. लोभ - लालच करना।

१०. राग - राग करना।

११. द्वेष - द्वेष करना।

१२. कलह - लड़ाई - झगडा करना।

१३. अभ्याख्यान - झूठा कलंक लगाना।

१४. पैशुन्य - चुगली करना।

१५. रति-अरति - इन्द्रियों के अनुकूल विषय प्राप्त होने पर आनंद मनाना रति है तथा संयमादि में अरूचि - उद्वेग अरति है।

१६. परपरिवाद - दूसरों की निंदा करना।

१७. मायामृषावाद - मायापूर्वक झूठ बोलना।

१८. मिथ्यात्वशल्य - वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत धर्म पर श्रद्धा न करना।

उपर्युक्त १८ कारणों से बांधा हुआ पाप ८२ प्रकार से उदय में आता है। पाप तत्त्व के ८२ भेद इस प्रकार है।

१-५. ज्ञानावरणीय कर्म : ज्ञानावरणीय कर्म के ५ भेद है। मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्यवज्ञानावरणीय, केवलज्ञानावरणीय। इन पांच कर्मों के उदय से आत्मा के ज्ञानगुण को प्रकट होने में रूकावट होती है। अतः इन पांच कर्मों का बंध पाप कर्म के भेद में है।

१. **मतिज्ञानावरणीय** : जो इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होने वाले ज्ञान पर आवरण करे, वह मतिज्ञानावरणीय है।

२. **श्रुतज्ञानावरणीय** : जो पढने-सुनने से होने वाले ज्ञान पर आवरण करे, वह श्रुतज्ञानावरणीय है।

३. **अवधिज्ञानावरणीय** : जो इन्द्रिय और मन के सहयोग बिना आत्मा को रूपी पदार्थों के साक्षात् होने वाले ज्ञान पर आवरण करे, वह अवधि-ज्ञानावरणीय है।

४. **मनःपर्यवज्ञानावरणीय** : मन और इन्द्रियों के सहयोग बिना ढाई द्वीप में रहने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानने वाले ज्ञान पर आवरण करे, वह मनःपर्यवज्ञानावरणीय है।

५. **केवलज्ञानावरणीय** : लोकालोक के संपूर्ण ज्ञान पर जो आवरण करे, वह केवलज्ञानावरणीय है।

६-१०. **अंतराय कर्म** : इस कर्म के भी ५ भेद है :

६. **दानान्तराय** : दान योग्य सामग्री पास में होने पर भी जीव को दान देने का उत्साह नहीं होता, वह दानान्तराय है।

७. **लाभान्तराय** : दातार मिला हो, योग्य सामग्री भी सुलभ हो, विनयपूर्वक याचना की हो तथापि अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति न होना लाभान्तराय है।

८. **भोगान्तराय** : त्याग-प्रत्याख्यान न होने पर भी, भोग्य साधन-सामग्री, विद्यमान होने पर भी जीव उसका भोग न कर सके, वह भोगान्तराय है।

९. **उपभोगान्तराय** : मकान, वस्त्राभूषण, स्त्री आदि उपभोग्य सामग्री विद्यमान होने पर भी जीव उसका उपभोग न कर सके, वह उपभोगान्तराय है।

१०. **वीर्यान्तराय** : शरीर निरोग, स्वस्थ तथा बलवान् हो तथापि सत्वहीन या शक्ति रहित हो या शक्ति होने पर भी काम न आये, धर्मानुष्ठान का पालन न हो सके, वह वीर्यान्तराय है।

११-१९. **दर्शनावरणीय कर्म** : जो आत्मा के दर्शन गुण को आच्छादित करे, वह दर्शनावरणीय कर्म है। इसके भी नौ भेद हैं :

११. **चक्षुदर्शनावरणीय** : चक्षुदर्शन (चक्षु की शक्ति) का जिससे आच्छादन हो, वह चक्षुदर्शनावरणीय है।

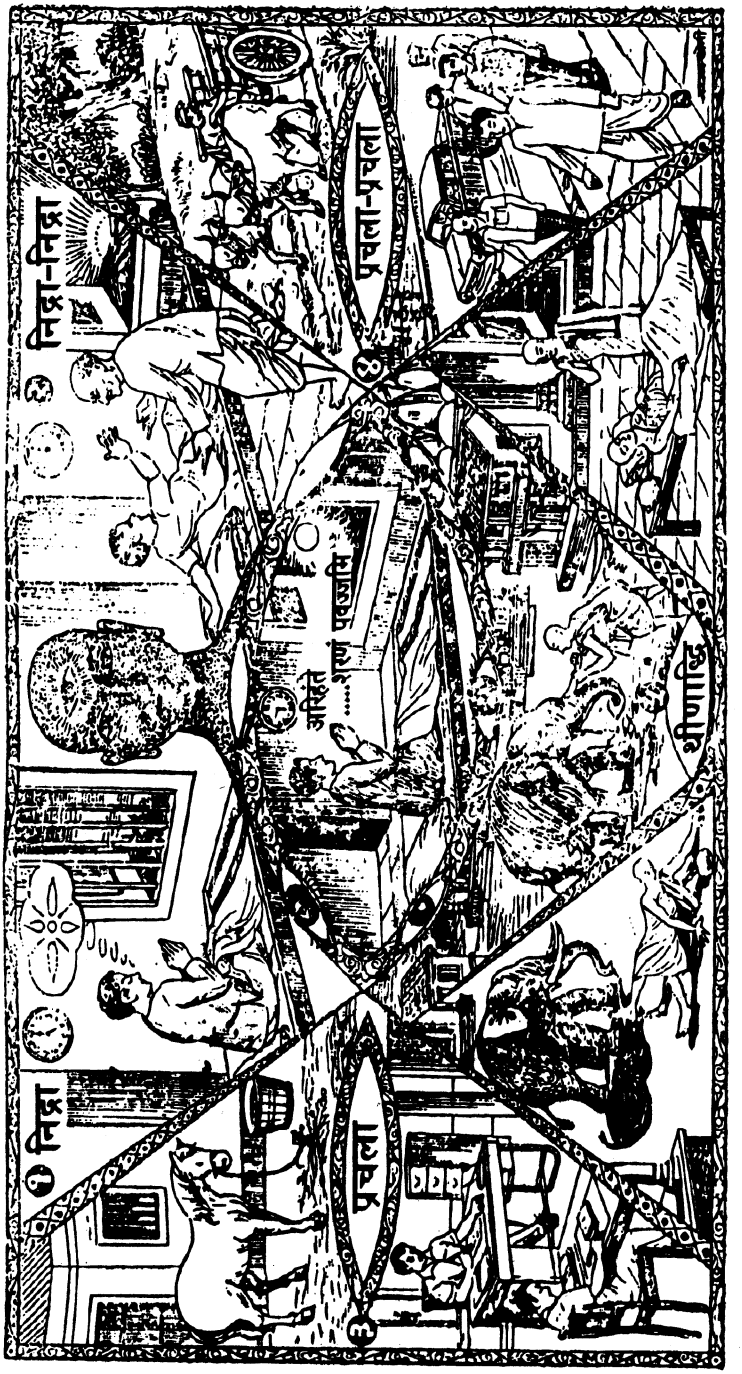
१ निद्रा
२ निद्रा-निद्रा
३ प्रचला
४ प्रचला-प्रचला
५ थीणद्धि
अहिते अरयं पवज्जामि.....

१२. अचक्षुदर्शनावरणीय : जिसके द्वारा चक्षु के सिवाय बाकी चार इन्द्रियों तथा मन, इन पांचों अथवा इनमें से किसी एक के दर्शन का आच्छादन हो, वह अचक्षुदर्शनावरणीय है ।

१३. अवधिदर्शनावरणीय : जिससे जीव को रूपी द्रव्य के सामान्य धर्म का बोध न हो, वह अवधिदर्शनावरणीय है ।

१४. केवलदर्शनावरणीय : जिससे जीव को संपूर्ण जगत के पदार्थों का सामान्य बोध न हो, वह केवलदर्शनावरणीय है ।

१५. निद्रा दर्शनावरणीय : जिससे जीव आसानी से जग जाये, ऐसी स्वल्प निद्रा आती है ।

१६. निद्रा निद्रा दर्शनावरणीय : जिससे जीव को इतनी घोर निद्रा आये कि बहुत ही कठिनाई से जागृत हो ।

१७. प्रचला दर्शनावरणीय : जिससे जीव को खडे-खडे या बैठे-बैठे नींद आ जाय ।

१८. प्रचला प्रचला दर्शनावरणीय : जिससे जीव को चलते-फिरते भी नींद आ जाय ।

१९. स्त्यानर्द्धि : जिसके उदय से जीव दिन में सोचे हुए कृत्यों को निद्रावस्था के दौरान रात्रि में अंजाम दे दे । प्रथम संघयणवाले जीव को इस नींद में वासुदेव का आधा बल होता है । अन्य सामान्य व्यक्ति का स्वबल ७-८ गुणा अधिक बल होता है ।

२०. नीच गोत्र : जिस कर्म के उदय से जीव को नीच कुल-जाति-वंशादि की प्राप्ति हो ।

२१. अशाता वेदनीय : जिससे जीव को आधि-व्याधि-उपाधि रूप दुःख का अनुभव हो ।

२२. मिथ्यात्व मोहनीय : जिसके उदय से जीव को सुदेव, सुगुरु तथा सुधर्म से विपरीत मार्ग में श्रद्धा हो ।

२३. स्थावर दशक : स्थावरदशक में उन दस प्रकृतियों का समावेश है, जिनका नामोल्लेख २०वीं गाथा मे है । जिस कर्म के कारण जीव चल-फिर न सके, एक ही जगह पर स्थिर रहे, वह स्थावर नाम कर्म है ।

२४. सूक्ष्म : ऐसा शरीर मिले जो इन्द्रिय गोचर न हो और यंत्र से भी दिखाई न दे तथा किसी को न रोके व न स्वयं रूक सके, वह सूक्ष्म नाम कर्म है ।

२५. अपर्याप्त : जिससे जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण न करे, वह अपर्याप्त नाम कर्म है ।

२६. साधारण : जिससे एक शरीर में अनंत जीवों का वास हो या अनंत जीवों को एक ही शरीर प्राप्त हो, वह साधारण नामकर्म है ।

२७. अस्थिर : कान, भौं, जिह्वा आदि अस्थिर अवयवों की प्राप्ति हो, वह अस्थिर नामकर्म है ।

२८. अशुभ : जिससे नाभि से नीचे वाले अंग अशुभ हो, वह अशुभ नामकर्म है ।

२९. दुर्भग : जिस कर्म के उदय से जीव को देखते ही रोष या उद्वेग पैदा हो या भलाई करने पर भी वह किसी को अच्छा नहीं लगे, वह दुर्भग (दौर्भाग्य) नामकर्म है ।

३०. दुःस्वर : जिससे जीव का स्वर कौएं जैसा अप्रिय, कर्कश व कठोर हो, वह **दुःस्वर** नामकर्म है ।

३१. अनादेय : जिससे युक्तियुक्त प्रियवचनों का भी अनादर हो, वह अनादेय नामकर्म है ।

३२. अपयश : लोकोपकारी कार्य करने पर भी जीव को यश अथवा कीर्ति हासिल न हो, वह अपयश नामकर्म है ।

३२-३५. नरक त्रिक : जिन कर्मों के उदय से जीव को नरकगति, नरकानुपूर्वी तथा नरकायुष्य की प्राप्ति हो ।

३६-६०. पच्चीस कषाय : जिस कर्म के उदय से जीव को १६ कषाय और नौ नो-कषाय की प्राप्ति हो ।

३६-३९ अनंतानुबंधी चतुष्क : अनंतानुबंधी-क्रोध-मान-माया तथा लोभ, इन कषायों के उदय से जीव संसार में अनन्तकाल तक मिथ्यात्व दशा में परिभ्रमण करता रहता है ।

४०-४३. अप्रत्याख्यानीय चतुष्क : अप्रत्याख्यानीय क्रोध-मान-माया

तथा लोभ, इन चार कषायों के उदय से जीव को देशविरति धर्म की प्राप्ति नहीं होती।

४४-४७. **प्रत्याख्यानीय चतुष्क** : इन कषायों के उदय से जीव को सर्वविरति धर्म अर्थात् चारित्र की प्राप्ति नहीं होती।

४८-५१. **संज्वलन चतुष्क** : संज्वलन कषाय चतुष्क (क्रोध-मान-माया-लोभ) के उदय से जीव को यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् जीव वीतरागता को प्राप्त नहीं करता।

इन सभी चारों भेदवाले १६ कषायों का स्वभाव तथा स्थिति भिन्न-भिन्न है जिसे पीछे प्रश्नोत्तरी में स्पष्ट किया गया है।

५२. **हास्य** : जिसके उदय से जीव को हँसी आवे।

५३. **रति** : जिसके उदय से जीव को विषयों में आसक्ति हो।

५४. **शोक** : जिसके उदय से मन में शोक या उदासी व्याप्त हो।

५५. **अरति** : जिससे जीव को धर्म-साधना में अरुचि हो।

५६. **भय** : जिसके उदय से भय या डर लगे।

५७. **जुगुप्सा** : जिससे जीव को पदार्थों पर अकारण या सकारण घृणा हो।

५८-६०. **वेदत्रिक** : जिस कर्म के उदय से स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद की प्राप्ति हो।

५८. **स्त्रीवेद** : जिस कर्म के उदय से स्त्री को पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा हो, वह स्त्रीवेद है।

५९. **पुरुषवेद** : जिस कर्म के उदय से पुरुष को स्त्री के साथ रमण करने की अभिलाषा हो, वह पुरुषवेद है।

६०. **नपुसंकवेद** : जिस कर्म के उदय से पुरुष और स्त्री, दोनों के साथ रमण करने की इच्छा हो, वह नपुंसकवेद है।

६१-६२. **तिर्यञ्चद्विक** : अर्थात् तिर्यञ्चगति व तिर्यञ्चानुपूर्वी। जिस कर्म के उदय से जीव को ये दोनों प्रकृतियाँ उदय में आये, वह तिर्यञ्चद्विक है।

६३-६६. **जाति-चतुष्क** : एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, इन

चारों को जातिचतुष्क कहते हैं। जातिचतुष्क नाम कर्म के उदय से जीव को ये चारों जातियाँ मिलती है।

६३. **एकेन्द्रिय** : जिस कर्म के उदय से जीव को पृथ्वीकाय आदि एक इन्द्रिय वाले शरीर में जन्म मिलता है, उस शरीर को एकेन्द्रिय जाति कहते है।

६४. **बेइन्द्रिय** : जिस कर्म के उदय से शंख, कोडी आदि दो इन्द्रिय वाले शरीर की प्राप्ति होती है, वह बेइन्द्रिय जाति नामकर्म है।

६५. **तेइन्द्रिय** : जिस कर्म के उदय से जूं, खटमल आदि तीन इन्द्रिय वाले शरीर की प्राप्ति हो, वह तेइन्द्रिय जाति नामकर्म है।

६६. **चतुरिन्द्रिय** : जिस कर्म के उदय बिच्छू, भ्रमर, मक्खी आदि चार इन्द्रिय वाला शरीर प्राप्त हो, वह चतुरिन्द्रिय जाति नामकर्म है।

६७. **अशुभविहायोगति** : जिस कर्म के उदय से जीव की चाल गधे या उँट जैसी अशुभ हो, वह अशुभ विहायोगति नामकर्म है।

६८. **उपघात** : जिस कर्म के उदय से जीव अपने ही अवयवों (छठ्ठी अंगुली, चोर दांत, पटजीभ) से क्लेशित हो, वह उपघात नामकर्म है।

६९-७२. **अप्रशस्त वर्णचतुष्क** : अप्रशस्त अर्थात् अशुभ। वर्णचतुष्क अर्थात् वर्णादि चार भेद-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श। इनके कुल २० भेदों में से ९ भेद अप्रशस्त है।

६९. **अप्रशस्त वर्ण** : जिस कर्म के उदय से जीव को कृष्ण या नीलवर्ण प्राप्त हो, वह अप्रशस्त वर्ण नामकर्म है।

७०. **अप्रशस्त गंध** : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में से लहसून जैसी दुर्गंध आती है, वह अप्रशस्त गंध नामकर्म है।

७१. **अप्रशस्त रस** : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर का रस तीखा या कडवा हो, वह अप्रशस्त रस नामकर्म है।

७२. **अप्रशस्त स्पर्श** : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर का स्पर्श भारी, खुरदरा, रुक्ष और शीत हो, वह अप्रशस्त स्पर्श नामकर्म है।

७३-७७. **अप्रथम संहनन** : प्रथम को छोडकर पांच संघयण की प्राप्ति होना।

७३. ऋषभनाराच संहनन : जिस शरीर में हड्डियों के जोड दोनों तरफ मर्कटबंध वाले हो, उनके उपर हड्डी की पट्टी भी हो परंतु हड्डी की कील न हो, वह ऋषभनाराच संघयण है ।

७४. नाराच संहनन : मात्र दो मर्कटबंध हो, पट्टी और कील न हो, ऐसा कायिक गठन नाराच संघयण कहलाता है ।

७५. अर्धनाराच संहनन : न पट्टी हो, न कील हो, मात्र एक तरफ मर्कट बंध हो, ऐसा कायिक गठन अर्धनाराच संघयण है ।

७६. कीलिका संहनन : हड्डियों के जोड़ में मात्र कीली हो, ऐसा कायिक गठन कीलिका संहनन कहलाता है ।

७७. सेवार्त्त संहनन : शरीर के जोडों में हड्डियों के दोनों कोने आपस में मात्र स्पर्श करते हो, ऐसा कायिक गठन सेवार्त्त संहनन कहलाता है ।

७८-८२. अप्रथम संस्थान : प्रथम समचतुरस्र संस्थान को छोडकर शेष ५ संस्थानों की प्राप्ति होना ।

७८. न्यग्रोध परिमंडल संस्थान : शरीर की रचना वटवृक्ष के समान हो अर्थात् नाभि से ऊपर के अवयव विस्तृत (लक्षणयुक्त) तथा नीचे के अवयव छोटे (लक्षणरहित) हो, वह न्यग्रोध परिमंडल संस्थान है ।

७९. सादि संस्थान : नाभि से नीचे का भाग लक्षण युक्त तथा उपर का भाग लक्षण रहित हो, वह सादि संस्थान है ।

८०. वामन संस्थान : शरीर बौना हो, हाथ-पांव-मस्तक-कमर, ये चारों लक्षण रहित हो व उदर आदि लक्षणयुक्त हो, वह वामन संस्थान है ।

८१. कुब्ज संस्थान : शरीर कुब्ज हो, छाती-पीठ-पेट टेढे हो पर हाथ-पांव ठीक हो, वह कुब्ज संस्थान है ।

८२. हुंडक संस्थान : सभी अंग लक्षण रहित हो, वह हुंडक संस्थान है ।

इस पाप तत्त्व के ८२ भेद इस प्रकार है - ज्ञानावरणीय - ५, दर्शनावरणीय-९, वेदनीय-१, मोहनीय-२६, आयुष्य-१, नाम-३४, गोत्र-१, अंतराय-५ इन समस्त अशुभ प्रकृतियों का बंध १८ पापस्थानकों का अप्रशस्त भाव से सेवन करने पर पाप के रूप में होता है ।

आश्रव तत्त्व के ४२ भेद

गाथा

इंदिय-कसाय-अव्वय-जोगा-पंच-चउ-पंच-तिन्नि-कमा ।
किरियाओ पणवीसं, इमा उ ताओ अणुक्कमसो ॥२१॥

अन्वय

इंदिय, कसाय, अव्वय, जोगा, कमा, पंच, चउ, पंच, तिन्नि, किरियाओ पणवीसं, उ ताओ अणुक्कमसो इमा ॥२१॥

संस्कृत पदानुवाद

इन्द्रिय कषायाव्रत योगा, पंच चत्वारि पंच त्रीणि क्रमात् ।
क्रिया: पंचविंशति: इमास्तुता अनुक्रमश: ॥२१॥

शब्दार्थ

इंदिय - इंद्रिय	**कमा** - अनुक्रम से
कसाय - कषाय	**किरियाओ** - क्रियाएँ
अव्वय - अव्रत	**पणवीसं** - पच्चीस
जोगा - योग	**इमा** - ये
पंच - पाँच	**उ** - तथा
चउ - चार	**ताओ** - वे
पंच - पांच	**अणुक्कमसो** - अनुक्रम से
तिन्नि - तीन	

भावार्थ

इंद्रिय, कषाय, अव्रत और योग अनुक्रम से पाँच, चार, पाँच और तीन है । क्रियाएँ २५ हैं और वे अनुक्रम से इस प्रकार हैं ॥२१॥

विशेष विवेचन

पूर्व की २० गाथाओं में जीव-अजीव-पुण्य तथा पाप, इन चार तत्त्वों का भेद सहित स्वरूप विश्लेषण हुआ । प्रस्तुत गाथा में आश्रव तत्त्व के ४२ भेदों का कथन है । १७ भेदों का कथन इसी गाथा में है व २५ क्रियाओं का

उल्लेख आगे की तीन गाथाओं में स्पष्ट किया गया है ।

आश्रव : कर्मों का आगमन द्वार आश्रव कहलाता है। जीव की शुभाशुभ योगप्रवृत्ति से आकृष्ट होकर कार्मण वर्गणा का आत्मा में प्रविष्ट होना आश्रव है। जीवरूप नाव में पुण्य-पाप रुप जल का प्रविष्ट होना आश्रव कहलाता है ।

पांच इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा के अनुभव में आनेवाले पुद्गल के स्वरूप को इन्द्रियों का विषय कहते है । इन इन्द्रियों के २३ विषय हैं, जो इस प्रकार है –

१. स्पर्शनेन्द्रिय आश्रव : इसके ८ विषय हैं - कर्कश-मृदु, भारी-हल्का, शीत-उष्ण, रूक्ष-स्निग्ध ।

२. रसनेन्द्रिय आश्रव : इसके ५ विषय हैं - खट्टा, मीठा, कवआ, कसैला, तीखा ।

३. घ्राणेन्द्रिय आश्रव : इसके दो विषय हैं - सुगंध - दुर्गंध ।

४. चक्षुरिन्द्रिय आश्रव : इसके ५ विषय हैं - कृष्ण, नील, पीत, रक्त तथा श्वेत ।

५. श्रोत्रेन्द्रिय आश्रव : इसके ३ विषय है - जीव शब्द, अजीव शब्द, मिश्र शब्द ।

ये २३ विषय यदि आत्मा के अनुकूल हो तो सुख का अनुभव व प्रतिकूल हो तो दुःख का अनुभव होता है । इनके द्वारा होने वाला कर्मों का आगमन आश्रव कहलाता है ।

४ कषाय : कष्-संसार, आय-वृद्धि । जो संसार को बढाये, वह कषाय है । यह क्रोध मान-माया-लोभ आदि ४ भेद वाला है । प्रत्येक कषाय अनंतानुबंधी आदि ४ भेदों की अपेक्षा से १६ प्रकार का है ।

६. क्रोधाश्रव : क्रोध अर्थात् गुस्सा । इसके करने से आत्मा में होने वाला कर्मों का आगमन क्रोधाश्रव है ।

७. मानाश्रव : मद, अहंकार, अभिमान करने पर आत्मा में जो कर्मों का आगमन होता है, उसे मानाश्रव कहते है ।

८. मायाश्रव : कपट करके काम में मिली सफलता से जीव को जो

आनंद होता है, उससे होने वाला कर्मों का आगमन मायाश्रव कहलाता है।

९. लोभाश्रव : तृष्णा, आसक्ति, लोभ, लालच से जिन कर्मों का आत्मा में आगमन होता है, उसे लोभाश्रव कहते है।

१०-१४. ५ अव्रत : प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन तथा परिग्रह, इन पाँचों का अनियम, अत्याग, अव्रत कहलाता है। इन पाँचों क्रियाओं में प्रवृत्त न होने पर भी त्याग - प्रत्याख्यान के अभाव में जीवात्मा में कर्मों का आश्रव अवश्य होता है।

१५-१७. ३-योग : मनोयोग, वचनयोग तथा काययोग, ये तीन योग है। मन-वचन काया के शुभाशुभ व्यापार को योग कहते है। इन तीनों योगों और इसके १५ उपभेदों से आत्मा में कर्मों का आश्रव होता है क्योंकि आत्मा जब तक सयोगी है, तब तक आत्म प्रदेश उबलते पानी की तरह चलायमान होते रहते हैं। चलायमान आत्मप्रदेश कर्म अवश्य ग्रहण करते हैं। केवल नाभि स्थान में रहे हुए आठ रुचक प्रदेश अचल होने से कर्म ग्रहण नहीं करते हैं।

१८-४२ पच्चीस क्रियाएँ : उपरोक्त १७ भेद तथा २५ क्रियाएँ, इन कुल ४२ भेदों से आत्मा में कर्मों का आश्रव होता है। २५ क्रियाओं का वर्णन आगामी गाथात्रिक में है।

पच्चीस क्रियाओं का विवेचन

गाथा

काइय अहिगरणिया, पाउसिया पारितावणी किरिया।
पाणाइवायारंभिअ, परिग्गहिआ मायवत्ती अ ॥२२॥
मिच्छादंसणवत्ती अपच्चक्खाणीय दिट्ठि-पुट्ठि अ।
पाडुच्चिअ सामंतो,-वणीअ नेसत्थि साहत्थी ॥२३॥
आणवणि विआरणिआ, अणभोगा अणवकंख पच्चइआ।
अन्ना पओग समुदाण, पिज्ज दोसेरियावहिआ ॥२४॥

अन्वय

काइय, अहिगरणिया, पाउसिया, पारितावणी, पाणाइवाय, आरंभिय, परिग्गहिआ अ, मायवत्ती किरिया ॥२२॥

मिच्छादंसणवत्ती, अपच्चक्खाणी, दिट्ठि, पुट्ठि, पाडुच्चिय, सामंतोवणीअ य
नेसत्थि, य साहत्थी ॥२३॥
आणवणी, विआरणिआ, अणभोगा, अणवकंखपच्चइया, अन्ना
पओगसमुदाण, पिज्ज, दोस, इरियावहिया ॥२४॥

संस्कृत पदानुवाद

कायिक्यधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी पारितापनिकी क्रिया ।
प्राणातिपातिक्यारम्भिकी, पारिग्रहिकी मायाप्रत्ययिकी च ॥२२॥
मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी च दृष्टिकी, पृष्टिकी च ।
प्रातित्यकी सामन्तोपनिपातिकी, नैशस्त्रिकी स्वहस्तिकी ॥२३॥
आज्ञापनिकी वैदारणिकी, अनाभोगिक्यनवकाङ्क्षप्रत्ययिकी ।
अन्याप्रायोगिकी सामुदानिकी, प्रेमिकी द्वेषिकीर्यापथिकी ॥२४॥

शब्दार्थ

काइय - कायिकी क्रिया	**पाणाइवाय** - प्राणातिपातिकी
अहिगरणिया - अधिकरणिकी	**आरंभिय** - आरंभिकी
पाउसिया - प्राद्वेषिकी	**परिग्गहिआ** - पारिग्रहिकी
पारितावणी - पारितापनिकी	**मायवत्ती** - माया प्रत्ययिकी
किरिया - क्रिया	**अ** - और

शब्दार्थ

मिच्छादंसणवत्ती - मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी	**पाडुच्चिय** - प्रातित्यकी
अपच्चक्खाणी - अप्रत्याख्यानिकी	**सामंतोवणीय** - सामंतोपनिपातिकी
दिट्ठि - दृष्टिकी	**नेसत्थि** - नैशस्त्रिकी
पुट्ठि - पृष्ठिकी	**साहत्थी** - स्वाहस्तिकी
अ - और	

शब्दार्थ

आणवणि - आज्ञापनिकी	**अणवकंखपच्चइया**-अनवकांक्षप्रत्ययिकी
विआरणिया - वैदारणिकी	**अन्ना** - अन्य
अणभोगा - अनाभोगिकी	**पओग** - प्रायोगिकी

समुदाण - सामुदानिकी	**दोस** - द्वैषिकी
पिज्ज - प्रैमिकी	**इरियावहिया** - ईर्यापथिकी

भावार्थ

कायिकी, अधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातिकी, आरंभिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्ययिकी क्रिया ॥२२॥

मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी, दृष्टिकी, पृष्टिकी, प्रातित्यकी, सामन्तोपनिपातिकी, नैशस्त्रिकी तथा स्वाहस्तिकी क्रिया ॥२३॥

आज्ञापनिकी, वैदारणिकी, अणाभोगिकी, अनवकांक्षप्रत्ययिकी, अन्य प्रायोगिकी, सामुदानिकी, प्रैमिकी, द्वैषिकी और ईर्यापथिकी, ये २५ क्रियाएँ है ॥२४॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत तीन गाथाओं में २५ क्रियाओं का वर्णन है, जिनसे कर्मों का आश्रव होता है। आत्मा जिस व्यापार के द्वारा शुभाशुभ कर्म को ग्रहण करती हैं, उसे क्रिया कहते है। ये २५ क्रियाएँ निम्नलिखित से हैं –

१. **कायिकी क्रिया** : अविरति तथा अयतनापूर्वक शरीर के हलन-चलन से होने वाली क्रिया कायिकी है।

२. **अधिकरणिकी क्रिया** - जिसके द्वारा आत्मा नरक का अधिकारी हो, वह अधिकरण कहलाता है। अधिकरण अर्थात् तलवार, भाला, छूरी आदि उपघातक या हिंसक शस्त्र बनाना या इनका संग्रह करना अधिकरणिकी क्रिया कहलाती है।

३. **प्राद्वेषिकी क्रिया** : जीव या अजीव पर द्वेष करने से लगनेवाली क्रिया प्राद्वेषिकी है।

४. **पारितापनिकी क्रिया** : स्वयं को अथवा दूसरों को ताडना-तर्जना द्वारा संताप उत्पन्न करना पारितापनिकी क्रिया है।

५. **प्राणातिपातिकी क्रिया** : स्वयं के अथवा अन्य के प्राणों का अतिपात (विनाश) करना प्राणातिपातिकी क्रिया है।

६. **आरंभिकी क्रिया** : खेती करना, मकान बनवाना, कुँआ खुदवाना

चित्र : क्रियाओं का विवेचन

आदि आरंभजनक क्रियाएँ आरंभिकी क्रिया कहलाती है ।

७. पारिग्रहिकी क्रिया : धन-धान्यादि परिग्रह का संचय कर उस पर ममत्व रखना पारिग्रहिकी क्रिया है ।

८. मायाप्रत्ययिकी क्रिया : छल-कपट करके दूसरों को ठगना मायाप्रत्ययिकी क्रिया है ।

९. मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया : वीतराग प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा न करना मिथ्यात्व है । उस निमित्त से लगने वाली क्रिया मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी है ।

१०. अप्रत्याख्यानिकी क्रिया : त्याग-प्रत्याख्यान न करने से लगने वाली क्रिया अप्रत्याख्यानिकी है ।

११. दृष्टिकी क्रिया : जीव या अजीव को राग-द्वेष युक्त नजर से देखने पर जो क्रिया लगती है, वह दृष्टिकी क्रिया है ।

१२. स्पृष्टिकी क्रिया : जीव या अजीव का रागादि से स्पर्श करना, स्पृष्टिकी क्रिया है ।

१३. प्रातित्यकी क्रिया : जीव तथा अजीव वस्तु के निमित्त से राग-द्वेष करना, किसी की ऋद्धि, समृद्धि देखकर जलना, स्तंभादि से टकराने पर द्वेष करना, प्रातित्यकी क्रिया है ।

१४. सामंतोपनिपातिकी क्रिया : अपनी उत्तम वस्तु तथा वैभव आदि को लोग देखे तब उसकी प्रशंसा सुनकर मन में प्रसन्न होना तथा घी-तेल आदि का भाजन खुला रखने से उसमें संपातिम जीव गिरकर विनष्ट होते हैं । इससे जो क्रिया लगती है, उसे सामंतोपनिपातिकी क्रिया कहते है ।

१५. नैशस्त्रिकी क्रिया : राजा आदि की आज्ञा से दूसरे से शस्त्रादि का निर्माण करवाना, जलाशायों को सुखाना, शुद्धाहार को परठ देना, सुपात्र शिष्य को निकाल देना, नैशस्त्रिकी क्रिया है ।

१६. स्वहस्तिकी क्रिया : अपने हाथों से आत्मघात करना या शस्त्रास्त्र से किसी पदार्थ का घात करना, स्वहस्तिकी क्रिया है ।

१७. आज्ञापनिकी क्रिया : आज्ञा देकर वस्तु, आदि कुछ मंगवाना,

आज्ञापनिकी क्रिया है ।

१८. वैदारणिकी क्रिया : जीव तथा अजीव का विदारण (छेदन-भेदन) करना अथवा वितारणा (ठगाई) करना, वैदारणिकी क्रिया है ।

१९. अनाभोगिकी क्रिया : अनाभोग - उपयोग और जयणा रहित की जाने वाली भूमिप्रमार्जना, प्रतिलेखना आदि से लगने वाली क्रिया अनाभोगिकी है।

२०. अनवकांक्षप्रत्ययिकी क्रिया : अपने तथा दूसरे के हित की आकांक्षा बिना लोक विरुद्ध चोरी, परस्त्री सेवन, जुआ, शराब सेवन आदि आचरण करना, अनवकांक्षप्रत्ययिकी क्रिया है ।

२१. प्रायोगिकी क्रिया : मन-वचन-काया के शुभाशुभ योग रूप क्रिया का नाम प्रायोगिकी है ।

२२. सामुदानिकी क्रिया : कर्म समुदाय को ग्रहण करने वाली, लोक समुदाय की संमति से निष्पन्न या संयमी की असंयम में प्रवृत्ति सामुदानिकी क्रिया है ।

२३. प्रैमिकी क्रिया : स्वयं प्रेम करना, दूसरों को प्रेम पैदा हो, ऐसा वचन बोलना, व्यवहार करना, प्रैमिकी क्रिया है ।

२४. द्वैषिकी क्रिया : स्वयं द्वेष करना, द्वेषोत्पादक व्यवहार करना, द्वैषिकी क्रिया है ।

२५. ईर्यापथिकी क्रिया : ईर्या अर्थात् गमनागमन । बिना उपयोग के गमनागमन करना, ईर्यापथिकी क्रिया है । अथवा केवल गमनागमन से कर्म का प्रवेश हो, वह क्रिया ईर्यापथिकी है ।

इन २५ क्रियाओं के विवेचन के साथ आश्रव तत्त्व के ४२ भेदों का कथन परिपूर्ण होता है।

संवर तत्त्व के ५७ भेदों का कथन

गाथा

समिइ गुत्ती परिसह, जइधम्मो भावणा चरित्ताणि ।
पण ति दुवीस दस बार, पंच भेएहिं सगवन्ना ॥२५॥

अन्वय

पण ति दुवीस दस बार पंच भेएहिं समिइ, गुत्ती, परिसह, जइधम्मो,

भावणा, चरित्ताणि सगवन्ना ॥२५॥

संस्कृत पदानुवाद

समिति गुप्तिः परिषहो, यति धर्मो भावनाश्चरित्राणि ।
पंच त्रिक द्वार्विंशतिर्दशद्वादशपंच भेदैःसप्तपंचाशत् ॥२५॥

शब्दार्थ

समिइ - समिति	**ति** - तीन
गुत्ती - गुप्ति	**दुवीस** - बावीस
परिसह - परीषह	**दस** - दश
जइधम्मो - यतिधर्म	**बार** - बारह
भावणा - भावना	**पंच** - पांच
चरित्ताणि - चारित्र	**भएहिं** - भेदों के द्वारा
पण - पांच	**सगवन्ना** - सत्तावन हैं ।

भावार्थ

समिति, गुप्ति, परीषह, यतिधर्म, भावना तथा चारित्र, इनके क्रमशः पांच, तीन, बावीस, दस, बारह तथा पांच भेद होते संवर तत्त्व के ५७ भेद होते हैं ॥२५॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में संवर के ५७ भेदों का केवल उल्लेख है । इन सबका विश्लेषण अगली गाथाओं में प्रस्तुत करेंगे ।

संवर : आते हुए कर्मों को रोकना संवर है । आश्रव तत्त्व का विपरीत संवर तत्त्व है । जीव रूपी तालाब में आश्रव रूपी नालों से जो कर्मरूपी पानी आता है, उसे व्रत प्रत्याख्यान रूपी पाल से रोकना संवर कहलाता है । इसके ५७ भेदों का नामोल्लेख प्रस्तुत गाथा में किया गया है –

५-समिति, ३ - गुप्ति, २२ - परीषह, १० - यति धर्म, १२ - भावना, ५ - चारित्र । उपरोक्त सत्तावन भेदों के द्वारा जीव कर्मों के आगमन को रोकता है ।

समिति तथा गुप्ति का कथन

गाथा

इरिया भासेसणादाणे, उच्चारे समिइसु अ ।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती तहेव य ॥२६॥

अन्वय

समिइसु इरिया, भासा, एसणा, आदाणे अ उच्चारे ।
तह एव मणगुत्ती, वयगुत्ती य कायगुत्ती ॥२६॥

संस्कृत पदानुवाद

ईर्याभाषैषणादानान्युत्सर्गः समितिषु च ।
मनोगुप्तिर्वचो गुप्ति कायगुप्तिस्तथैव च ॥२६॥

शब्दार्थ

इरिया - ईर्यासमिति	**अ** - और
भासा - भाषासमिति	**मणगुत्ती** - मनोगुप्ति
एसणा - एषणासमिति	**वयगुत्ती** - वचनगुप्ति
आदाणे - आदानसमिति	**कायगुत्ती** - कायगुप्ति
उच्चारे - उच्चार समिति	**तहेव** - उसी प्रकार
समिइसु - इन समितियों में	**य** - एवं

आवार्थ

समितिओं में ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान समिति, उच्चार समिति तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति (ये अष्टप्रवचनमाता) हैं ॥२६॥

विशेष विवेचन

समिति - आवश्यक कार्य के लिये सम्यक् उपयोगपूर्वक जो प्रवृत्ति की जाती है, उसे समिति कहते है । समिति में सत्क्रिया का प्रवर्त्तन मुख्य है ।

१. ईर्यासमिति : ईर्या -मार्ग में उपयोग, जयणापूर्वक चलना ईर्यासमिति है । ज्ञान-दर्शन तथा चारित्र के निमित्त मार्ग में युग मात्र (३½ हाथ) भूमि को एकाग्र चित्त से देखते हुए निरवद्य स्थान में सावधानी पूर्वक गमनागमन करना

ईर्यासमिति है ।

२. **भाषासमिति :** आवश्यकता होने पर सत्य-हित-मित तथा निरवद्य भाषा बोलना भाषासमिति है ।

३. **एषणासमिति :** यह समिति मुख्यतया मुनि के होती है । श्रमणाचार के अनुरूप ४२ दोषों को टालते हुए आहारादि ग्रहण करना एषणा समिति है ।

४. **आदान समिति :** वस्त्र, पात्र, रजोहरण, शय्या, संस्तारक आदि संयम के उपकरण तथा ज्ञानोपकरण आदि को उपयोगपूर्वक प्रमार्जन करके रखना आदान समिति है । इसका दूसरा नाम आदान-भंड-मत्त-निक्खेवणा समिति भी है । आदान-ग्रहण करना, निक्खेवणा - रखना, भंड-मत्त-पात्र-मात्रक आदि को जयणापूर्वक ।

५. **उच्चार समिति :** अर्थात् उत्सर्ग समिति । स्थण्डिल के दोषों को टालते हुए उत्सर्ग अर्थात् विसर्जन करना । लुघनीति (पेशाब) बडीनीति (मल) थूंक, कफ, अशुद्ध आहार आदि को निर्जीव स्थान में परठना, त्याग करना, उत्सर्ग समिति कहलाता है । इसका उपर नाम उच्चार-प्रस्त्रवण-खेल-जल्ल सिंघाण पारिष्ठापनिका समिति भी है ।

गुप्ति : मन - वचन तथा काया की अशुभ प्रवृत्तियों को रोककर शुभ प्रवृत्ति करना, गुप्ति कहलाती है । योगों के व्यापार का गोपन करना, समेटना गुप्ति कहलाता है । इसमें असत्क्रिया का निषेध मुख्य है ।

१. **मनोगुप्ति :** मन को सावद्य (सदोष) विचारों से रोकना, आर्त्तध्यान, रौद्र ध्यान, संरम्भ, समारंभ तथा आरंभ संबंधी संकल्प न करना, धर्म तथा शुक्ल ध्यान ध्याना, मनोगुप्ति है ।

२. **वचन गुप्ति :** सावद्य, हिंसक तथा कटु वचन न बोलना, विकथा त्याग करना, मौन रहना, वचन गुप्ति है ।

३. **काय गुप्ति :** शरीर को सदोष क्रियाओं से रोककर निर्दोष क्रियाओं में जोडना, अशुभ तथा पापकारी प्रवृत्ति का त्याग करना, काय गुप्ति है । ये पांच समिति तथा तीन गुप्ति अष्टप्रवचन माता कही जाती है क्योंकि इन आठों से संवर धर्म रूप पूत्र का पालन-पोषण होता है । ये मुनि के यावज्जीवन तथा श्रावक के सामायिक, पौषध आदि में होती है ।

इस प्रकार ये पाँच समितियाँ कुशल (मार्ग) में प्रवृत्ति रूप है तथा तीन गुप्तियाँ कुशल में प्रवृत्ति तथा अकुशल से निवृत्ति रूप है।

परीषह-विवेचन

गाथा

खुहा पिवासा सी उण्हं, दंसाचेलारइत्थिओ ।
चरिया निसीहिया सिज्जा, अक्कोस वह जायणा ॥२७॥
अलाभ रोग तण फासा, मलसक्कार परिसहा ।
पन्ना अन्नाण सम्मत्तं, इअ बावीस परिसहा ॥२८॥

अन्वय

खुहा, पिवासा, सी, उण्हं, दंस, अचेल, अरइ, (इ)त्थिओ, चरिया, निसीहिया, सिज्जा, अक्कोस, वह, जायणा ॥२७॥

अलाभ, रोग, तणफासा, मल, सक्कार, परिसहा, पन्ना, अन्नाण, सम्मत्तं, इअ बावीस परिसहा ॥२८॥

संस्कृत पदानुवाद

क्षुधा पिपासा शीतमुष्णं, दंशोऽचेलकोऽरतिस्त्रियः ।
चर्या नैषेधिकी शय्या, आक्रोशो वधो याचना ॥२७॥
अलाभ रोग-तृण-स्पर्शा, मल सत्कार परिषहौ ।
प्रज्ञा-अज्ञानं सम्यकत्वमिति द्वाविंशतिः परिषहाः ॥२८॥

शब्दार्थ

खुहा - क्षुधा	**त्थिओ** - स्त्री
पिवासा - पिपासा	**चरिया** - चर्या
सी - शीत	**निसीहिया** - निषद्या
उण्हं - उष्ण	**सिज्जा** - शय्या
दंस - दंश	**अक्कोस** - आक्रोश
अचेल - अचेलक	**वह** - वध
अरइ - अरति	**जायणा** - याचना

शब्दार्थ

अलाभ - अलाभ	**पन्ना** - प्रज्ञा
रोग - रोग	**अन्नाण** - अज्ञान
तणफासा - तृणस्पर्श	**सम्मत्तं** - सम्यक्त्व
मल - मल	**इअ** - ये
सक्कार - सत्कार	**बावीस** - बाईस
परिसहा - परीषह	**परिसहा** - परीषह हैं ।

आवार्थ

क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंश, अचेल, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, सम्यक्त्व, ये बाईस परीषह है ॥२७-२८॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में २२ परीषहों का वर्णन है ।

परीषह : अंगीकार किये हुए धर्ममार्ग में स्थिर रहने और कर्म बन्धनों के विनाशार्थ जो जो स्थिति समभावपूर्वक सहन करने योग्य है, उसे परीषह कहते है ।

१-२. क्षुधा व पिपासा परीषह : भूख तथा प्यास की चाहे कैसी भी वेदना हो, फिर भी अंगीकार की हुई मर्यादा के विरुद्ध सचित्त एवं दोषपूर्ण आहार, पानी आदि न लेते हुए समभावपूर्वक इन वेदनाओं को सहना - वे क्रमशः क्षुधा तथा पिपासा परीषह हैं ।

३-४. शीत व उष्ण परीषह : चाहे कितनी ही कडाके की ठंड हो और चाहे कितनी ही तपाने वाली गर्मी हो तथापि उसके निवारणार्थ किसी भी अकल्प्य वस्तु का सेवन किये बिना और साधनों का उपयोग किये बिना समभाव व शांतिपूर्वक इन वेदनाओं को सहना, क्रमशः शीत व उष्ण परीषह है ।

५. दंश परीषह : डांस, मच्छर आदि जन्तुओं का उपद्रव होने पर भी खिन्न न होना और न उन जन्तुओं पर द्वेष करना या कष्ट पहुँचाना बल्कि अपनी

समता में स्थिर रहना, दंश परीषह है।

६. अचेल परीषह : वस्त्र का सर्वथा अभाव अथवा जीर्ण वस्त्र मिलने पर भी दीनता का विचार न करते हुए नग्नता को समभावपूर्वक सहना, अचेल परीषह है।

७. अरति परीषह : अरति अर्थात् उद्वेग-अरूचि। संयमधर्म का पालन करते हुए अनेक कठिनाईयों के कारण अरूचि का प्रसंग आ पडने पर मन में किसी तरह का उद्वेग या विषाद न लाना परंतु धर्मानुष्ठान में धैर्यपूर्वक रस लेना, अरति परीषह है।

८. स्त्री परीषह : साधक पुरुष अथवा स्त्री का अपनी साधना में विजातीय आकर्षण से न ललचाना, सराग दृष्टि से न देखना, न वार्तालाप करना, स्त्री (पुरूष) परीषह है।

९. चर्या परीषह : चर्या-चलना, विहार करना। एक स्थान में नियतवास न कर भिन्न-भिन्न स्थानों में नौकल्पी विहार करना, उसमें आलस्य या प्रमाद न करना, चर्या परीषह है।

१०. निषद्या परीषह : शून्य गृह, श्मशान, सर्पबिल, सिंहगुफा आदि एकान्त स्थानों में मर्यादित समय तक आसन लगाकर बैठना, यदि भय का प्रसंग आ पडे तो भी चलायमान न होना, निषद्या परीषह है।

११. शय्या परीषह : कोमल या कठिन, ऊँची-नीची जैसी भी जगह मिले उसमें उद्वेग न करते हुए समभावपूर्वक शयन करना, शय्या परीषह है।

१२. आक्रोश परीषह : कोई ताडना-तर्जना या तिरस्कार करे तब भी उसे सत्कारवत् समझना, आक्रोश परीषह है।

१३. वध परीषह : कोई अज्ञानी डंडे, चाबुक या लाठी से प्रहार करते हुए हत्या भी कर दे, तब भी उसके प्रति द्वेष न करते हुए उस उपसर्ग को समभावपूर्वक सहना, वध परीषह है।

१४. याचना परीषह : साधु कोई भी वस्तु मांगे बिना ग्रहण नहीं करता। मन में किसी भी प्रकार का अभिमान न रखते हुए धर्मयात्रा के निर्वाहार्थ याचकवृत्ति स्वीकार करना, याचना परीषह है।

१५. **अलाभ परीषह :** याचना करने पर भी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति न हो तो उद्वेग न करते हुए अप्राप्ति को ही सच्चा तप मानकर उसमें संतोष करना, अलाभ परीषह है ।

१६. **रोग परीषह :** ज्वर, अतिसार आदि रोग होने पर भी व्याकुल न होकर पूर्व कर्म का विपाक मानकर समभावपूर्वक सहना, रोग परीषह कहलाता है ।

१७. **तृणस्पर्श परीषह :** संथारे में या अन्यत्र तृण आदि की तीक्ष्णता किंवा कठोरता अनुभव हो तो भी दीनता धारण न करे, उद्वेग भी न करे बल्कि मृदुशय्या के सेवन जैसा उल्लास रखना, तृणस्पर्श परीषह है ।

१८. **मल परीषह :** पसीने आदि से मैल जमने पर जब दुर्गंध आये तो साधु उससे उद्वेग न करे, शोभा, विभूषादि संस्कार की चाहना न करे, यह मल परीषह है ।

१९. **सत्कार परीषह :** चाहे कितना भी बहुमान-सत्कार हो, फिर भी मन में किसी प्रकार का हर्ष, अभिमान या गर्व न करे, यह सत्कार परीषह है ।

२०. **प्रज्ञा परीषह :** स्वयं बहुश्रुत होने पर लोग यदि बुद्धि की प्रशंसा करे तो भी स्वयं गर्वोन्नत न बनना, प्रज्ञा परीषह है ।

२१. **अज्ञान परीषह :** यदि अल्प बुद्धिवाला होने से साधु तत्त्व न जान पाये तो अपनी अज्ञानता को संयम में उद्वेग का कारण न बनने देना बल्कि श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का उदय मानकर संयम में लीन रहना, अज्ञान परीषह है।

२२. **सम्यक्त्व परीषह :** अनेक कष्ट या उपसर्ग आदि पडने पर भी धर्मश्रद्धा से विचलित न होना, सूक्ष्म अर्थ समझ में न आये तो व्यामोह न करना, परदर्शन में चमत्कार देखकर उस पर मोहित न होना, सम्यक्त्व परीषह कहलाता है ।

दस यति धर्म

गाथा

खंती मद्दव अज्जव, मुत्ती तव संजमे अ बोधव्वे ।
सच्चं सोअं अकिंचणं च, बंभं च जइधम्मो ॥२९॥

अन्वय

खंती, मद्दव, अज्जव, मुत्ती, तव, संजमे, सच्चं, सोअं, अकिंचणं, बभं च जइधम्मो बोधव्वे ॥२९॥

संस्कृत पदानुवाद

क्षान्तिमार्दवार्जवो मुक्तिः, तपः संयमश्च बोधव्यः ।
सत्यं शौचमाकिंचन्यं, च ब्रह्म च यतिधर्मः ॥२९॥

शब्दार्थ

खंती - क्षमा	**सच्चं** - सत्य
मद्दव - मार्दव, नम्रता	**सोअं** - शौच (पवित्रता)
अज्जव - आर्जव, सरलता	**अकिंचणं** - आकिंचन्य
मुत्ती - निर्लोभता	**बंभं** - ब्रह्मचर्य
तव - तपश्चर्या	**च** -और
संजमे - संयम	**जइधम्मो** -यतिधर्म
य - और	
बोधव्वे - जानना चाहिए ।	

भावार्थ

क्षमा, मार्दव, आर्जव, निर्लोभता, तप, संयम, सत्य, शौच, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य, ये दस प्रकार के यतिधर्म जानने चाहिए ॥२९॥

विशेष विवेचन

यति : मोक्षमार्ग में जो यत्न करें, वह यति है। मुनि, साधु, श्रमण आदि यति के ही पर्यायवाची हैं। प्रस्तुत गाथा में संवर के ५७ भेदों में से १० भेदों का कथन है। यतिधर्म के १० भेद निम्न प्रकार से हैं –

१. क्षमा : क्रोध पर विजय प्राप्त करना, क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी समभाव रखना क्षमा है।

२. मार्दव : मान का त्याग कर नम्र बनना। जाति, कुल, रूप, ऐश्वर्य, तप, ज्ञान, लाभ और बल, इन आठों में से किसी का मद न करना, मार्दव कहलाता है।

३. आर्जव : कपट रहित होना। माया, दम्भ, ठगी आदि का सर्वथा त्याग कर सरल तथा निष्कपट होना, आर्जव है।

४. मुक्ति : लोभ पर विजय प्राप्त करं नि:स्पृह बनना।

५. तप : इच्छाओं का निरोध करना। इसके १२ भेद हैं, जिनका कथन निर्जरा तत्त्व में किया गया है। तप से संवर तथा निर्जरा, दोनों होते है।

६. संयम : सम् - सम्यक् प्रकार का, यम - पांच महाव्रत या पांच अणुव्रत का पालन संयम धर्म कहलाता है। मुनि के १७ प्रकार संयम होता है - पांच महाव्रत पालन, पांच इन्द्रिय निग्रह, चार कषाय जय तथा मन-वचन-काया के योगों की विरति।

७. सत्य : सत्य, प्रिय, हित-मित तथा कल्याणकारी निर्दोष वचन बोलना।

८. शौच : मन-वचन तथा काया के व्यवहार को पवित्र रखना।

९. आर्किंचन्य : किसी भी पदार्थ में ममत्व बुद्धि न रखना आर्किंचन्य है। किंचन - कुछ भी, अ - नहीं, जिसके पास कुछ भी नहीं, वह अर्किंचन है।

१०. ब्रह्मचर्य : नववाड सहित ब्रह्मचर्य का परिपूर्ण पालन करना।

इस १० प्रकार के यतिधर्म को अंगीकार करने से कर्मों का संवर होता है।

बारह भावना

गाथा

पढममणिच्चमसरणं, संसारो एगया य अन्नत्तं।
असुइत्तं आसव, संवरो य तह णिज्जरा नवमी ॥३०॥
लोगसहावो बोही, दुल्लहा धम्मस्स साहगा अरिहा।
एआओ भावणाओ, भावेअव्वा पयत्तेणं ॥३१॥

अन्वय

पढमं अणिच्चं, असरणं, संसारो, एगया, य अन्नत्तं, असुइत्तं, आसव य संवरो तह नवमी णिज्जरा ॥३०॥

लोगसहावो, बोही दुल्लहा, धम्मस्स साहगा अरिहा, एआओ भावणाओ, पयत्तेणं भावेअव्वा ॥३१॥

संस्कृत पदानुवाद

प्रथमनित्यमशरणं, संसार एकता चान्यत्वं ।
अशुचित्वमाश्रवः, संवरश्च तथा निर्जरा नवमी ॥३०॥
लोकस्वभावो बोधिदुर्लभा धर्मस्य साधका अर्हन्तः ।
एता भावना, भावितव्याः प्रयत्नेन ॥३१॥

शब्दार्थ

पढमं - प्रथम	**असुइत्तं** - अशुचित्व
अणिच्चं - अनित्य	**आसव** - आश्रव
असरणं - अशरण	**संवरो** - संवर
संसारो - संसार	**तह** - तथा
एगया - एकत्व	**णिज्जरा** - निर्जरा
य - और	**नवमी** - नौवी
अन्नत्तं - अन्यत्व	

शब्दार्थ

लोगसहावो - लोकस्वभाव	**एआओ** - ये
बोही दुल्लहा - बोधिदुर्लभ	**भावणाओ** - भावनाएँ
धम्मस्स - धर्म के	**भावेअव्वा** - भानी (धारनी) चाहिए ।
साहगा - साधक	**पयत्तेणं** - प्रयत्नपूर्वक
अरिहा - अरिहंत हैं ।	

भावार्थ

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोकस्वभाव, बोधिदुर्लभ तथा धर्म के साधक अरिहंत दुर्लभ (धर्म स्वाख्यात) है, ये १२ भावनाएँ प्रयत्नपूर्वक भानी (धारनी) चाहिए ॥३०-३१॥

विशेष विवेचन

भावना : मोक्षमार्ग के प्रति भावों की वृद्धि हो, ऐसा चिन्तन करना भावना है। भावना अर्थात् अनुप्रेक्षा। गहरा चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। यदि चिन्तन तात्त्विक तथा गहरा होता है तो उसके द्वारा रागद्वेष की वृत्तियों का होना रूक जाता है, इसीलिये ऐसे चिन्तन का संवर के उपाय में वर्णन किया गया है।

१. अनित्य भावना : धन-दौलत, रूप-सौंदर्य, पत्नी-परिवार, दुकान-मकान, ये संसार की समस्त वस्तुएँ क्षणिक और नाशवान् हैं। सभी पदार्थ अनित्य और अस्थिर हैं। इस प्रकार की अनुप्रेक्षा करना अनित्य भावना है। यह भावना भरत चक्रवर्ती ने भायी थी।

२. अशरण भावना : इस संसार में दुःख व आपत्ति आने पर कोई भी किसी के लिये त्राण या शरण रूप नहीं है। एक मात्र जिनधर्म ही शरणभूत है। इस प्रकार का चिन्तन अशरण भावना है। यह भावना अनाथी मुनि ने भायी थी।

३. संसार भावना : चार गति रूप इस दुःखदायी संसार में निरन्तर भटकना पडता है। इस जन्म-मरण के चक्र में न तो कोई स्वजन है, न परजन। क्योंकि प्रत्येक के साथ जन्म जन्मांतरों में हर तरह के संबंध हो चुके हैं। यह संसार एक तरह का रंगमंच है, जहाँ तरह-तरह के नाटक होते हैं। अतः यह त्याग करने योग्य है। इस प्रकार का चिंतन करना संसार भावना है। यह भावना मल्लिनाथजी ने भायी थी।

४. एकत्व भावना : जीव अकेला ही आया है और परलोक में अकेला ही जायेगा। अपने कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता भी जीव अकेला ही है। उसका दुःख या व्याधि दूसरा कोई भी दूर नहीं कर सकता। सुख-दुःख का फल भी जीव को अकेले ही भोगना पडता है। इस प्रकार का चिंतन एकत्व भावना है। यह भावना नमिराजर्षि ने भायी थी।

५. अन्यत्व भावना : धन-कुटुंब, माता-पितादि परिवार सभी मुझसे भिन्न है। मैं चैतन्यमय आत्मा इन सबसे अलग हूँ। परपदार्थ को अपना मानना अज्ञानजन्य बुद्धि है। आत्मा का किसी से कोई संबंध नहीं है। इस अनुप्रेक्षा

का नाम अन्यत्व भावना है। यह भावना मृगापुत्र ने भायी थी।

६. अशुचित्व भावना : यह सुंदर दिखने वाला शरीर रस, रूधिर, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि तथा वीर्य, इन सप्त धातुओं से निर्मित है। पुरुष के ९ द्वार तथा स्त्री के १२ द्वारों से सदैव गंदगी व अशुचि बहती रहती है। इस अशुचिमय शरीर से सुगंध भी दुर्गंध में तथा सुंदर, स्वादिष्ट आहार भी विष्ठा के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार ऐसे घृणित शरीर पर मोह-आसक्ति रखना ठीक नहीं है, ऐसी विचारणा अशुचित्व भावना है। इसका चिंतन सनत्कुमार चक्रवर्ती ने किया था।

७. आश्रव भावना : आश्रव के ४२ द्वारों से कर्मों का आगमन आत्मा में सतत् चालू है। इसके द्वारा जीव सुख-दुःख का अनुभव करता रहता है। कर्मों का आगमन कैसे रुके, जिससे आत्मा का उद्धार हो सके, इस चिंतन को आश्रव भावना कहते है। यह भावना समुद्रपाल मुनि ने भायी थी।

८. संवर भावना : समिति, गुप्ति, परीषह, यतिधर्म, भावना तथा चारित्र इनके ५७ भेदों का स्वरूप चिन्तन करना संवर भावना है। यह भावना हरिकेशी मुनि ने भायी थी।

९. निर्जरा भावना : आत्मा के साथ लगे हुए कर्मों को १२ प्रकार के तप द्वारा निर्जरित करने का चिन्तन निर्जरा भावना है। इसका चिंतन अर्जुन अणगार ने किया था।

१०. लोकस्वभाव भावना : लोक के संस्थान व लोक में रहे हुए द्रव्यों के गुण, पर्याय आदि का चिंतन करना लोकस्वभाव भावना है। इसका चिंतन शिव राजर्षि ने किया था।

११. बोधिदुर्लभ भावना : बोधि अर्थात् बोध-सम्यक्त्व। दुर्लभ - मुश्किल से प्राप्त हो। अनादिकाल से इस संसार में परिभ्रमण करते हुए जीवों को सम्यग्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप त्रिरत्न की प्राप्ति अति दुर्लभ है। संसार की चक्रवर्ती, वासुदेवादि पदवियाँ पाना सरल है पर सम्यक्त्व रूप बोध प्राप्त होना मुश्किल है। इस प्रकार का चिन्तन बोधिदुर्लभ भावना है। इस भावना का चिंतन ऋषभदेव के ९८ पूत्रों ने किया था।

२२ परीषह
१० यतिधर्म
१२ भावना
चारित्र
सर्व विरति
देश विरति

१२. धर्म के साधक अरिहन्त दुर्लभ भावना : धर्म के साधक-संस्थापक अरिहंत प्रभु की प्राप्ति होना अतिदुर्लभ है। जिससे समस्त प्राणियों का कल्याण हो, ऐसे सर्वगुण सम्पन्न श्रुत-चारित्र तथा श्रमण-श्रावक धर्म का उपदेश अरिहंतो ने किया। वह धर्म ही सत्य है, हितकारी तथा कल्याणकारी है, जो अरिहंतो द्वारा प्ररूपित है। इस प्रकार का चिंतन करना धर्म साधक अर्हत दुर्लभ भावना है। इसे धर्मस्वाख्यात भावना भी कहते हैं। इस भावना का चिंतन धर्मरूचि अणगार ने किया था।

पांच चारित्र

गाथा

सामाइअत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीअं।
परिहार विसुद्धीअं, सुहुमं तह संपरायं च ॥३२॥
तत्तो अ अहक्खायं, खायं सव्वम्मि जीव लोगम्मि।
जं चरिऊण सुविहिया, वच्चंति अयरामरं ठाणं ॥३३॥

अन्वय

अत्थ पढमं सामाइयं, बीअं छेओवट्ठावणं भवे, परिहार विसुद्धीअं, तह सुहुमं च संपरायं ॥३२॥

अ तत्तो अहक्खायं, सव्वम्मि जीव लोगम्मि खायं, जं चरिउण सुविहिया, अयरामरं ठाणं वच्चंति ॥३३॥

संस्कृत पदानुवाद

सामायिकमथ प्रथमं, छेदोपस्थापनं भवेद् द्वितीयम्।
परिहार विशुद्धीकं, सूक्ष्मं तथा सांपरायिकं च ॥३२॥
ततश्च यथाख्यातं, ख्यातं सर्वस्मिन् जीवलोके।
यच्चरित्वा सुविहिता, गच्छन्त्याजरामरं स्थानं ॥३३॥

शब्दार्थ गाथा-३२

सामाइअ - सामायिक चारित्र	**छेओवट्ठावणं** - छेदोपस्थापनीय
अत्थ - अब	**भवे** - है
पढमं - पहला	**बीअं** - दूसरा चारित्र

परिहार विसुद्धीअं - परिहारविशुद्धि चारित्र	**संपरायं** - संपराय चारित्र
सुहूमं - सूक्ष्म	**च** - और
तह - तथा	

शब्दार्थ (गाथा-३३)

तत्तो - उन चारित्रों के बाद	**जं** - जिस (यथाख्यात चारित्र)का
अ - और	**चरिऊण** - आचरण करके
अहक्खायं - यथाख्यात चारित्र	**सुविहिया** - सुविहित (भव्य) जीव
खायं - प्रख्यात	**वच्चंति** - प्राप्त करते हैं
सव्वम्मि - सबमें	**अयरामरं** - अजरामर
जीवलोगम्मि - जीवलोक में, जगत में	**ठाणं** - स्थान को

भावार्थ

पहला सामायिक चारित्र, दूसरा छेदोपस्थापनीय चारित्र, तीसरा परिहार विशुद्धि तथा चौथी सूक्ष्मसंपराय चारित्र है ॥३२॥

तथा उन चारित्रों के बाद अन्तिम यथाख्यात अर्थात् सर्व जीवलोक में प्रसिद्ध चारित्र है। इस चारित्र का अनुपालन करके सुविहित जीव मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥३३॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में संवर के ५७ भेदों में से पाँच चारित्र रूप अंतिम पाँच भेदों का कथन है। इस व्याख्या के साथ संवर तत्त्व की मीमांसा संपूर्ण होगी।

चारित्र : चय - आठ कर्मों का चय - संचय, उसे रित्त-खाली करने वाले अनुष्ठान का नाम चारित्र है। यह ५ प्रकार का है -

१. सामायिक चारित्र : सामायिक शब्द की व्युत्पत्ति 'सम् + आय् +इकण्' इस प्रकार है। सम अर्थात् समताभावों की, आय् अर्थात् जिसमें वृद्धि हो, वह सामायिक है। इसमें तद्धित का इक प्रत्यय संयुक्त है। राग-द्वेष की विषमता को मिटाकर शत्रु-मित्र के प्रति समताभाव धारण करना, उस भाव से जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र का आय-लाभ होता है, उस विशुद्ध अनुष्ठान को सामायिक चारित्र कहते है। इसका जघन्य काल ४८ मिनिट तथा उत्कृष्ट काल

६ माह है। इस चारित्र के २ भेद है। इत्वर कथिक तथा यावत्कथिक। इत्वर अर्थात् अल्पकाल। जिसमें भविष्य में दुबारा सामायिक व्रत का व्यपदेश हो, उसे इत्वरकथिक सामायिक कहा जाता है। यावज्जीवन की सामायिक यावत्कथिक सामायिक है।

२. छेदोपस्थापनीय चारित्र : प्रथम दीक्षा लेने के बाद विशिष्ट श्रुत का अभ्यास कर चुकने पर विशेष शुद्धि के निमित्त जो जीवनपर्यंत पुनः दीक्षाग्रहण की जाती है अथवा प्रथम ली हुई दीक्षा में दोषोत्पत्ति आने से पूर्व चारित्र पर्याय का छेद करके पुनः नये सिरे से जो दीक्षा का आरोपण किया जाता है, वह छेदोपस्थापनीय चारित्र है।

इसके भी दो भेद है : (१) निरतिचार छेदोपस्थापनीय (२) सातिचार छेदोपस्थापनीय। यदि मुनि ने मूलगुण का घात किया हो तो पूर्व में पालन की हुई दीक्षा का छेद करके पुनः चारित्र का उच्चारण (ग्रहण) करना, यह छेद अर्थात् प्रायश्चितवाला चारित्र सातिचार छेदोपस्थापनीय है। छोटी दीक्षा वाले (सामायिक चारित्रवाले) मुनि के या एक तीर्थंकर के अनुशासन से दूसरे तीर्थंकर के शासन में जानेवाले मुनि को जो व्रत आरोपण करवाया जाता है, वह निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र है।

३. परिहारविशुद्धि चारित्र : परिहार - त्याग। जिस चारित्र में परिहार तप विशेष से चारित्र तथा कर्म निर्जरा रूप विशेष शुद्धि होती है, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते है।

विशिष्ट श्रुतधारी नौ साधुओं का संघ अपने आत्मा की विशुद्धि के लिये अपने गच्छ-समुदाय से अलग होकर, गुरु आज्ञा लेकर विशिष्ट तपोध्यान रूप जिस अनुष्ठान को साधता है, वह परिहार विशुद्धि चारित्र है।

४. सूक्ष्मसंपराय चारित्र : सूक्ष्म अर्थात् किट्टिरूप (चूर्णरूप) अति अल्प संपराय अर्थात् बादर लोभ कषाय के क्षयवाला जो चारित्र है, वह सूक्ष्म संपराय चारित्र कहलाता है। क्रोध-मान तथा माया, ये तीन कषाय क्षय होने के बाद अर्थात् मोहनीय की २८ प्रकृतियों में से लोभ के बिना २७ प्रकृतियों का क्षय होने के बाद तथा संज्वलन लोभ के भी बादर संज्वलन लोभ का उदय समाप्त होने के बाद जब केवल सूक्ष्म लोभ का ही उदय रहता है, तब दसवें सूक्ष्म

संपराय गुणस्थान में प्रवर्तित जीव का सूक्ष्म संपराय चारित्र कहलाता है। इसके भी दो भेद हैं :

१. विशुध्यमान : क्षपक या उपशम श्रेणी चढने वाले साधु के परिणाम उत्तरोत्तर शुद्ध रहने से उनका सूक्ष्मसंपराय चारित्र विशुध्यमान कहलाता है।

२. संक्लिश्यमान : उपशम श्रेणी से गिरते हुए जीव के १० वें गुणस्थानक में संक्लिष्ट परिणाम होने से उसका चरित्र संक्लिश्यमान कहलाता है।

५. यथाख्यात चारित्र : यथा-जैसा (अरिहन्तों ने) ख्यात - कहा है, वैसा संपूर्ण चारित्र यथाख्यात चारित्र है। अथवा सर्वजीवलोक में प्रसिद्ध चारित्र यथाख्यात है अथवा अकषायी साधु का यथार्थ चारित्र यथाख्यात है। इस चारित्र से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह चारित्र भी चार प्रकार का है –

१. उपशान्त यथाख्यात चारित्र : ग्यारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उदय का तो सर्वथा अभाव हो जाता है परंतु यह कर्म चूंकि सत्ता में विद्यमान होता है, अतः उस समय का चारित्र उपशान्त यथाख्यात चारित्र कहलाता है।

२. क्षायिक यथाख्यात चारित्र : १२ वें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का पूर्णतः क्षय हो जाता है; अतः उस समय का चारित्र क्षायिक यथाख्यात चारित्र कहलाता है।

३. छाद्मस्थिक यथाख्यात चारित्र : ११ वें और १२ वें गुणस्थान में उपरोक्त दोनों प्रकार का चारित्र छाद्मस्थिक यथाख्यात चारित्र कहलाता है।

४. कैवलिक यथाख्यात चारित्र : केवलज्ञानी को १३ वें गुणस्थान में क्षायिक भाव का चारित्र कैवलिक यथाख्यात चारित्र कहलाता है।

निर्जरा तथा बंध तत्त्व के भेद

गाथा

बारसविहं तवो णिज्जरा य, बंधो चउ विगप्पो अ।
पयइ ट्ठिइ - अणुभागप्पएस भेएहिं नायव्वो ॥३४॥

अन्वय

बारस विहं तवो णिज्जरा य, पयइ-ट्ठिइ-अणुभाग-प्पएस, भेएहिं बंधो चउ विगप्पो नायव्वो ॥३४॥

संस्कृत पदानुवाद

द्वादशविधं तपो निर्जरा च, बन्धश्चतुर्विकल्पश्च ।
प्रकृति स्थित्यनुभागप्रदेश भेदैर्ज्ञातव्यः ॥३४॥

शब्दार्थ

बारसविहं - बारह प्रकार का	**अ** - और
तवो - तप	**पयइ-ट्ठिई-अणुभाग** - प्रकृति-स्थिति-अनुभाग
णिज्जरा - निर्जरा (तत्त्व) है	
य - और	**प्पएसं** - प्रदेश,
बंधो - बंध	**भेएहिं** - भेदों से
चउ विगप्पो - चार (प्रकार) का है	**नायव्वो** - जानना चाहिए ।

भावार्थ

बारह प्रकार का तप निर्जरा है तथा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश, इन चार भेदों से बंध चार प्रकार का है ॥३४॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में निर्जरा तथा बंध तत्त्व के भेदों की संख्या व नामनिर्देश किया है । अगली गाथा में इसे विस्तृत रूप से स्पष्ट करेंगे ।

निर्जरा तत्त्व के १२ भेद

६ बाह्य तथा ६ आभ्यन्तर तप

गाथा

अणसणमूणोअरिया, वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ ।
काय किलेसो संलीणया य, बज्झो तवो होइ ॥३५॥
पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं उस्सग्गो वि अ, अब्भिंतरओ तवो होइ ॥३६॥

अन्वय

अणसणं ऊणोअरिया, वित्ती संखेवणं, रसच्चाओ, काय-किलेसो य संलीणया, बज्झो तवो होइ ॥३५॥

पायच्छित्तं, विणओ, वेयावच्चं, अ सज्झाओ, झाणं तहेव उस्सग्गो अवि, अब्भिंतरओ तवो होइ ॥३६॥

संस्कृत पदानुवाद

अनशनमूनौदरिका, वृत्तिसंक्षेपणं रसत्यागः ।
कायक्लेशः संलीनता, च बाह्यस्तपो भवति ॥३५॥
प्रायश्चित्तं विनयो, वैयावृत्यं तथैव स्वाध्यायः ।
ध्यानं कायोत्सर्गोऽपि, चाभ्यन्तस्तपो भवति ॥३६॥

शब्दार्थ

अणसणं - अनशन	**संलीणया** - संलीनता
ऊणोअरिया - ऊनोदरिका	**य** - और
वित्तिसंखेवणं - वृत्ति संक्षेप	**बज्झो** - बाह्य
रसच्चाओ - रसत्याग	**तवो** - तप
कायकिलेसो - कायक्लेश	**होइ** - होता है ।

शब्दार्थ

पायच्छित्तं - प्रायश्चित्त	**उस्सग्गो** - उत्सर्ग (कायोत्सर्ग)
विणओ - विनय	**अवि** - भी
वेयावच्चं - वैयावृत्य	**अ** - और
तहेव - तथैव (उसी प्रकार)	**अब्भिंतरओ** - आभ्यंतर
सज्झाओ - स्वाध्याय	**तवो होई** - तप होता है ।
झाणं - ध्यान	

आवार्थ

अनशन, ऊणोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश, संलीनता, ये (६)बाह्य तप हैं । प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान तथा कायोत्सर्ग ये (६) आभ्यंतर तप हैं ॥३५-३६॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथाद्वय में निर्जरा के १२ भेदों का कथन है । छह बाह्य तप तथा

चित्र : छह प्रकार का बाह्य तप

छह आभ्यन्तर तप, ये कुल १२ भेद निर्जरा तत्त्व के हैं।

निर्जरा : आत्मा पर लगे हुए कर्मरूपी मल का देशतः दूर होना निर्जरा कहलाता है। कर्मों की निर्जरा करने के लिये तप एक सशक्त माध्यम है। वासनाओं तथा इच्छाओं को क्षीण करने के लिये शरीर, मन तथा इन्द्रियों को जिन-जिन उपायों से तापित किया जाता है, वे सभी तप हैं।

बाह्य तप : जिसमें शारीरिक क्रिया की प्रधानता होती है तथा जो बाह्य द्रव्यों की अपेक्षा वाला होने से दूसरों को दिखाई दे, जो शरीर को तपाता है, वह बाह्य तप है। इसके छह भेद हैं।

१) **अनशन :** न अशन इति अनशन। जिसमें अशन-अर्थात् आहार ग्रहण नहीं होता, वह अनशन है। मर्यादित समय तक या जीवनपर्यंत चारों प्रकार के आहार का त्याग करना, अनशन तप है।

२) **ऊनोदरी :** ऊन यानि कम। ओदरी अर्थात् उदरपूर्ति। जितनी भूख हो, उससे कुछ कम आहार करना, ऊणोदरी तप कहलाता है। चार रोटी की भूख होने पर भी तीन रोटी खाना, ऊनोदरी तप है।

३) **वृत्तिसंक्षेप :** खाने की विविध वस्तुओं का संक्षेप करना, वृत्तिसंक्षेप तप है।

४) **रसत्याग :** रस अर्थात् दूध, दही, घी, तेल, गुड और पक्वान्न (तली हुई वस्तु), इन छह भक्ष्य विगई का यथायोग्य तथा मदिरा, मांस, शहद, मक्खन, इन चार महाविगई (अभक्ष्य) का सर्वथा त्याग करना, रसत्याग तप कहलाता है।

५) **कायक्लेश :** आतापना (ठण्डी गर्मी को सहन करना) या विविध आसन, केश लुंचन, पद विहरण द्वारा शरीर को कष्ट देना, कायक्लेश तप है।

६) **संलीनता :** अर्थात् संकोचन करना। अशुभ मार्ग में प्रवृत्त होती हुई इन्द्रियों का संकोचन करना या रोकना, संलीनता तप है।

आभ्यंतर तप : जिसमें मानसिक क्रिया की प्रधानता हो, जो बाह्य द्रव्यों की अपेक्षा न रखे, जिस तप से लोग तप करने वाले को तपस्वी न कहे, जिसमें शरीर नहीं बल्कि मन और आत्मा तपे, ऐसा अंतरंग तप आभ्यंतर तप कहलाता है।

१. **प्रायश्चित्त :** किये हुए अपराध की शुद्धि करना अथवा जिससे मूल

चित्र : आभ्यंतर तप के छह प्रकार

गुण और उत्तर गुण विषयक अतिचारों की शुद्धि हो, वह प्रायश्चित्त तप कहलाता है। प्रायश्चित्त के १० भेद हैं, जिन्हें प्रश्नोत्तरी में व्याख्यायित किया गया है।

२. विनय : गुणवान्, ज्ञानवान् की भक्ति, बहुमान करना, या जिसके द्वारा आत्मा से कर्मरूपी मेल हटाया जाता है, वह विनय है। विनय तप के भी ७ भेद है - १. ज्ञान विनय, २. दर्शन विंनय, ३. चारित्र विनय, ४. मन विनय, ५. वचन विनय, ६. काय विनय, ७. उपचार विनय.

३. वेयावच्च : अर्थात् सेवाशुश्रूषा करना। गुरु, तपस्वी, रोगी, वृद्ध, नवदीक्षित, साधु की आहार-पानी-औषधी आदि से सेवा करना, उनके संयम पालन में सहायक बनना, आज्ञापालन से भक्ति-बहुमान करना, वैयावृत्त्य कहलाता है। आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, स्थविर, ग्लान (बीमार), शैक्षक (नवदीक्षित मुनि), साधर्मिक, कुल, गण, संघ, इन दस की यथायोग्य सेवा करना, वैयावृत्त्य तप है।

४. स्वाध्याय : ज्ञान प्राप्ति के लिये अस्वाध्याय काल एवं अनध्याय दिवसों को टालकर मर्यादापूर्वक शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन करना, स्वाध्याय तप है। इसके भी ५ भेद है –

१) **वांचना :** पढना और पढाना, वांचना कहलाती है।

२) **पृच्छना :** शंका का समाधान करना, पृच्छना कहलाती है।

३) **परावर्त्तना :** पढे हुए की पुनरावृत्ति करना, परावर्त्तना कहलाती है।

४) **अनुप्रेक्षा :** सीखे हुए सूत्र के अर्थ का बार-बार चिंतन-मनन करना, अनुप्रेक्षा है।

५) **धर्मकथा :** धर्मोपदेश करना धर्मकथा है।

५. ध्यान : एक लक्ष्य पर चित्त को एकाग्र करना ध्यान है। ध्यान के भी ४ भेद हैं -

१) **आर्त्तध्यान :** अनिष्ट वस्तु के वियोग की तथा इष्ट वस्तु के संयोग की कल्पना से मन में दुःखी-व्यथित होना आर्त्तध्यान है। अथवा अनिष्ट के संयोग में और इष्ट के वियोग में खिन्न, परेशान, दुःखी होना आर्त्तध्यान है।

२) **रौद्र ध्यान :** हिंसादि दुष्ट आचरण का चिंतन करना, दूसरों को मारने, पीटने, ठगने की भावना रौद्र ध्यान है।

३) **धर्मध्यान :** धर्म के स्वरूप का पर्यालोचन करना, निर्जरा के लिये शुभ आचरणादि को चिन्तवना धर्मध्यान है ।

४) **शुक्ल ध्यान :** पूर्व विषयक श्रुत के आधार से घाती कर्मों को नष्ट कर आत्मा को विशेष रूप से विशुद्ध, स्वच्छ बनाने वाला परम ध्यान शुक्लध्यान है ।

प्रस्तुत चार भेदों में पश्चात् के दो ध्यान आत्मशुद्धि कारक होने से उपादेय है । प्रथम दो ध्यान संसार वृद्धिकारक होने से निर्जरा तत्त्व में नहीं गिने गये हैं । उपरोक्त ध्यान के इन चारों भेदों के चार -चार प्रभेद हैं, जिन्हें प्रश्नोत्तरी में स्पष्ट किया गया है ।

६. **व्युत्सर्ग :** अर्थात् त्याग करना । इसका अपर नाम कायोत्सर्ग भी है । जिसमें काया का उत्सर्ग (त्याग) हो, वह कायोत्सर्ग है । अंत:करण से ममत्व रहित होकर आत्म सान्निध्य से परवस्तु का त्याग करना व्युत्सर्ग तप है । शरीर संबंधी समस्त संवेदनों से उपर उठकर आत्मध्यान में लीन-तल्लीन होना कायोत्सर्ग है ।

बाह्य व आभ्यन्तर तप रूप १२ भेद वाला निर्जरा तत्त्व अष्टकर्मरूपी काष्ट को भस्मीभूत करने में अग्नि के समान है । तप की अग्नि से समस्त कर्मपुद्गल जलकर राख हो जाते हैं, आत्मा से निर्जरित हो जाते हैं और आत्मा स्वर्णवत् शुद्ध, विशुद्ध कांति से निखर उठता है ।

बन्ध तत्त्व के ४ भेद

गाथा

पयइ सहावो वुत्तो, ठिइ कालावहारणं ।
अणुभागो रसो णेओ, पएसो दलसंचओ ॥३७॥

अन्वय

पयइ सहावो वुत्तो, कालावहारणं ठिइ, अणुभागो रसो णेओ, दलसंचओ पएसो ॥३७॥

संस्कृत पदानुवाद

प्रकृतिः स्वभावः उक्तः, स्थितिः कालावधारणं ।
अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसंचयः ॥३७॥

शब्दार्थ

पयइ - प्रकृति	**अणुभागो** - अनुभाग
सहावो - स्वभाव	**रसो** - रस
वुत्तो - कहा है	**णेओ** - जानना
ठिइ - स्थिति	**पएसो** - प्रदेश
कालावहारणं - काल का निश्चय	**दलसंचओ** - दलों का समूह है ।

भावार्थ

प्रकृति स्वभाव है । काल का अवधारण (निश्चय) स्थिति है । अनुभाग रस है तथा दलों का समूह प्रदेश है ॥३७॥

विशेष विवेचन

३४वीं गाथा में बंध तत्त्व के जिन ४ भेदों का नामोल्लेख किया गया था, प्रस्तुत गाथा में उन्हीं ४ भेदों के स्वरूप का विवेचन है ।

बंध : जीवात्मा का मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग के निमित्त से कर्म पुद्गलों को ग्रहण कर नीर-क्षीरवत् आत्मप्रदेशों के साथ परस्पर संबंध होना, बंध कहलाता है ।

१. प्रकृतिबंध : ८ कर्मों के स्वभाव को प्रकृति बंध कहते है । जैसे कोई कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को आवृत्त करता है, तो कोई दर्शन गुण को । एक मोदक के दृष्टान्त से भी हम इन चारों बंध के स्वरुप को समझ सकते हैं । जैसे कोई लडडू पित्त को दूर करता है तो कोई कफ का शमन करता है । उसी प्रकार ८ कर्म के बन्धकाल में एक समय में कर्म के जो भिन्न-भिन्न स्वभाव नियत होते हैं, उसे प्रकृति बंध कहते हैं ।

२. स्थिति बंध : आठ कर्मों की स्थिति निश्चित होना, स्थिति बंध कहलाता है । जिस समय कर्म का बन्ध होता है, उसी समय 'यह कर्म इतने काल तक आत्म प्रदेशों के साथ रहेगा' ऐसा निर्धारण भी हो जाता है । जैसे कोई लड्डू एक मास तक ठीक रहता है, तो कोई १५ दिन के बाद विकृत होता है । ठीक वैसे ही कोई कर्म २० कोडाकोडी सागरोपम तो कोई ३३ सागरोपम तक जीव के साथ स्व-स्वरुप में कायम रहता है ।

चित्र : कर्मबंध के चार प्रकार

३. अनुभाग बन्ध : जीव द्वारा ग्रहण किये हुए कर्मपुद्गलों में शुभाशुभ फल देने की न्यूनाधिक शक्ति अनुभाग बन्ध है, जिसे रसबन्ध भी कहते हैं। जीव जिस समय कर्मपुद्गलों का बन्ध करता है, उसकी शुभाशुभ अवस्था भी उसी समय निश्चित हो जाती है। इसलिये शुभाशुभ तथा तीव्र-मन्द का बंध समय में जो नियत होता है, वही अनुभाग (रस) बंध है। जैसे कोई लड्डू अधिक मीठा और कोई लड्डू कम मीठा होता है, वैसे ही कर्मबन्ध में तीव्र-मन्दादि रस पडता है।

४. प्रदेश बंध : जैसे कोई लड्डू ५० ग्राम तो कोई १०० ग्राम का होता है, उसी प्रकार कोई कर्म अधिक दलिकों वाला है, तो कोई अल्पदलिकों वाला है। प्रत्येक कर्म के प्रदेशों की संख्या समान नहीं होती। आयु के सबसे अल्प, नाम-गोत्र के उससे विशेष, किन्तु परस्पर तुल्य, ज्ञान-दर्शन तथा अन्तराय के उससे विशेष, परन्तु परस्पर तुल्य, मोहनीय के उससे विशेष तथा वेदनीय के सबसे विशेष प्रदेशों का बंध होता है।

उपरोक्त चारों प्रकार के बन्ध, बन्ध के समय समकाल में ही बन्धते हैं, अनुक्रम से नहीं। प्रकृति बंध तथा प्रदेश बंध का कारण मन, वचन तथा काया के योग है। स्थिति या रस बंध का कारण कषाय अर्थात् क्रोध-मान-माया-लोभ तथा राग-द्वेष के निमित्त है।

८ कर्मों का स्वभाव

गाथा

पड-पडिहार-ऽसि, मज्ज, हड-चित्त कुलाल भंडगारीणं।
जह एएसिंभावा, कम्माण वि जाण तहभावा ॥३८॥

अन्वय

पड-पडिहार-असि-मज्ज-हड-चित्त कुलाल-भंडगारीणं, जह एएसिं भावा, कम्माण वि तह भावा जाण ॥३८॥

संस्कृत पदानुवाद

पटप्रतिहारासिमद्य, हडिचित्रकुलाल भाण्डागारिणाम्।
यथैतेषां भावाः, कर्मणामपि जानीहि तथा भावाः ॥३८॥

शब्दार्थ

पड - पट्टी	**जह** - यथा, जैसे
पडिहार - प्रतिहार (द्वारपाल)	**एएसिं** - इनका
असि - तलवार	**भावा** - स्वभाव है।
मज्ज - शराब (मदिरा)	**कम्माण** - कर्मों का
हड - बेडी	**वि** - भी
चित्त - चित्रकार	**जाण** - जानो
कुलाल - कुम्हार	**तह** - तथा (वैसा ही)
भंडगारीणं - भंडारी	**भावा** - स्वभाव

भावार्थ

पट्टी, द्वारपाल, तलवार, मदिरा, बेडी, चित्रकार, कुम्हार तथा भंडारी जैसे स्वभाव वाले होते हैं, इन ज्ञानावरणीयादि आठों कर्मों का भी वैसा ही स्वभाव जानो ॥३८॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में ८ कर्मों के स्वभाव का वर्णन किया गया है। राग-द्वेष के निमित्त से कार्मण वर्गणा के पुद्गल जब जीव के साथ बंधते हैं, उसे कर्म कहते है।

१. ज्ञानावरणीय कर्म : जो आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करे, वह ज्ञानावरणीय कर्म है। इस कर्म का स्वभाव ज्ञान गुण को आवृत्त करना है। जिस प्रकार आंख पर पट्टी बांधने पर दिखना बंद हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म जीव के अनंतज्ञान गुण पर आवृत्त हो जाता है और वह वस्तु के विशेष गुण को नहीं जान पाता है।

२. दर्शनावरणीय कर्म : जो कर्म जीव के दर्शन गुण को आच्छादित करें, वह दर्शनावरणीय कर्म है। इस कर्म को द्वारपाल की उपमा दी गयी है। जिसप्रकार द्वारपाल के द्वारा रोके जाने पर मनुष्य राजा को मिलने की इच्छा होने पर भी उनसे मिल नहीं सकता। वैसे ही जीव चक्षु के द्वारा बहुत दूर की वस्तु देखने की इच्छा होने पर भी इस कर्म के आवरण से देख नहीं सकता और इन्द्रियों के विषय को नहीं जान सकता। यह कर्म जीव के अनंतदर्शन गुण का घात करता है।

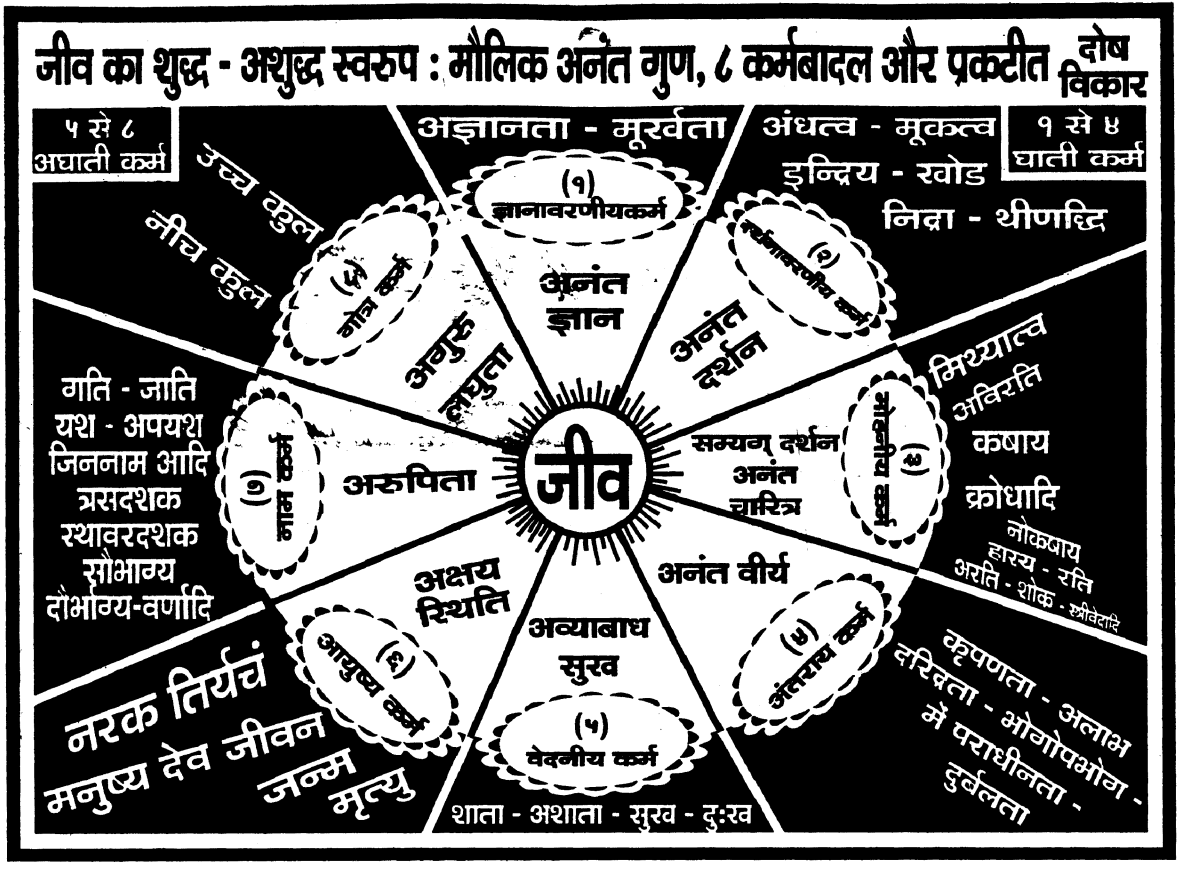
जीव का शुद्ध - अशुद्ध स्वरुप : मौलिक अनंत गुण, ८ कर्मबादल और प्रकटीत दोष विकार
५ से ८ अघाती कर्म
१ से ४ घाती कर्म
अज्ञानता - मूर्खता
अंधत्व - मूकत्व
इन्द्रिय - खोड
निद्रा - थीणद्धि
उच्च कुल
नीच कुल
(१) ज्ञानावरणीयकर्म
(२) दर्शनावरणीय कर्म
(३) गोत्र कर्म
अनंत ज्ञान
अनंत दर्शन
अगुरु लघुता
मिथ्यात्व
अविरति
कषाय
क्रोधादि
नोकषाय
हास्य - रति
अरति - शोक - स्त्रीवेदादि
(४) मोहनीय कर्म
सम्यग् दर्शन
अनंत चारित्र
गति - जाति
यश - अपयश
जिननाम आदि
त्रसदशक
स्थावरदशक
सौभाग्य
दौर्भाग्य-वर्णादि
(७) नाम कर्म
अरुपिता
जीव
अक्षय स्थिति
अनंत वीर्य
(८) आयुष्य कर्म
(५) अंतराय कर्म
अव्याबाध सुख
(६) वेदनीय कर्म
नरक तिर्यंच
मनुष्य देव जीवन
जन्म
मृत्यु
शाता - अशाता - सुख - दुःख
कृपणता - अलाभ
दरिद्रता - भोगोपभोग -
में पराधीनता -
दुर्बलता

३. वेदनीय कर्म : जीव को सुख-दुःख देने के स्वभाव वाला कर्म वेदनीय है। यह कर्म दो प्रकार का है - शाता तथा अशाता। सुख का अनुभव शाता वेदनीय है तथा दुःख का अनुभव अशाता वेदनीय है। जैसे तलवार की धार पर लिपटी हुई शहद चाटने पर तो मीठी लगती है किन्तु उसकी तेज धार से जिह्वा कट जाती है। उसी प्रकार सांसारिक सुख भोगते समय तो बहुत आनंद आता है पर कर्म उदय में आने पर कटु फल भोगना पडता है। यह कर्म जीव के अनंत अव्याबाध सुख को आवृत्त करता है।

४. मोहनीय कर्म : जो कर्म आत्मा को मूढ बनाकर स्व-पर तथा हिताहित का विवेक नष्ट कर देता है, सदाचरण में बाधक तथा दुराचरण में प्रेरक बनता है, वह मोहनीय कर्म है। जैसे मदिरा पीकर व्यक्ति ज्ञानशून्य तथा विवेकशून्य हो जाता है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से जीव धर्म-अधर्म का भेद नहीं कर पाता है। इस कर्म का स्वभाव जीव के क्षायिक सम्यक्त्व तथा अनन्त-चारित्र गुण का घात करता है।

५. आयुष्य कर्म : जिस धर्म के उदय से प्राणी किसी शरीर में अमुक अवधि तक जीवित रहता है, वह आयुष्य कर्म है। इसका स्वभाव बेडी जैसा है, जो जीव को नियत समय तक नरकादि गतियों में रहने की इच्छा न होते हुए भी रोककर रखता है। इस कर्म के कारण जीव अपराधी बनकर अमुककाल तक उस बेडी से बंधा रहता है। यह कर्म जीव की अक्षयस्थिति को रोकता है।

६. नाम कर्म : जिस कर्म के उदय से जीव नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देवादि गति-जाति-शरीर में नाना पर्यायों का अनुभव करें, वह नामकर्म है। जैसे निपुण चित्रकार अपनी कुशलकला से विविध प्रकार के सुंदर चित्र बनाता है तो कुरुप भद्दे चित्र भी बना देता है, उसी प्रकार नाम कर्म भी अनेक रुप-रंग-आकृति वाले देव-मनुष्यादि प्राणियों के शरीर की रचना करता है। यह कर्म जीव के अरुपीगुण को आवृत्त करता है।

७. गोत्र कर्म : जो कर्म आत्मा को ऊँच-नीच कुल में उत्पन्न करावे, वह गोत्र कर्म है। जैसे कुम्हार कुंभस्थापना के लिये उत्तम घडे बनाता है, जो अक्षत-चन्दनादि से पूजे जाते हैं तथा कुछ ऐसे घडे बनाता है, जिसमें मदिरा

आदि घृणित वस्तुएँ डाली जाती है। वैसे ही यदि जीव उच्चकुल-जाति में जन्म लेता है, तो वह उच्चगोत्र कहलाता है। तथा कसाई-भंगी आदि नीच कुल में जन्म लें, वह नीच गोत्र कहलाता है। इस कर्म का स्वभाव जीव के अगुरुलघु गुण को आवृत्त करना है।

८. अन्तराय कर्म : यह कर्म भंडारी के समान है। जैसे राजा अथवा सेठ दान देना चाहता है परन्तु यदि तिजोरी का हिसाब-किताब रखने वाला भंडारी-खजांची खजाने में घाटा या कमी बतलाकर इंकार कर दें, तो राजा इच्छा होने पर भी दान नहीं दे पाता है। इसी प्रकार जीव का स्वभाव भी अनन्त-दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य लब्धिवाला है परंतु अन्तराय कर्म के उदय से जीव का यह स्वभाव प्रकट नहीं हो पाता।

कर्म की ८ मूल तथा १५८ उत्तर प्रकृतियाँ

गाथा

इह नाणदंसणावरण, वेय मोहाउ नाम गोआणि।
विग्घं च पण-नव-दु-अट्ठवीस चउ-ति-सय-दु-पणविहं ॥३९॥

अन्वय

इह पण नव दु अट्ठबीस चउ तिसय दु-पणविहं, नाण दंसणावरण वेय मोह आउ नाम गोआणि च विग्घं ॥३९॥

संस्कृत पद्यानुवाद

अत्र ज्ञान दर्शनावरण वेद्यमोहायुर्नाम गोत्राणि।
विघ्नं च पंच-नव द्वयष्टाविंशति चतुस्त्रिंशत् द्वि पंचविधम् ॥३९॥

शब्दार्थ

इह - यहाँ	**नाम** - नाम
नाण - ज्ञानावरणीय	**गोआणि** - गोत्र
दंसणावरण - दर्शनावरणीय	**विग्घं** - अंतराय (विघ्न)
वेय - वेदनीय	**च** - और
मोह - मोहनीय	**पण** - पांच
आउ - आयुष्य	**नव** - नौ

दु - दो	**तिसय** - एक सौ तीन
अट्ठवीस - अठ्ठाईस	दु - दो
चउ - चार	**पणविहं** - पांच (प्रकार है)

भावार्थ

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र तथा अंतराय कर्म क्रमशः पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, एक सौ तीन, दो तथा पाँच भेद वाले हैं ॥३९॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में आठों कर्मों की भेद-प्रभेद सहित १५८ प्रकृतियों का संख्या निर्देश है। इन समस्त प्रकृतियों का वर्णन-विश्लेषण हम पुण्य तथा पाप तत्त्व के भेदों में कर आये हैं।

पुण्य तत्त्व के ४२ तथा पाप तत्त्व के ८२, ऐसे कुल दोनों के १२४ भेद होते हैं। इन दोनों तत्त्वों के वर्णन में वर्णचतुष्क को गिना गया है। इसे एक ही बार गिनने पर १२० प्रकृतियाँ होती है। वर्णचतुष्क के १६ उत्तरभेद जोडने पर १३६ कर्म प्रकृतियाँ होती है। नामकर्म में शरीर के ५ भेद गिनाये हैं, इनके साथ १५ बंधन तथा ५ संघातन ऐसे २० भेद १३६ में जोडने पर १३६ + २० = १५६ तथा मोहनीय कर्म के सम्यक्त्व मोहनीय तथा मिश्र मोहनीय, ये २ भेद जोडने पर कुल १५८ प्रकृतियाँ होती हैं। इस गिनती से मोहनीय कर्म में २ प्रकृतियाँ बढने से २६ की जगह २८ तथा नाम कर्म की ६७ की जगह १०३ कर्म प्रकृतियाँ होती है।

ज्ञानावरणीय -	५
दर्शनावरणीय -	९
वेदनीय -	२
मोहनीय -	२८
आयुष्य -	४
नाम -	१०३
गोत्र -	२
अंतराय -	५
कुल प्रकृतियाँ	**१५८**

८ कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति

गाथा

नाणे य दंसणावरणे, वेयणिए चेव अंतराए अ ।
तीसं कोडाकोडी, अयराणं ठिइ अ उक्कोसा ॥४०॥
सत्तरि कोडाकोडी, मोहणीए वीस नाम गोएसु ।
तित्तीसं अयराइं, आउ ठिइ बंध उक्कोसा ॥४१॥

अन्वय

नाणे य दंसणावरणे, वेयणिए च एव अंतराए अ, उक्कोसा ठिइ अयराणं, तीसं कोडाकोडी ॥४०॥
मोहणीए सत्तरि, नामगोएसु वीस कोडाकोडी, उक्कोसा आउ ठिइ, बंध तित्तीसं अयराइं ॥४१॥

संस्कृत पदानुवाद

ज्ञाने च दर्शनावरणे, वेदनीये चेवान्तराये च ।
त्रिंशत्कोटीकोट्योऽतरणां, स्थितिश्चोत्कृष्टा ॥४०॥
ससति कोटी कोट्य, मोहनीये विंशतिर्नाम गोत्रयोः ।
त्रयस्त्रिंशदतराण्यायुः, स्थितिबन्ध उत्कर्षात् ॥४१॥

शब्दार्थ

नाणे - ज्ञानावरणीय	**अ** - और
य - और	**तीसं कोडाकोडी** - तीस कोटाकोटी
दंसणावरणे - दर्शनावरणीय	**अयराणं** - सागरोपम
वेयणिए - वेदनीय	**ठिइ** - स्थिति
चेव - निश्चय से	**अ** - और
अंतराए - अंतराय	**उक्कोसा** - उत्कृष्ट

शब्दार्थ

सत्तरि - ७० (सत्तर)	**मोहणीए** - मोहनीय का
कोडाकोडी - कोडाकोडी	**वीस** - बीस

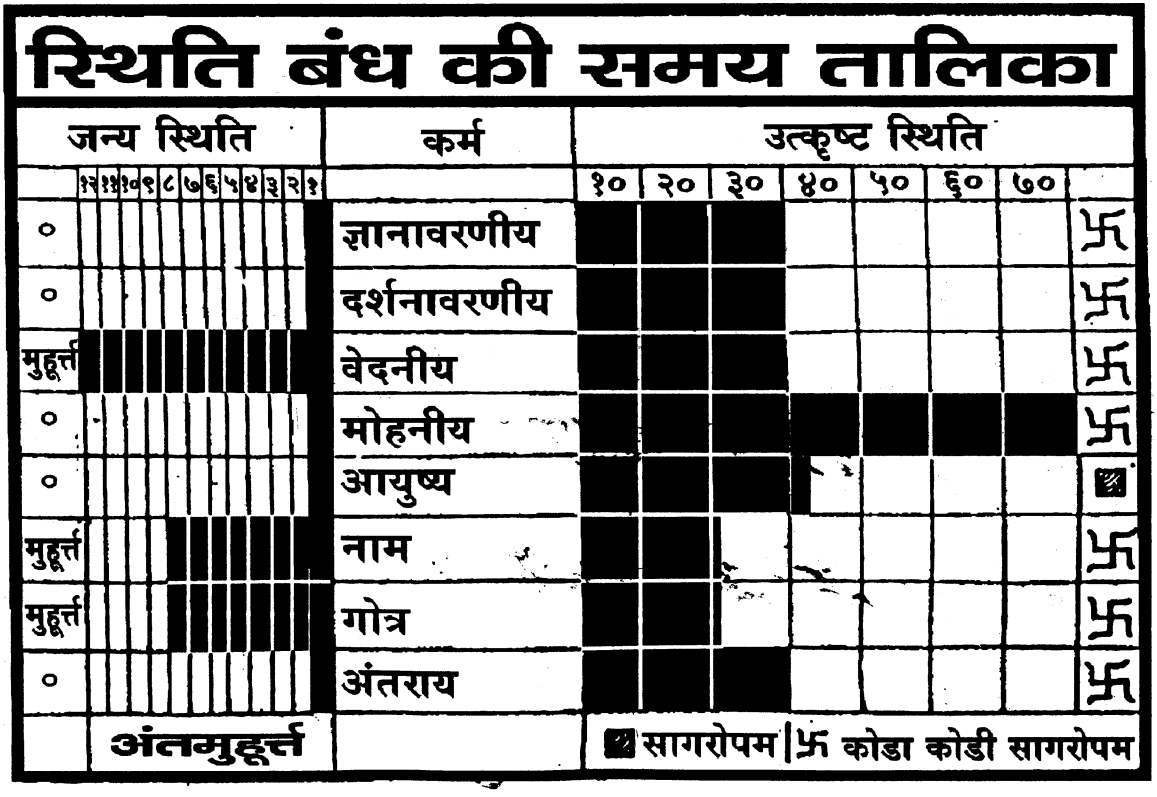
स्थिति बंध की समय तालिका
जन्य स्थिति
कर्म
उत्कृष्ट स्थिति
१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १
१० २० ३० ४० ५० ६० ७०
० ज्ञानावरणीय
० दर्शनावरणीय
मुहूर्त्त वेदनीय
० मोहनीय
० आयुष्य
मुहूर्त्त नाम
मुहूर्त्त गोत्र
० अंतराय
अंतमुहूर्त्त
सागरोपम | 卐 कोडा कोडी सागरोपम

नाम - नाम (तथा)	**आउ** - आयुष्य का
गोएसु - गोत्र का	**ट्ठिइबंध** - स्थिति बंध
तित्तीसं - तैंतीस (३३)	**उक्कोसा** - उत्कृष्ट से
अयराइं - सागरोपम	

भावार्थ

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय तथा अंतराय, इन चारों का उत्कृष्ट स्थिति बंध ३० कोडाकोडी सागरोपम है ॥४०॥

मोहनीय कर्म का ७० कोडाकोडी, नाम तथा गोत्र का २० कोडाकोडी एवं आयुष्य का ३३ सागरोपम का उत्कृष्ट स्थितिबंध है ॥४१॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का उल्लेख है ।

करोड को करोड से गुणा करने पर जो संख्या आती है, उसे कोडाकोडी कहते हैं ।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय तथा अंतराय, इन चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति ३० कोडाकोडी सागरोपम की है । मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम, नाम तथा गोत्र कर्म की २० कोडाकोडी सागरोपम व आयुष्य कर्म की ३३ सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है ।

जिस कर्म का जितने कोडाकोडी सागरोपम का बन्ध होता है, उस कर्म की उतने (प्रत्येक पर) १०० वर्ष की अबाधा (अनुदय अवस्था) होती है । जैसे ज्ञानावरणीय की स्थिति ३० कोडाकोडी सागरोपम है, तो प्रत्येक सागरोपम पर १०० वर्ष की अबाधा गिनने पर (३० x १०० = ३०००) तीन हजार वर्ष का अबाधा काल होता है । इतने वर्ष बीतने के बाद ज्ञानावरणीय कर्म उदय में आकर आत्मा से निर्जरित होता जाता है । आयुष्य के बिना सातों कर्मों की अबाधा स्थिति बंध के अनुसार न्यूनाधिक होती है, परंतु आयुष्य कर्म की अबाधा अनियमित होती है । उत्कृष्ट आयुष्य ३३ सागरोपम का है तथा आयुष्य का उत्कृष्ट स्थितिबंध पूर्व करोड का तीसरा भाग अधिक ३३ सागरोपम होता है । यानि उत्कृष्ट अबाधा काल अधिक होता है ।

आठ कर्मों का जघन्य स्थितिबन्ध

गाथा

बारस मुहुत्तं जहन्ना, वेयणिए अट्ठ नाम गोएसु ।
सेसाणंतमुहुत्तं, एयं बंधट्ठिइमाणं ॥४२॥

अन्वय

वेयणिए जहन्ना बारस, मुहुत्तं नाम गोएसु अट्ठ, सेसाणं अंतमुहुत्तं, एयं बंधट्ठिइमाणं ॥४२॥

संस्कृत पदानुवाद

द्वादश मुहूर्त्तानि जघन्या, वेदनीयेऽष्टौ नामगोत्रयोः
शेषाणामन्तर्मुहूर्त्त-मेतद् बंधस्थितिमानम् ॥४२॥

शब्दार्थ

बारस - बारह	**गोएसु** - गोत्र कर्म का
मुहुत्तं - मुहूर्त्त	**सेसाणं** - शेष (पाँच कर्मों) का
जहन्ना - जघन्य	**अन्तमुहुत्तं** - अन्तर्मुहूर्त्त
वेयणिए - वेदनीय कर्म का	**एयं** - यह
अट्ठ - आठ	**बंधट्ठिइ** - स्थिति बंध का
नाम - नाम कर्म का	**माणं** - प्रमाण है ।

भावार्थ

वेदनीय कर्म का जघन्य स्थिति बंध बारह मुहूर्त्त, नाम तथा गोत्र का आठ मुहूर्त्त और शेष पाँच कर्मों का जघन्य स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त्त है ॥४२॥

विशेष विवेचन

पूर्वोक्त गाथाओं में कर्म का स्वरूप तथा उनकी उत्कृष्ट स्थिति का विश्लेषण किया गया । प्रस्तुत गाथा में उन कर्मों की जघन्य स्थिति का उल्लेख है । जघन्य अर्थात् कम से कम । कोई भी कर्म जब आत्मा के साथ बंधता है, तो उसकी उत्कृष्ट या जघन्य स्थिति का निर्धारण उसी समय हो जाता है । गाथार्थ स्पष्ट है ।

नौ अनुयोग द्वार रूप मोक्ष के नौ भेद

गाथा

संतपय परूवणया, दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य ।
कालो अ अंतरं भाग, भावे अप्पाबहुं चेव ॥४३॥

अन्वय

संतपय परुवणया, दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य, कालो अ अंतरं भाग, भावे अप्पाबहुं चेव ॥४३॥

संस्कृत पदानुवाद

सत्पद प्ररूपणा, द्रव्य प्रमाणं च क्षेत्रं स्पर्शना च ।
कालाश्चान्तरं भागो, भावोऽल्पबहुत्वं चैव ॥४३॥

शब्दार्थ

संतपय - सत्पद (विद्यमान पद की)	**कालो** - काल
परूवणया - प्ररुपणा	**अ** - और
दव्वपमाणं - द्रव्य प्रमाण	**अंतरं** - अन्तर
च - और	**भाग** - भाग
खित्त - क्षेत्र	**भावे** - भाव
फुसणा - स्पर्शना	**अप्पाबहुं** - अल्पबहुत्व
य - और	**चेव** - निश्चय

भावार्थ

सत्पदप्ररूपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शना, काल, अन्तर, भाग, भाव, अल्पबहुत्व निश्चय से अनुयोगद्वार है ॥४३॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में ९ अनुयोग द्वारों की मीमांसा की गयी है। जैन सिद्धान्तों में पदार्थ का विचार करने के लिये, जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान करने के लिये उनकी शंकाओं के अनुकूल अलग-अलग मार्ग बतलाये हैं, उन्हें

अनुयोग द्वार कहते हैं ।

१. सत्पद प्ररुपणाद्वार : कोई भी पदवाला पदार्थ सत् (विद्यमान) है या असत् ? अर्थात् जगत् में उस पदार्थ का अस्तित्व है या नहीं । उसके विषय में प्ररूपणा करना, सत्पद प्ररूपणा है । जैसे मोक्ष या सिद्ध है या नहीं ? अगर है तो गति आदि १४ मार्गणाओं में से किस किस मार्गणा में यह मोक्षपद है ? उसके संबंध में प्ररूपणा-प्रतिपादन करना, सत्पद प्ररूपणा है ।

२. द्रव्य प्रमाणद्वार : वे पदार्थ जगत् में कितनें हैं, उसकी संख्या दिखाना-बताना अर्थात् सिद्ध के जीव कितने हैं, इनकी संख्या संबंधी विचारणा द्रव्यप्रमाण द्वार है ।

३. क्षेत्रद्वार : वह पदार्थ जगत् में कितने स्थान/क्षेत्र का अवगाहन करके रहता है, यह विचारणा क्षेत्रद्वार है ।

४. स्पर्शना द्वार : वह पदार्थ जिस क्षेत्र में रहता है, उस क्षेत्र में जितने आकाश प्रदेश है, उतने ही स्पर्श करके रहता है या अधिक ? इसकी व्याख्या स्पर्शना द्वार है ।

५. कालद्वार : उस पदार्थ की स्थिति कितने काल तक रहती है, इसका विचार करना कालद्वार है ।

६. अंतरद्वार : जो पदार्थ जिस रूप में है, वह पदार्थ उस स्वरूप से मिटकर दूसरे रूप में परिवर्तित हो पुनः असली या वास्तविक रूप में आता है कि नहीं, यह विचारना अन्तरद्वार है । अगर परिवर्तन होता है तो कितने समय बाद, यह विचार करना कालान्तर द्वार है ।

७. भागद्वार : उस पदार्थ की संख्या सजातीय शेष पदार्थों के कितनवें भाग में है, यह विचारणा भागद्वार है ।

८. भावद्वार : औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक तथा पारिमाणिक, इन पाँच भावों में वह पदार्थ किस भाव के अंतर्गत है, यह विचारना भावद्वार है ।

९. अल्पबहुत्व द्वार : उस पदार्थ के भेदों में परस्पर संख्या की हीनाधिकता को दिखाना अल्पबहुत्व द्वार है ।

सत्पद प्ररूपणा द्वार

गाथा

संतंसुद्धपयत्ता विज्जंतं, खकुसुम व्व न असंतं ।
मुक्खत्ति पयं तस्स उ, परूवणा मग्गणाइहिं ॥४४॥

अन्वय

संतं सुद्ध पयत्ता, विज्जंतं ख-कुसुम व्व न असंतं, मुक्खत्ति पयं, उ मग्गणाईहिं तस्स परुवणा ॥४४॥

संस्कृत पदानुवाद

सत् शुद्धपदत्वाद्विद्यमानं, ख-कुसुमवत् न असत् ।
'मोक्ष' इति पदं तस्य तु, प्ररूपणा मार्गणादिभिः ॥४४॥

शब्दार्थ

संतं - सत् (विद्यमान)	**मुक्ख** - मोक्ष
सुद्ध - शुद्ध - एक	**त्ति** - इति, यह
पयत्ता - पदरूप होने से	**पयं** - पद है
विज्जंतं - विद्यमान है	**तस्स** - उसकी
ख-कुसुमं - आकाश-पुष्प के	**उ** - तथा
व्व - समान	**परूपणा** - प्ररूपणा
न - नहीं	**मग्गणाइहिं** - मार्गणाओं के द्वारा
असंतं - असत् (अविद्यमान)	

भावार्थ

'मोक्ष' सत् है, शुद्ध पद होने से विद्यमान है, आकाश के फूल के समान अविद्यमान नहीं है। 'मोक्ष' इस प्रकार का पद है और मार्गणा आदि द्वारा इसकी विचार-प्ररूपणा होती है ॥४४॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में अनुयोग के ९ द्वारों में से प्रथम द्वार की विवेचना है।

इसमें मोक्ष की सत्ता के विषय प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं।

न्यायशास्त्र में किसी भी वस्तु को सिद्ध करने के लिये पांच अवयवों वाले वाक्यों का प्रयोग होता है, जिसे पंचावयव कहते हैं।

१. प्रतिज्ञा : इस अवयव में जिसमें और जिसको सिद्ध करना हो, वे दो पद होते हैं, इसको प्रतिज्ञा कहते हैं।

२. हेतु : इसमें सिद्ध करने का कारण दिया जाता है।

३. उदाहरण : जहाँ कारण या हेतु है, वहाँ कार्य अवश्य पाया जाता है, उसका दृष्टान्त उदाहरण कहलाता है।

४. उपनय : उदाहरण के अनुसार घटाने का हो, उसे उपनय कहते हैं।

५. निगमन : प्रतिज्ञा को जहाँ सिद्ध किया जाये या निष्कर्ष स्थापित किया जाये, उसे निगमन कहते हैं।

'मोक्ष' को पंचावयव के द्वारा इस प्रकार सिद्ध किया जाता है।

१) मोक्ष सत् (विद्यमान) है। (प्रतिज्ञा)

२) अर्थरुप शुद्ध पद होने से। (हेतु)

३) जो-जो अर्थरुप शुद्ध पद वाले होते हैं, वे सभी पदार्थ विद्यमान हैं, जैसे - जीव (उदाहरण)

४) मोक्ष भी अर्थरुप शुद्ध पद है। (उपनय)

५) अतः मोक्ष भी (विद्यमान) सत् है। (निगमन)

प्रस्तुत गाथा में 'पद' के साथ 'अर्थरुप शुद्ध' यह विशेषण है। अगर यह विशेषण नहीं होता तो डित्थ, कत्थ आदि कल्पित एक-एक पद वाले शब्द भी पदार्थ हो जाते। जो शब्द कल्पित-अर्थशून्य है, अथवा जिस शब्द की व्युत्पत्ति नहीं होती, वह पद नहीं हो सकता। जो सार्थक पद है, वही सत् है। मोक्ष चूंकि कल्पित नहीं बल्कि व्युत्पत्तिसिद्ध शब्द है, अतः यह पद है और शुद्ध पद है। मोक्ष सत् (विद्यमान) है। वह 'आकाश-पुष्प' की तरह अविद्यमान नहीं है। 'आकाश-पुष्प' यह दो शब्दों से निर्मित पद है, इसका अर्थ है - आकाश का फूल, जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। अलग अलग एक-एक पद की सत्ता तो है परन्तु सम्मिलित शब्दों (आकाश-पुष्प) की कोई सत्ता नहीं

है। यह अशुद्ध पद है। कुछ शब्द सम्मिलित होते हैं, वे शुद्ध नहीं होने पर भी उनकी सत्ता होती है - जैसे राजपुत्र। इसमे दो पद है, जो जुडे हुए है परंतु यह अशुद्ध पद है। शुद्ध पद वो है, जो अकेला है तथा अर्थ सहित है। मोक्ष यह अकेला, सार्थक व शुद्ध पद है, अतः इसका अस्तित्व है।

१४ मार्गणाएँ

गाथा

गइ इंदिए अ काए, जोए वेए कसाय नाणे अ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सन्नि आहारे ॥४५॥

अन्वय

गइ, इंदिए, काए, जोए, वेए, कसाय, नाणे, संजम, दंसण, लेसा, भव अ सम्मे, सन्नि अ आहारे ॥४५॥

संस्कृत पदानुवाद

गतिरिन्द्रियं च कायः, योगो वेदः कषायो ज्ञानं च।
संयमो दर्शनं लेश्या, भव्यः सम्यक्त्वं संज्ञ्याहारः ॥४५॥

शब्दार्थ

गइ - गति	**संजम** - संयम
इंदिए - इंद्रिय	**दंसण** - दर्शन
काए - काय (शरीर)	**लेसा** - लेश्या
जोए - योग	**भव** - भव्य
वेए - वेद	**सम्मे** - सम्यक्त्व
कसाय - कषाय	**सन्नि** - संज्ञी
नाणे - ज्ञान	**आहारे** - आहार
अ - और	

भावार्थ

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या,

भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी तथा आहार ये चौदह मार्गणाएँ है ॥४५॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में १४ मागणाओं का उल्लेख है। मार्गणा अर्थात् विवक्षित भाव का अन्वेषण - शोधन। किसी भी पदार्थ का विस्तार से विचार करने और समझने के लिये, उस पदार्थ के गहरे तत्त्व-रहस्य के स्वरूप की खोज करने के लिये इन १४ मार्गणाओं द्वारा विचार किया जाता है। इन १४ मार्गणाओं के कुल ६२ भेद हैं -

१. गति मार्गणा-४ : (१) देवगति, (२) मनुष्य गति, (३) तिर्यञ्चगति, (४) नरकगति।

२. इन्द्रिय मार्गणा-५ : (१) एकेन्द्रिय, (२) बेइन्द्रिय, (३) तेइन्द्रिय, (४) चतुरिन्द्रिय तथा (५) पंचेन्द्रिय।

३. काय मार्गणा-६ : (१) पृथ्वीकाय, (२) अप्काय, (३) तेउकाय, (४) वायुकाय, (५) वनस्पतिकाय, (६) त्रसकाय।

४. योग मार्गणा-३ : (१) मनोयोग, (२) वचनयोग, (३) काययोग।

५. वेद मार्गणा-३ : (१) स्त्रीवेद, (२) पुरुषवेद, (३) नपुंसकवेद।

६. कषाय मार्गणा-४ : (१) क्रोध, (२) मान, (३) माया, (४) लोभ।

७. ज्ञान मार्गणा-८ : (१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्यवज्ञान, (५) केवलज्ञान, (६) मतिअज्ञान, (७) श्रुतअज्ञान, (८) विभंगज्ञान (अवधि अज्ञान)।

८. संयम-चारित्र मार्गणा-७ : (१) सामायिक, (२) छेदोपस्थापनीय, (३) परिहार विशुद्धि, (४) सूक्ष्म संपराय, (५) यथाख्यात, (६) देशविरति तथा (७) अविरति।

९. दर्शन मार्गणा-४ : (१) चक्षुदर्शन, (२) अचक्षुदर्शन, (३) अवधि दर्शन, (४) केवलदर्शन।

१०. लेश्या मार्गणा-६ : (१) कृष्ण लेश्या, (२) नील लेश्या, (३) कापोत लेश्या, (४) पीत लेश्या, (५) पद्म लेश्या, (६) शुक्ल लेश्या।

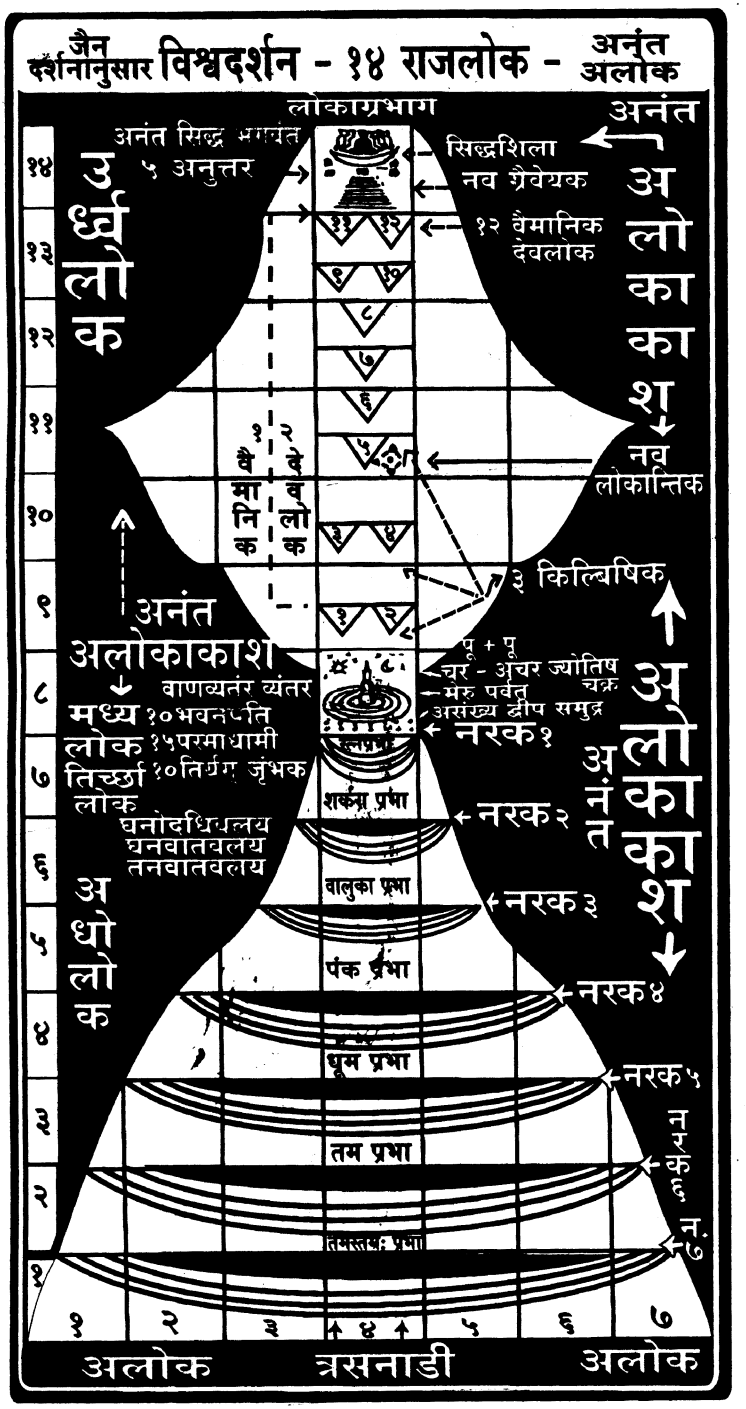
जैन दर्शनानुसार विश्वदर्शन - १४ राजलोक - अनंत अलोक
लोकाग्रभाग
अनंत
अनंत सिद्ध भगवंत
५ अनुत्तर
सिद्धशिला
नव ग्रैवेयक
१२ वैमानिक देवलोक
ऊर्ध्व लोक
अलोकाकाश
नव लोकान्तिक
वैमानिक देवलोक
३ किल्बिषिक
अनंत अलोकाकाश
पृ + पृ
चर - अचर ज्योतिष चक्र
मेरु पर्वत
असंख्य द्वीप समुद्र
वाणव्यंतर व्यंतर
मध्य लोक
१० भवनपति
१५ परमाधामी
तिर्च्छा लोक
१० तिर्यग् जृंभक
नरक १
रत्नप्रभा
शर्कराप्रभा
नरक २
वालुका प्रभा
नरक ३
पंक प्रभा
नरक ४
धूम प्रभा
नरक ५
तम प्रभा
नरक ६
तमस्तम प्रभा
नरक ७
घनोदधिवलय
घनवातवलय
तनवातवलय
अधो लोक
अलोकाकाश
अलोक
त्रसनाडी
अलोक

११. भव्य मार्गणा-२ : (१) भव्य, (२) अभव्य ।

१२. सम्यक्त्व मार्गणा-६ : (१) औपशमिक, (२) क्षायोपशमिक, (३) क्षायिक, (४) मिश्र, (५) सास्वादन, (६) मिथ्यात्व ।

१३. संज्ञी मार्गणा-२ : (१) संज्ञी, (२) असंज्ञी ।

१४. आहार मार्गणा-२ : (१) आहार, (२) अनाहार ।

इन ६२ मार्गणाओं का अर्थ प्रश्नोत्तरी में विस्तृत रूप से स्पष्ट किया गया है ।

किन मार्गणाओं में मोक्ष की प्ररूपणा

गाथा

नरगइ पणिंदि तस भव, सन्नि अहक्खाय खइअ सम्मत्ते ।
मुक्खोऽणाहार केवल, दंसणनाणे न सेसेसु ॥४६॥

अन्वय

नरगइ, पणिंदि-तस-भव-सन्नि-अहक्खाय-खइअ-सम्मत्ते, अणाहार, केवल-दंसण नाणे, मुक्खो सेसेसु न ॥४६॥

संस्कृत पदानुवाद

नरगति-पंचेन्द्रिय-त्रस-भव्य-संज्ञि-यथाख्यात-क्षायिक-सम्यक्त्वे ।
मोक्षोऽनाहार-केवल-दर्शन-ज्ञाने न शेषेषु ॥४६॥

शब्दार्थ

नरगइ - मनुष्य गति	**मुक्खो** - मोक्ष
पणिंदि - पंचेन्द्रिय जाति	**अणाहार** - अनाहार
तस - त्रसकाय	**केवल-दंसण** - केवलदर्शन
भव - भव्य	**नाणे** - केवलज्ञान
सन्नि - संज्ञी	**न** - नहीं
अहक्खाय - यथाख्यात चारित्र	**सेसेसु** - शेष (मार्गणाओं) में
खइअसम्मत्ते - क्षायिक सम्यक्त्व	

भावार्थ

मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, भव्य, संज्ञी, यथाख्यात

मोक्ष की १० मार्गणा

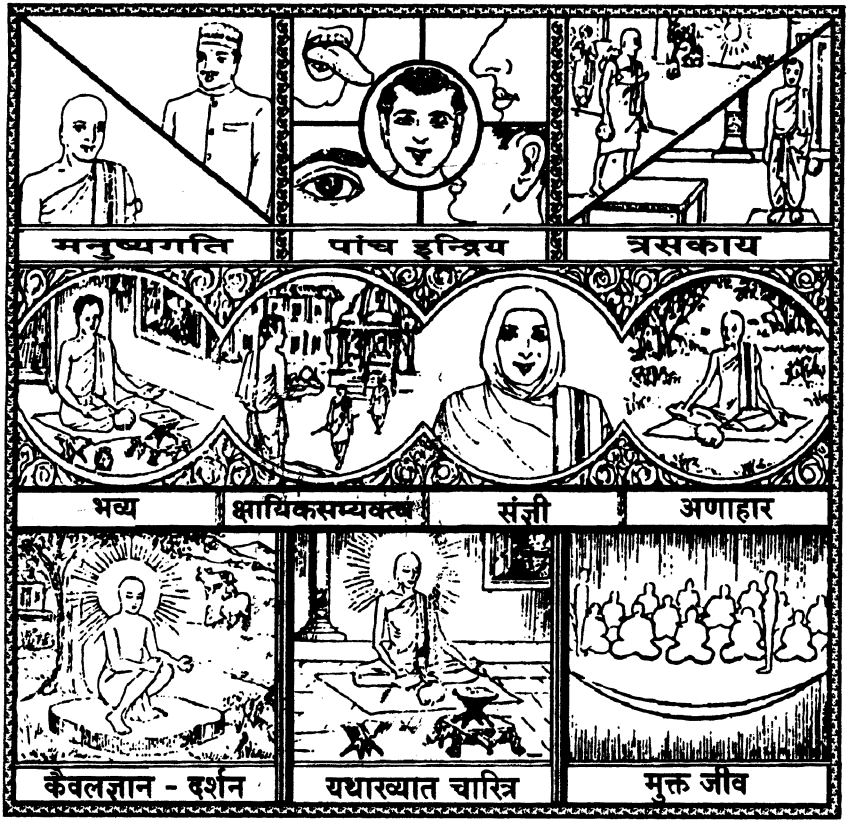
मनुष्यगति
पांच इन्द्रिय
त्रसकाय
भव्य
क्षायिकसम्यक्त्व
संज्ञी
अणाहार
कैवलज्ञान - दर्शन
यथाख्यात चारित्र
मुक्त जीव

चारित्र, क्षायिक सम्यक्त्व, अनाहार, केवलदर्शन, केवलज्ञान, इन (१० मार्गणाओं में ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है) से शेष मार्गणाओं में मोक्ष नहीं है ॥४६॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में केवल उन मार्गणा के भेदों का उल्लेख है, जिनसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। उपरोक्त १० मार्गणाएँ श्रेष्ठ हैं, क्योंकि मोक्षप्राप्ति में मुख्य कारणभूत है। शेष कषाय, वेद, योग तथा लेश्या, इन मार्गणाओं से मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि अकषायी, अवेदी, अयोगी, अलेशी जीव ही मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी है। अर्थात् - ४ मूल तथा ५२ उत्तर मार्गणाओं में मोक्ष की विचारणा घटित नहीं होती।

द्रव्यप्रमाण तथा क्षेत्रद्वार का कथन

गाथा

दव्वपमाणे सिद्धाणं, जीव दव्वाणि हुंति णंताणि।
लोगस्स असंखिज्जे, भागे इक्को य सव्वेवि ॥४७॥

अन्वय

सिद्धाणं दव्वपमाणे, अणंताणि हुंति जीव दव्वाणि, लोगस्स असंखिज्जे, भागे इक्कोय सव्वेवि ॥४७॥

संस्कृत पदानुवाद

द्रव्यप्रमाणे सिद्धानां, जीवद्रव्याणि भवन्त्यनन्तानि।
लोकस्यासंख्ये भागे, एकश्च सर्वेऽपि ॥४७॥

शब्दार्थ

दव्वपमाणे - द्रव्यप्रमाणद्वार	**असंखिज्जे** - असंख्यातवें
सिद्धाणं - सिद्धों के	**भागे** - भाग में
जीवदव्वाणि - जीवद्रव्य	**इक्को** - एक
हुंति - होते हैं	**य** - और
अणंताणि - अनन्त	**सव्वेवि** - सब भी
लोगस्स - लोक के	

भावार्थ

द्रव्यप्रमाणद्वार में सिद्ध परमात्मा के अनंत जीव हैं । एक सिद्ध परमात्मा तथा सभी सिद्ध परमात्मा लोकाकाश के असंख्यातवें भाग जितने क्षेत्र में रहते हैं ॥४७॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में दूसरे व तीसरे, इन २ द्वारों का विश्लेषण हैं –

२. द्रव्यप्रमाणद्वार : सिद्धों के अनन्त जीव हैं, क्योंकि जघन्य से एक समय के अन्तर में तथा उत्कृष्ट से छह मास के अन्तर में कोई न कोई जीव अवश्य मोक्ष में जाता है। एक समय में जघन्य से एक तथा उत्कृष्ट से १०८ जीव भी एक साथ मोक्ष में जा सकते हैं। अनन्तकाल में अनन्तजीव मोक्ष में गये हैं, अतः द्रव्य से सिद्ध के जीव अनन्त है।

३. क्षेत्रद्वार : सिद्ध के जीवों का क्षेत्र लोक का असंख्यातवाँ भाग जितना है क्योंकि एक सिद्ध की अवगाहना (देहमान) जघन्य से १ हाथ ४ अंगुल तथा उत्कृष्ट से एक कोस अर्थात् दो हजार धनुष का छट्ठा भाग यानी ३३३ धनुष ३२ अंगुल (१३३३ हाथ और ८ अंगुल) होती है। सिद्धशिला लोक के असंख्यातवें भाग जितना क्षेत्र है, इसलिये एक सिद्ध भी लोक के असंख्यातवें भाग में रहा हुआ है।

स्पर्शना, काल तथा अन्तर द्वार का विवेचन

गाथा

फुसणा अहिया कालो, इग सिद्ध पडुच्च साइओऽणंतो ।
पडिवाया भावाओ, सिद्धाणं अंतरं नत्थि ॥४८॥

अन्वय

फुसणा अहिया, इग सिद्ध पडुच्च साइओऽणंतो कालो, पडिवाया भावाओ, सिद्धाणं अंतरं नत्थि ॥४८॥

संस्कृत पदानुवाद

स्पर्शनाधिका कालः, एक सिद्धं प्रतीत्य साद्यनन्तः ।
प्रतिपाताऽभावतः, सिद्धानामन्तरं नास्ति ॥४८॥

शब्दार्थ

फुसणा - स्पर्शना	**पडिवाय** - प्रतिपात - पड जाने के (पुनः संसार में आने के)
अहिया - अधिक है	**अभावाओ** - अभाव से
कालो - काल है	**सिद्धाणं** - सिद्धों को
इग सिद्ध - एक सिद्ध की	**अंतरं** - अंतर
पडुच्च - अपेक्षा से	**नत्थि** - नहीं है।
साइओऽणंतो - सादि-अनन्त	

भावार्थ

(सिद्ध के जीव को क्षेत्र की अपेक्षा) स्पर्शना अधिक है, एक सिद्ध की अपेक्षा से सादि-अनन्तकाल है, प्रतिपात (संसार में पुनः पतन) का अभाव होने से सिद्धों में अन्तर नहीं है ॥४८॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में स्पर्शना, काल तथा अन्तर, इन तीन द्वारों की मीमांसा की गयी है –

४. स्पर्शना द्वार : सिद्ध जीवों की स्पर्शना क्षेत्र की अपेक्षा अधिक है। जीव जिस आकाशक्षेत्र में कर्ममुक्त होकर रहता है, उसका नाम सिद्धक्षेत्र है। उसका प्रमाण पैंतालीस लाख योजन लम्बा-चौडा है। सिद्ध जिस आकाश-प्रदेश में रहते हैं, उसकी चारों दिशाओं तथा उर्ध्व-अधो इन ६ दिशाओं में घेरे हुए एक-एक आकाश प्रदेश मिलाकर स्पर्श करनेवाले आकाश प्रदेश ६ है एवं जहाँ सिद्ध का जीव स्थित है, उसकी अवगाहना का एक प्रदेश मिलाकर कुल ७ आकाश प्रदेशों की स्पर्शना कहलाती है। इस प्रकार केवल सिद्ध को ही नहीं परन्तु परमाणु आदि प्रत्येक द्रव्य को स्पर्शना अधिक होती है।

५. कालद्वार : एक सिद्ध की अपेक्षा से विचार करने पर वह जीव जब मोक्ष में गया, वह काल उस सिद्ध की आदि है। फिर मोक्ष से वह जीव कभी इस संसार में नहीं आयेगा अर्थात् पुनरागमन नहीं होने से सिद्धावस्था अनंत है। इस प्रकार एक सिद्ध की अपेक्षा से आदि अनन्तकाल जाने। एवं अनंतसिद्ध जीवों की अपेक्षा से अनादि-अनंतकाल जाने। क्योंकि सबसे पहले कौन सिद्ध

अनेक जीव की दृष्टि से
अनादि
अनंत
क्षेत्र
एक जीव की दृष्टि से
अनंत
सादि

मोक्ष में गया ? यह प्रश्न निरुत्तर है। सदाकाल से जीव मोक्ष में जाते रहे हैं। इस प्रकार समस्त सिद्धों की अपेक्षा से अनादि - अनंतकाल जाने।

६. अन्तरद्वार : सिद्ध जीव अपनी स्वरूपावस्था से पतित होकर, दूसरी योनि धारण करने के बाद फिर सिद्ध हो, इसका नाम अंतर है। सिद्ध जीवों को अंतर (पतन) का अभाव है। उन्हें सिद्ध गति छोडकर दूसरी योनि में परस्पर क्षेत्रकृत अंतर भी नहीं है। क्योंकि जहाँ एक सिद्ध है, उसी के साथ उसी अवगाहना में अनेक सिद्ध हैं। अतः कालकृत तथा क्षेत्रकृत दोनों अंतर सिद्धों में नहीं है।

भाग तथा भावद्वार का कथन

गाथा

सव्वजियाणमणंते, भागे ते तेंसि दंसणं नाणं।
खइए भावे परिणामिए, अ पुण होइ जीवत्तं ॥४९॥

अन्वय

ते सव्व जियाणं अणंते भागे, तेंसि दंसणं नाणं खइए भावे, अपुण जीवत्तं परिणामिए होइ ॥४९॥

संस्कृत पदानुवाद

सर्वजीवानामनन्ते, भागे ते तेषां दर्शनं ज्ञानं।
क्षायिके भावे पारिणामिके, च पुनर्भवति जीवत्वम् ॥४९॥

शब्दार्थ

सव्व - सर्व	**खइए** - क्षायिक
जियाणं - जीवों के	**भावे** - भाव है
अणंते - अनन्तवें	**परिणामिए** - पारिणामिक
भागे - भाग में है	**अ** - और
ते - वे (सिद्धजीव)	**पुण** - परन्तु
तेंसि - उन सिद्धों का	**होइ** - होता है
दंसणं - केवलदर्शन	**जीवत्तं** - जीवत्व
नाणं - केवलज्ञान	

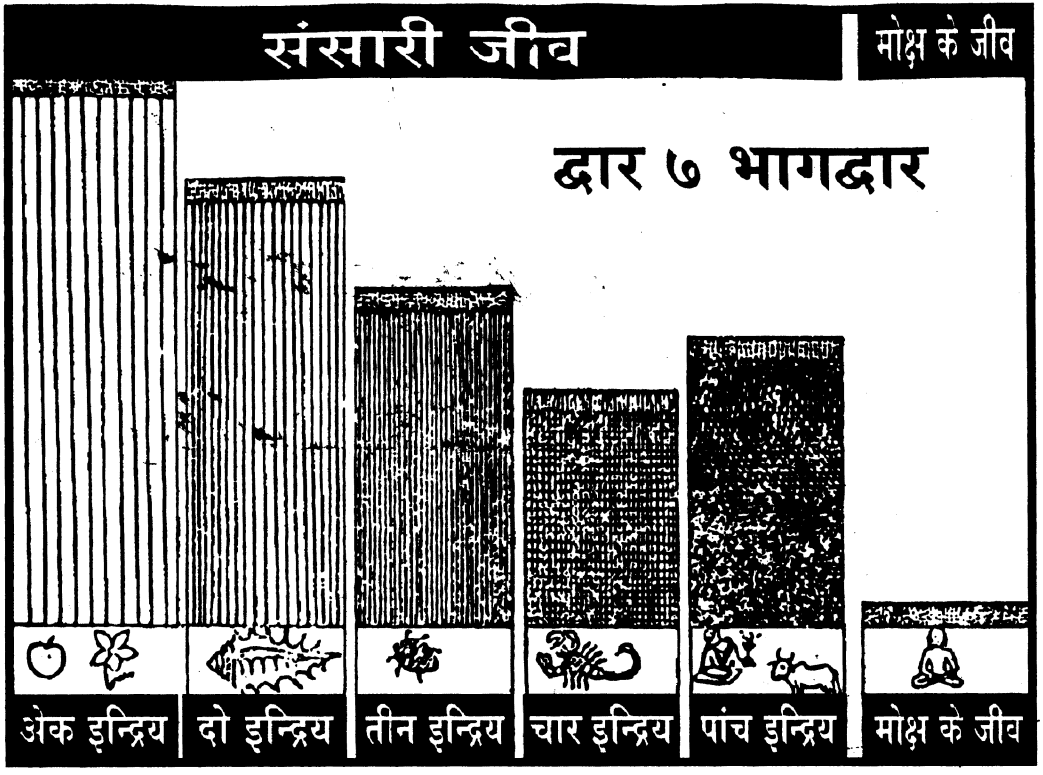

चित्र : जीवों में तारत्म्य भाव

भावार्थ

वे सब सिद्धों के जीव सर्व जीवों के अनंतवें भाग में है । उनका दर्शन और ज्ञान क्षायिक है और जीवत्व पारिणामिक भाव का है ॥४९॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में भाग तथा भाव, इन दो द्वारों का विश्लेषण है ।

७. भागद्वार : सिद्ध जीव - जो कि अभव्य से अनंतगुणा है, तब भी संसारी जीवों के अनंतवें भाग जितने ही हैं । निगोद के असंख्य गोले हैं । एक एक गोले में असंख्य निगोद तथा एक-एक निगोद में अनन्त-अनन्त जीव हैं । ऐसी एक ही निगोद के भी अनन्तवें भाग जितने तीनों (भूत-भविष्य-वर्तमान) काल के सब सिद्ध के जीव हैं । इसी नवतत्त्व की अंतिम ६० वीं गाथा में यही कहा गया है -

जइयाइ होइ पुच्छा, जिणाणमग्गम्मि उत्तरं तइआ ।
इक्कस्स निगोयस्स, अणंतभागो य सिद्धिगओ ॥

अर्थात् जिनेश्वर के मार्ग (शासन) में जब-जब जिनेश्वर को प्रश्न पूछा जाता है, तब तब यही उत्तर होता है कि एक निगोद का अनंतवां भाग ही मोक्ष में गया है ।

८. भावद्वार : इसके ५ भेद हैं - औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक तथा पारिणामिक । सिद्ध के जीवों में दो भाव है - क्षायिक तथा पारिणामिक । कर्मक्षय से उत्पन्न होने वाले भाव को क्षायिक तथा वस्तु के अनादि (स्वाभाविक स्वभाव) (अकृत्रिम स्वभाव) को पारिणामिक भाव कहते हैं । केवलज्ञान-केवलदर्शन ये सिद्धों के क्षायिकभाव है और जीवत्व यह एक पारिणामिक भाव है । इन पाँच भावों के प्रभेद निम्न हैं –

१) औपशमिक भाव-२ : (१) सम्यक्त्व, (२) चारित्र ।

२) क्षायिकभाव-९ : (१) दान, (२) लाभ, (३) भोग, (४) उपभोग, (५) वीर्य, (६) केवलज्ञान, (७) केवलदर्शन, (८) सम्यक्त्व, (९) चारित्र ।

३) क्षायोपशमिक भाव-१८ : (१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्यवज्ञान, (५) मतिअज्ञान, (६) श्रुतअज्ञान, (७)

विभंगज्ञान, (८) चक्षुदर्शन, (९) अचक्षुदर्शन, (१०) अवधिदर्शन, (११-१५) दानादि ५ लब्धि, (१६) सम्यक्त्व, (१७) सर्वविरति, (१८) देशविरति ।

४) औदयिकभाव-२१ : (१-४) गति-४, (५-८) कषाय-४, (९-११) लिंग-३, (१२) मिथ्यात्व, (१३) अज्ञान, (१४) असंयम, (१५) संसारीपन, (१६-२१) लेश्या-६

५) पारिणामिक भाव-३ : (१) जीवत्व, (२) भव्यत्व, (३) अभव्यत्व ।

उपरोक्त भावों के ५३ भेदों में से सिद्ध परमात्मा में केवल ३ भेद ही घटित होते हैं । क्षायिक भाव नौ होने पर भी मूलगाथा में केवलज्ञान-दर्शन ये दो ही भाव सिद्ध परमात्मा को कहे हैं । यह आत्मा के ज्ञान-दर्शन गुण की मुख्यता से कहा है । दर्शन का अर्थ सम्यक्त्व भी ग्रहण किया जाता है । अतः प्रकारान्तर से क्षायिक सम्यक्त्व भी ग्रहण करने से ३ क्षायिकभाव कहे गये हैं । यहाँ ऐसा उल्लेख होने से दूसरे ६ भावों का निषेध नहीं समझना चाहिए । शास्त्रों में कहीं दो का तो कहीं ३, ५ या ९ भावों का भी ग्रहण किया गया है । साधुरत्न सूरिकृत नवतत्त्व की अवचूरी में क्षायिक ज्ञान तथा क्षायिक दर्शन ये दो ही भाव कहे है । ७ भावों का स्पष्ट निषेध है । नवांगी वृत्तिकार अभयदेवसूरि कृत नवतत्त्व भाष्य में तथा इसी भाष्य की श्री यशोविजयजी उपाध्याय कृत वृत्ति में, तत्त्वार्थ सूत्र, आचारांग निर्युक्ति एवं महाभाष्य में क्षायिक सम्यक्त्व सहित ३ भाव कहे हैं। शेष ६ का निषेध है। तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक तथा राजवार्तिक में क्षायिकवीर्य सहित ५ भाव कहे है परंतु कई आचार्य के मत में ९ ही भावों को सिद्ध परमात्मा में घटित किया है । यह सब अपेक्षाकृत विवेचन है । सिद्धों को पारिणामिक भाव में केवल जीवत्व ही घटित किया है । भव्यत्व नहीं । जो मोक्ष में जाने योग्य हो, उसे भव्य कहते हैं । सिद्ध परमात्मा तो मोक्ष में ही बिराजमान है, तब मोक्ष की योग्यता कैसे घट सकती है ? इस अपेक्षा से शास्त्रों में 'नो भव्वा नो अभव्वा' कहा है, अर्थात् सिद्ध परमात्मा न भव्य है, न अभव्य, यह वचन युक्तिपूर्वक समझ में आने योग्य है ।

चारित्र के ५ भेदों में से कोई भी चारित्र सिद्ध में नहीं है । जिसके द्वारा ८ कर्मों का क्षय करके मोक्ष में जाया जा सके, वह चारित्र है । चारित्र के व्युत्पत्तिपरक लक्षणों में से कोई भी लक्षण सिद्ध में घटित नहीं होता । अतः सिद्ध में क्षायिक चारित्र (यथाख्यात चारित्र) का भी अभाव है । सिद्धों में 'नो

चारित्ती नो अचारित्तीति' न चारित्र है, अचारित्र है। इसी प्रकार क्षायिक सम्यक्त्व की भी मीमांसा सिद्ध पद में नहीं है। क्योंकि वीतराग पर अखंड श्रद्धा ही सम्यक्त्व है। सिद्ध स्वयं वीतराग है। अगर उनमें अन्य किसी वीतराग पर श्रद्धा करने का आरोपण करे तो उनकी वीतरागता पर अपूर्णता की दोषापत्ति आ पडेगी। जो स्वयं प्रकाशमान है, उसे किसी अन्य प्रकाश की क्या आवश्यकता है ? अतः सिद्ध में क्षायिक सम्यक्त्व भी घटित नहीं होता।

इस प्रकार शास्त्र का विसंवाद भी हमें अपेक्षावाद से समझना चाहिए।

अल्पबहुत्व द्वार कथन

गाथा

थोवा नपुंस-सिद्धा, थी नर सिद्धा कमेण संखगुणा।
इअ मुक्खतत्तमेअं, नवतत्ता लेसओ भणिया ॥५०॥

अन्वय

नपुंस सिद्धा थोवा, थी नरसिद्धा कमेण संखगुणा, इअ मुक्ख तत्तं एअं, नवतत्ता लेसओ भणिया ॥५०॥

संस्कृत पदानुवाद

स्तोका नपुंसक सिद्धाः, स्त्री नर सिद्धाः क्रमेण संख्य गुणाः।
इति मोक्ष तत्त्वमेतन्नवतत्त्वानि लेशतो भणितानि ॥५०॥

शब्दार्थ

थोवा - थोडे हैं	**संखगुणा** - संख्यात गुणा
नपुंस - नपुंसकलिंग से	**इअ** - ये
सिद्धा - सिद्ध	**मुक्खतत्तं** - मोक्षतत्त्व
थी - स्त्रीलिंग से	**एअं** - इस प्रकार से
नर - पुरूषलिंग से	**नवतत्ता** - नवतत्त्व
सिद्धा - सिद्ध	**लेसओ** - लेश (संक्षेप) से
कमेण - अनुक्रम से	**भणिआ** - कहे गये हैं।

भावार्थ

नपुंसकलिंग से थोडे सिद्ध हैं। उससे स्त्रीलिंग तथा पुरुषलिंग सिद्ध

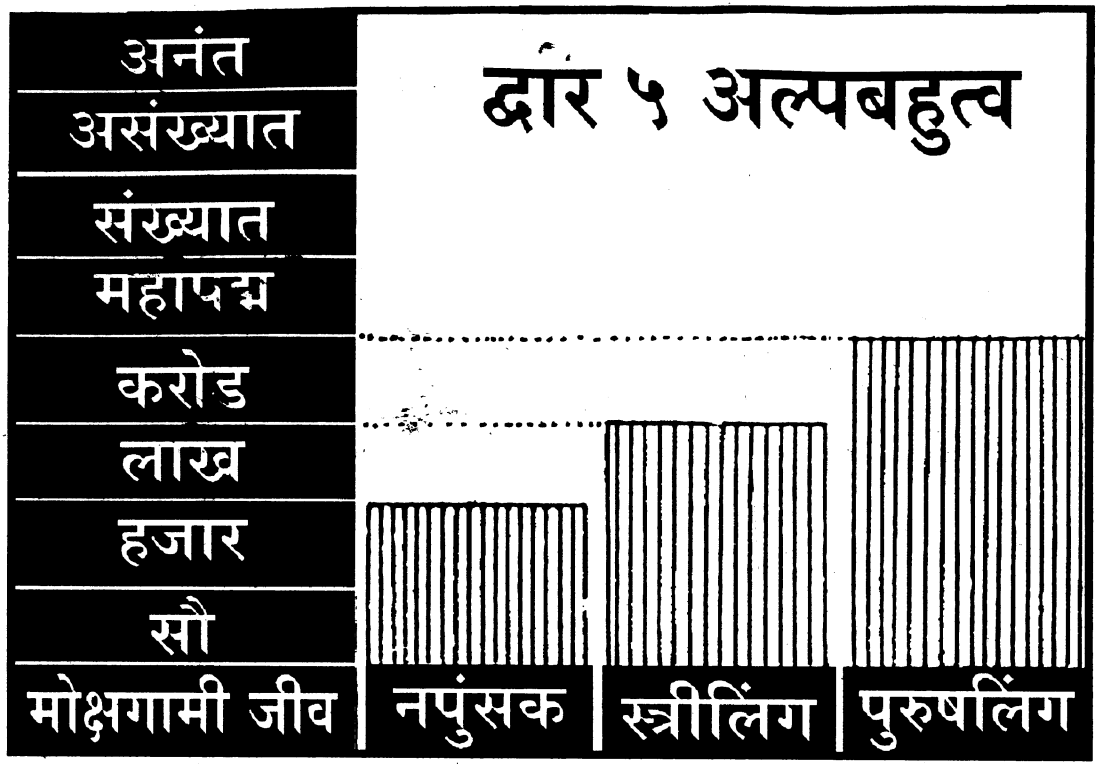

चित्र : जीवों में अल्पबहुत्व

अनुक्रम से संख्यातगुणा अधिक हैं। इस प्रकार का यह मोक्षतत्त्व है तथा नवतत्त्व भी संक्षेप से कहे गये हैं ॥५०॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में ९ वें अल्पबहुत्व द्वार का विवेचन है। इसी के साथ नवतत्त्व की व्याख्या भी समाप्त हो जाती है।

नपुंसकलिंगवाले जीव एक समय में उत्कृष्ट १० मोक्ष में जाते हैं इसलिये नपुंसकसिद्ध अल्प है। स्त्री एक समय में उत्कृष्ट से २० मोक्ष में जाती है, इसलिये दुगुनी होने से स्त्रीलिंग सिद्ध संख्यात गुण अधिक है। पुरुष एक समय में उत्कृष्ट से १०८ मोक्ष में जाते है, इसलिये स्त्रियों से भी पुरुषलिंग सिद्ध संख्यात गुणा अधिक है।

सिद्धों के शेष भेदों का अल्पबहुत्व

१) **जिनसिद्ध** अल्प और **अजिनसिद्ध** उनसे असंख्य गुणा।

२) **अतीर्थ सिद्ध** अल्प और **तीर्थसिद्ध** उनसे असंख्य गुणा।

३) **गृहस्थलिंग सिद्ध** अल्प, उनसे **अन्यलिंग सिद्ध** (अ) संख्यातगुणा, उनसे **स्वलिंग सिद्ध** असंख्यात गुणा।

४) **स्वयं बुद्ध सिद्ध** अल्प, इनसे **प्रत्येक बुद्धसिद्ध** संख्यात गुणा, उनसे **बुद्धबोधित सिद्ध** संख्यगुणा।

५) **अनेक सिद्ध** अल्प और **एकसिद्ध** उनसे (अ) संख्यातगुणा।

नवतत्त्वों को जानने से सम्यक्त्व का लाभ

गाथा

जीवाइ नव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं।
भावेण सद्दहन्तो, अयाण-माणे वि सम्मत्तं ॥५१॥

अन्वय

जीवाइ नव पयत्थे, जो जाणइ तस्स सम्मत्तं होइ, अयाणमाणे वि भावेण सद्दहन्तो सम्मत्तं (होइ) ॥

संस्कृत पदानुवाद

जीवादि नव पदार्थान्, यो जानाति तस्य भवति सम्यक्त्वम्।
भावेन श्रद्धतोऽज्ञानवतोऽपि सम्यक्त्वम् ॥५१॥

शब्दार्थ

जीवाइ - जीव आदि	**सम्मत्तं** - सम्यक्त्व
नव - नौ	**भावेण** - भाव से
पयत्थे - पदार्थों को	**सद्दहन्तो** - श्रद्धा करने वाले जीव को
जो - जो	**अयाणमाणे** - अज्ञानवान् होने पर
जाणइ - जानता है	**वि** - भी
तस्स - उसको	**सम्मत्तं** - सम्यक्त्व
होइ - होता है	(होइ - होता है ।)

भावार्थ

जीव आदि ९ पदार्थों को जो जानता है, उसे सम्यक्त्व होता है । भाव से श्रद्धा करने वाले को अज्ञानवान् (बोधरहित) होने पर भी सम्यक्त्व होता है ॥५१॥

विशेष विवेचन

जीव-अजीव आदि पूर्व विवेचित नवतत्त्वों का सम्यक् स्वरूप ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम द्वारा समझा जाता है और इसे समझने वाले आत्मा को सत्यासत्य व हिताहित का विवेक होता है । वह धर्म-अधर्म, हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञाता बनता है । इन नवतत्त्वों का गहराई पूर्वक चिंतन-मनन करने से सर्वज्ञ वचनों पर अखंड श्रद्धा उत्पन्न होती है । इस प्रकार अटल श्रद्धा से आत्मा में सम्यक्त्व का दीप प्रज्ज्वलित होता है । यदि किसी जीव के ज्ञानावरणीय कर्म का तीव्र उदय है, जिससे उसे नवतत्त्वादि का ज्ञान नहीं हो पाता तथापि 'तमेव सच्चं निस्संकं, जं जिणेहिं पवेइयं' 'वही सत्य है, जो जिनेश्वर भगवान् ने प्ररुपित किया है' ऐसी दृढ श्रद्धा वाला अज्ञानी जीव भी अवश्यमेव सम्यक्त्व को प्राप्त करता है ।

सम्यक्त्व के ५ लिंग अथवा ६७ लक्षण भी है । इनसे भी जीव में सम्यक्त्व का अभाव है या सद्भाव ? यह व्यवहार से जाना जा सकता है । निश्चय से तो सर्वज्ञ ही कथन कर सकते हैं ।

कैसी बुद्धि में सम्यक्त्व का सद्भाव ?

गाथा

सव्वाइं जिणेसर, भासियाइं वयणाइं नन्नहा हुंति ।
इअ बुद्धी जस्स मणे, सम्मत्तं निच्चलं तस्स ॥५२॥

अन्वय

जिणेसर भासियाइं सव्वाइं वयणाइं अन्नहा न हुंति, जस्स मणे इअ बुद्धी, तस्स सम्मत्तं निच्चलं ॥५२॥

संस्कृत पद्यानुवाद

सर्वाणि जिनेश्वर भाषितानि, वचनानि नान्यथा भवन्ति ।
इतिबुद्धिर्यस्य मनसि, सम्यक्त्वं निश्चलं तस्य ॥५२॥

शब्दार्थ

सव्वाइं - समस्त	**इअ** - ऐसी
जिणेसर - जिनेश्वर के	**बुद्धी** - बुद्धि
भासियाइं - कहे हुए	**जस्स** - जिसके
वयणाइं - वचन	**मणे** - मन (हृदय) में
न - नहीं	**सम्मत्तं** - सम्यक्त्व
अन्नहा - अन्यथा, असत्य	**निच्चलं** - निश्चल
हुंति - होते हैं ।	**तस्स** - उसका

भावार्थ

श्री जिनेश्वर देव के कहे हुए समस्त वचन अन्यथा (असत्य) नहीं होते, ऐसी बुद्धि (श्रद्धा) जिसके मन में हो, उसका सम्यक्त्व निश्चल है ॥५२॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में सम्यक्त्व प्राप्त करने योग्य बुद्धि का कथन है । मिथ्यात्व से कलुषित अथवा सर्वज्ञ वचन में संदेहशील बुद्धि सम्यक्त्व का उपार्जन नहीं कर सकती क्योंकि सर्वज्ञ १८ दोषों से रहित होने के कारण उनके वचन सदा सत्य ही होते हैं । वे असत्य नहीं हो सकते क्योंकि असत्य बोलने के ८ कारणों से व्यक्ति असत्य भाषण करता है - (१) क्रोध से, (२) मान से, (३) माया से,

(४) लोभ से, (५) भय से, (६) हास्य से, (७) अज्ञान से तथा (८) अनाभोग से।

जिनेश्वर परमात्मा में इन सब दोषों का सर्वथा अभाव होने से उनके वचन निर्दोष, सत्य तथा युक्तियुक्त ही होते हैं। जिस जीव के मन में इस प्रकार की अडिग, अडोल, निश्चल और दृढ श्रद्धा है कि जिनेश्वर भगवान ने जीव, कर्म, तत्त्व तथा द्रव्य का जैसा स्वरुप कहा है, वही सत्य है, यथार्थ है, युक्तियुक्त है, निर्विवाद है, वह जीव अवश्यमेव सम्यक्त्वी होता है। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद, नयवाद, निक्षेपवाद, स्याद्वाद का जैसा धर्म वीतराग ने कहा है, वह किसी भी धर्म में नहीं कहा है। जिनेश्वर के कथन परस्पर अविसंवादी तथा अविरोधी है। इस प्रकार का निर्मल किन्तु निश्चल श्रद्धान ही सम्यक्त्व कहलाता है।

सम्यक्त्व का माहात्म्य

गाथा

अंतोमुहुत्त-मित्तं-पि, फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं।
तेसिं अवड्ढ पुग्गल-परियट्टो चेव संसारो ॥५३॥

अन्वय

जेहिं अंतोमुहुत्तमित्तं अपि सम्मत्तं फासियं हुज्ज, तेसिं संसारो चेव अवड्ढ-पुग्गल-परियट्टो ॥५३॥

संस्कृत पदानुवाद

अन्तर्मुहूर्त्तमात्रमपि, स्पृष्टं भवेद् यैः सम्यक्त्वम्।
तेषामपार्द्ध-पुद्गल, परावर्तश्चैव संसारः ॥५३॥

शब्दार्थ

अंतोमुहुत्त - अन्तर्मुहूर्त	**तेसिं** - उनका
मित्तं - मात्र	**अवड्ढ** - अपार्ध (अंतिम आधा)
अपि - भी	**पुग्गलपरियट्टो** - पुद्गल परावर्त्त (ही बाकी रहता है)
फासियं - स्पर्श	**चेव** - निश्चय ही
हुज्ज - हुआ है	**संसारो** - संसार
जेहिं - जिनके द्वारा	
सम्मत्तं - सम्यक्त्व	

भावार्थ

जिन जीवों को अन्तर्मुहूर्त्त मात्र भी सम्यक्त्व का स्पर्श हो जाता है, उनका संसार निश्चित ही अपार्ध पुद्गल परावर्त्त जितना बाकी रह जाता है ॥५३॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में यह स्पष्ट किया गया है कि एक बार यदि जीव पलभर के लिये भी सम्यक्त्व का स्पर्श कर ले तो परित्त संसारी या अल्पभवी हो जाता है।

९ समय का जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है और दो घडी (४८ मिनट) में एक समय कम उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त है एवं १० समय से यावत् उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त के मध्य के सब कालभेद मध्यम अन्तर्मुहूर्त्त है। यह व्याख्या हम काल तत्त्व के विवेचन में कर आये हैं।

यहाँ मध्यम अन्तर्मुहूर्त्त असंख्य समय का ग्रहण करना चाहिए। इस काल में यदि सम्यक्त्व का लाभ हो जाय या इतने समय तक सम्यक्त्व का स्पर्श हो जाय तो वह जीव चाहे जैसे पाप कर्म निकाचित करें तब भी वह अर्धपुद्गल परावर्तन काल जितने समय में पुनः सम्यक्त्व प्राप्त कर अवश्यमेव मोक्ष में जाता है। यह सम्यक्त्व की एक बार स्पर्शना का फल है।

सम्यक्त्व प्राप्त करते समय जो ग्रंथि (निबिड राग-द्वेष की गांठ) भेद होता है, वह ग्रंथि भेद एक बार हो जाने के बाद पुनः वैसी ग्रंथि जीव को प्राप्त नहीं होती। इसलिये उस ग्रंथिभेद के प्रभाव से जीव अर्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल तक अवश्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

अपार्ध - अर्थात् अप + अर्ध यानी व्यतीत हुआ है पहला आधाभाग जिसका, ऐसा अंतिम आधा भाग अथवा अप + अर्ध अर्थात् किंचित् न्यून ऐसा जो आधा पुद्गल परावर्तन है, उसे अर्ध पुद्गल परावर्तनकाल कहते हैं। पुद्गल परावर्तनकाल का स्वरुप अगली गाथा में स्पष्ट कर रहे हैं।

पुद्गल परावर्तन का स्वरुप

गाथा

उस्सप्पिणी अणंता, पुग्गलपरियट्टओ मुणेयव्वो ।
तेऽणंताऽतीअद्धा, अणागयद्धा अणंतगुणा ॥५४॥

अन्वय

अणंता उस्सप्पिणी पुग्गलपरियट्टओ मुणेयव्वो, ते अणंता अतीअ अद्धा, अणंतगुणा अणागय अद्धा ॥५४॥

संस्कृत पदानुवाद

उत्सर्पिण्योऽनन्ताः, पुद्गलपरावर्त्तको ज्ञातव्यः ।
तेऽनन्ता अतीताद्धा, अनागताद्धानन्तगुणाः ॥५४॥

शब्दार्थ

उस्सप्पिणी - उत्सर्पिणियाँ	**अणंता** - अनंत
अणंता - अनंत	**अतीअ** - अतीत (भूत)
पुग्गल - पुद्गल	**अद्धा** - काल
परियट्टओ - परावर्तनकाल	**अणागय** - अनागत (भविष्य)
मुणेयव्वो - जानना चाहिए	**अद्धा** - काल
ते - ऐसे पुद्गलपरावर्त्तन	**अणंतगुणा** - अनन्तगुणा

भावार्थ

अनन्त उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी का एक पुद्गल परावर्त्तन काल जानना चाहिए । ऐसे अनंत पुद्गल परावर्त्तन प्रमाण अतीत काल तथा उससे अनंतगुणा भविष्य काल है ॥५४॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में एक पुद्गल परावर्त्तनकाल के स्वरूप का विश्लेषण है ।

१० कोडाकोडी सागरोपम - एक अवसर्पिणी
१० कोडाकोडी सागरोपम - एक उत्सर्पिणी
२० कोडाकोडी सागरोपम - एक कालचक्र ।

अनंत अवसर्पिणी तथा अनंत उत्सर्पिणी – एक पुद्गल परावर्त्तकाल।

द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव की अपेक्षा से पुद्गल परावर्त ४ प्रकार का है। इन चारों के पुनः सूक्ष्म तथा बादर ये दो-दो भेद होने से पुद्गल परावर्त्त के कुल आठ भेद होते है। इनका विवरण इस प्रकार है –

१. द्रव्य पुद्गल परावर्त्त : १४ राजलोक में विद्यमान समस्त पुद्गलों को एक जीव आहारक वर्गणा को छोड कर शेष औदारिकादि सात वर्गणा के रूप में तिर्यंच आदि भवों में ग्रहण करके छोडे, उसमें जितना काल व्यतीत होता है, वह द्रव्य पुद्गल परावर्त्त है।

२. क्षेत्र पुद्गल परावर्त्त : लोकाकाश के सभी आकाश प्रदेशों को एक जीव मृत्यु द्वारा स्पर्श करते हुए छोडे, उसमें जितना काल लगे, उतने काल का नाम क्षेत्र पुद्गल परावर्त्त है।

३. काल पुद्गल परावर्त्त : उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के समयों को एक जीव बार-बार मृत्यु द्वारा स्पर्श करके छोडे, उसमें जितना काल लगे, वह काल पुद्गल परावर्त्त है।

४. भाव पुद्गल परावर्त्त : रसबन्ध के अध्यवसाय असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण है। उनमें से एक-एक अध्यवसाय को बार-बार मृत्यु द्वारा स्पर्श करते हुए छोडे, उसमें जितना काल लगे, वह भाव पुद्गल परावर्त्त हैं।

विशेष : इनमें किसी भी अनुक्रम के बिना पुद्गलादि को जैसे-तैसे स्पर्शते हुए छोडने से चार बादर पुद्गल परावर्त होते हैं। तथा अनुक्रम से स्पर्शते हुए छोडने से चार सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्त होते हैं। चारों पुद्गल परावर्त्त में अनन्त-अनन्त कालचक्र व्यतीत हो जाते हैं।

सम्यक्त्व के संबंध में जो अर्धपुद्गल परावर्त्त संसार बाकी रहना कहा है, वह सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त्त काल की अपेक्षा से समझना चाहिए। उसका किंचित् स्वरूप इस प्रकार हैं –

सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त्त काल : वर्त्तमानकाल में कोई जीव लोकाकाश के अमुक नियत आकाश प्रदेश में रहकर मृत्यु पाये। पुनः कुछ काल बीतने पर वह जीव स्वभावतः उस नियत आकाश प्रदेश की पंक्ति में

रहे हुए साथ के आकाश प्रदेश में मृत्यु पाये, तत्पश्चात् कुछ काल के बाद वही जीव उसी पंक्ति में नियत आकाश प्रदेश के साथ के तीसरे आकाश प्रदेश में मृत्यु पाये। इस प्रकार बार-बार मृत्यु पाते हुए इस असंख्य आकाश प्रदेश की संपूर्ण श्रेणी पूर्ण करे, पश्चात् उस पंक्ति के साथ में रही हुई दूसरी, तीसरी यावत् आकाश के प्रतर में रही हुई साथ-साथ की असंख्य श्रेणियाँ मृत्यु द्वारा पूर्ण करें और इसी प्रकार यावत् लोकाकाश के असंख्य प्रतर क्रमशः पूर्ण करें। इस प्रकार एक जीव को मृत्यु द्वारा संपूर्ण लोकाकाश को क्रमशः स्पर्श करने में जितना काल लगता है, उस अनंतकाल का नाम सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त्त हैं।

ऐसे अनन्त पुद्गल परावर्त्त एक जीव ने व्यतीत किये है और भविष्य में भी करेगा। परन्तु यदि अन्तर्मुहूर्त्त काल मात्र भी जीव सम्यक्त्व का स्पर्श कर लेता है तो उत्कृष्ट से (सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तरूप) उस अनन्तकाल में से आधा अनन्तकाल ही बाकी रह जाता है।

सिद्ध के १५ भेद

गाथा

जिण अजिण तित्थऽतित्था, गिहि अन्न सलिंग थी नर नपुंसा।
पत्तेय सयंबुद्धा, बुद्ध बोहिय इक्कणिक्का य ॥५५॥

अन्वय

जिण अजिण तित्थ अतित्था, गिहि अन्न सलिंग थी नर नंपुसा, पत्तेय सयंबुद्धा, बुद्ध बोहिय इक्क य अणिक्का ॥५५॥

संस्कृत पदानुवाद

जिनाजिनतीर्थातीर्था, गृह्यन्यस्वलिङ्गास्त्रीनरनपुंसकाः।
प्रत्येक स्वयंबुद्धौ, बुद्धा बोधितैकानेकाश्च ॥५५॥

शब्दार्थ

जिण - जिनसिद्ध	**अतित्था** - अतीर्थ सिद्ध
अजिण - अजिनसिद्ध	**गिहि** - गृहस्थलिंग सिद्ध
तित्थ - तीर्थ सिद्ध	**अन्न** - अन्यलिंग सिद्ध

सलिंग - स्वलिंग सिद्ध	**सयंबुद्धा** - स्वयंबुद्ध सिद्ध
थी - स्त्रीलिंग सिद्ध	**बुद्धबोहिय** - बुद्धबोधित सिद्ध
नर - पुरुषलिंग सिद्ध	**इक्क** - एकसिद्ध
नपुंसा - नपुंसकलिंग सिद्ध	**अणिक्का** - अनेक सिद्ध
पत्तेय - प्रत्येकबुद्ध सिद्ध	**य** - और

भावार्थ

जिन सिद्ध, अजिन सिद्ध, तीर्थ सिद्ध, अतीर्थ सिद्ध, गृहस्थलिंग सिद्ध, अन्यलिंग सिद्ध, स्वलिंग सिद्ध, स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुषलिंग सिद्ध, नपुंसकलिंग सिद्ध, प्रत्येकबुद्ध सिद्ध, स्वयंबुद्ध सिद्ध, बुद्धबोधित सिद्ध, एक सिद्ध, अनेक सिद्ध, ये सिद्धों के १५ भेद हैं ॥५५॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में जो सिद्धों के १५ भेद बताये है, वह भेद केवल बाह्य अपेक्षा से है। उनके केवलज्ञान या सिद्धावस्था में कोई अंतर नहीं है। कोई भी जीव किसी भी दशा में सिद्ध हो, उनके भावों की विशुद्धता, निर्मलता एक समान ही होती है।

प्रस्तुत गाथा में जैनदर्शन की निष्पक्षता तथा विराटता के दर्शन स्पष्ट होते हैं। जिनेश्वरों ने केवल जैन साधु या श्रावक-श्राविकाओं के लिये ही मोक्ष में जाने का विधान नहीं किया है –

सेयंबरो या आसंबरो, बुद्धो य अहव अन्नोवा।
समभाव भावियप्पा, लहइ मुक्खं न संदेहो ॥

अर्थात् चाहे श्वेताम्बर जैन हो या दिगंबर जैन हो, बौद्धदर्शनी (बुद्ध का अनुयायी) हो या फिर अन्य किसी दर्शन या मतवाला हो तो भी समभाव (सम्यग्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र) द्वारा भावित-वासित हुआ आत्मा (जीव) मोक्ष पा सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्य दर्शनी बाबा, तापस आदि भी अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि मार्गों को स्वीकार कर दृढतापूर्वक उनका पालन करने पर केवलज्ञान तथा मोक्ष पा जाते हैं। यदि उनका आयुष्य अन्तर्मुहूर्त से

अधिक हो तो द्रव्य चारित्र (वेष) ग्रहण कर लेते हैं। यदि वे अंतगड केवली अर्थात् अन्तर्मुहूर्त में ही मोक्ष पाने वाले हो तो उसी वेष में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। अन्यलिंग सिद्ध का भी यही तात्पर्य है कि अन्य दर्शनियों के साधुवेष या तापस, परिव्राजक आदि के वेष में रहा हुआ जीव मोक्ष में जा सकता हैं। १५ सिद्ध के भेदों का विवरण निम्न प्रकार से है –

१. **जिनसिद्ध :** तीर्थंकर पद पाकर जो मोक्ष में जाये अर्थात् तीर्थंकर भगवान जिन सिद्ध है।

२. **अजिन सिद्ध :** तीर्थंकर पद पाये बिना सामान्य केवली होकर मोक्ष में जाये, वह अजिन सिद्ध है।

३. **तीर्थ सिद्ध :** तीर्थंकर परमात्मा केवल्य प्राप्ति के पश्चात् साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध धर्मसंघ या धर्म तीर्थ की स्थापना करते हैं। इसे ही तीर्थ कहते है। इस तीर्थ की स्थापना के पश्चात् जो मोक्ष में जाते है, वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं।

४. **अतीर्थ सिद्ध :** उपर्युक्त प्रकार की तीर्थस्थापना से पूर्व ही जो मोक्ष में जाते हैं, वे अतीर्थ सिद्ध कहलाते हैं।

५. **गृहस्थलिंग सिद्ध :** जो गृहस्थ के वेष से ही मोक्ष में चला जाय, वह गृहस्थ लिंग सिद्ध है। इस भेद की अपेक्षा से कोई ऐसा न समझे कि घर में रहते हुए ही मोक्ष मिल जाता है फिर चारित्र या साधु वेश लेने की क्या आवश्यकता ? ये विचार अज्ञानमूलक है। गृहस्थ या संसार भावों से युक्त कोई भी मुक्त नहीं हो सकता। परन्तु कोई भव्य आत्मा तीव्र वैराग्य उत्पन्न होने पर शुक्लध्यानारूढ होकर कदाचित् केवलज्ञान को प्राप्त करने के बाद यदि मोक्ष जाने का काल अल्प ही रहा हो तो मुनिवेश धारण किये बिना ही सिद्ध हो जाये, उन्हें गृहस्थलिंग सिद्ध कहते है। अगर दीर्घकाल बाकी हो तो वे अवश्य साधुवेश धारण करते हैं।

६. **अन्यलिंग सिद्ध :** अन्य दर्शनी के वेश में रहा हुआ तापस आदि मोक्ष में जाय, वह अन्यलिंग सिद्ध है।

७. **स्वलिंग सिद्ध :** श्री जिनेश्वर देव ने जो वेश कहा है, उसे धारण

करने वाला स्वलिंगी कहलाता है। ऐसे साधु वेश से जो मोक्ष में जाये, वह स्वलिंग सिद्ध है।

८. स्त्रीलिंग सिद्ध : जो स्त्रीलिंग अर्थात् स्त्री शरीर से मोक्ष में जाये, वह स्त्रीलिंग सिद्ध है।

९. पुरुषलिंग सिद्ध : जो पुरुष शरीर से मोक्ष में जाये, वह पुरुषलिंग सिद्ध है।

१०. नपुंसकलिंग सिद्ध : जो नपुंसक शरीर से मोक्ष में जाये, वह नपुंसकलिंग सिद्ध है। जन्मजात नपुंसक चारित्र प्राप्त करने के अयोग्य होने से उसका मोक्ष नहीं होता। यहाँ विवक्षित सिद्ध कृत्रिम नपुंसक की अपेक्षा से है अर्थात् कृत्रिम छह प्रकार के नपुंसक मोक्ष में जाते हैं –

१. वर्धितक : इन्द्रिय के छेदवाला पावइया आदि।

२. चिप्पित : जन्म पाते ही मर्दन से गलाये हुए लिंग वाला।

३. मंत्रोपहत : मंत्र प्रयोग से पुरुषत्व नष्ट किया हुआ।

४. औषधोपहत : औषधप्रयोग से पुरुषत्व नष्ट किया हुआ।

५. ऋषिशप्त : ऋषि के श्राप से नष्ट पुरुषत्व वाला।

६. देवशप्त : देव के श्राप से नष्ट पुरुषत्व वाला।

ये छह प्रकार के नपुंसक चूंकि जन्म से नपुंसक नहीं है, अतः चारित्र ग्रहण कर मोक्ष में जाते हैं।

११. प्रत्येकबुद्ध सिद्ध : संध्या समय के बदलते अस्थिर क्षणिक रंगों आदि के निमित्त से वैराग्य पाकर मोक्ष में जाये, वे प्रत्येकबुद्ध सिद्ध कहलाते है।

१२. स्वयंबुद्ध सिद्ध : जो बिना किसी बाह्य निमित्त अथवा उपदेश के जातिस्मरणादि से अपने आप स्वतः प्रतिबुद्ध हो, वे स्वयंबुद्ध सिद्ध है।

१३. बुद्धबोधित सिद्ध : बुद्ध - गुरु द्वारा, बोधित-प्रतिबोध-उपदेश को पाकर जो मोक्ष में जाये, वह बुद्धबोधित सिद्ध है।

१४. एकसिद्ध : एक समय में एक जीव मोक्ष में जाये, वह एकसिद्ध है।

१५. अनेकसिद्ध : एक समय में अनेक जीव मोक्ष में जाये, वे अनेक सिद्ध है ।

यहाँ जघन्य से एक समय में एक जीव तथा उत्कृष्ट से १०८ जीव मोक्ष में जाते हैं ।

१५-सिद्ध भेदों के दृष्टान्त

गाथा

जिण सिद्धा अरिहंता, अजिण-सिद्धा य पुंडरिअ-पमुहा ।
गणहारि तित्थ-सिद्धा, अतित्थ-सिद्धा य मरुदेवी ॥५६॥
गिहिलिंगसिद्ध भरहो, वक्कलचीरी य अन्नलिंगम्मि ।
साहू सलिंग सिद्धा, थी सिद्धा चंदणा पमुहा ॥५७॥
पुंसिद्धा गोयमाइ, गांगेयाइ नपुंसया सिद्धा ।
पत्तेय सयंबुद्धा, भणिया करकंडु-कविलाई ॥५८॥
तह बुद्ध बोहि गुरु बोहिया य, इग समये इग सिद्धा य ।
इग समये वि अणेगा, सिद्धा तेऽणेग सिद्धा य ॥५९॥

अन्वय

मूल गाथावत् - ५६

मूल गाथावत् - ५७

गोयमाई पुंसिद्धा, गांगेयाइ नपुंसया सिद्धा, करकंडु आइ पत्तेयबुद्धा, कविलाई सयंबुद्धा भणिया ॥५८॥

तह गुरुबोहिया य बुद्धबोहि, इगसमये इग सिद्धा य, इग समये अवि अणेगा, सिद्धा ते अणेग सिद्धा य ॥५९॥

संस्कृत पदानुवाद

जिनसिद्धा अर्हन्तो, अजिन सिद्धाश्च पुण्डरिक प्रमुखाः ।
गणधारिणस्तीर्थसिद्धा, अतीर्थसिद्धाश्च मरुदेवी ॥५६॥
गृहलिंग सिद्ध भरतो, वल्कलचीरी चान्यलिङ्गे ।
साधवः स्वलिङ्गसिद्धाः, स्त्रीसिद्धाः चन्दना प्रमुखाः ॥५७॥

पुरुषसिद्धा गौतमादयो, गांगेयादयो नपुंसकाः सिद्धाः ।
प्रत्येक स्वयंबुद्धा, भणिताः करकण्डु कपिलादयः ॥५८॥
तथा बुद्धबोधिता गुरुबोधिता, एक समये एकसिद्धाश्च ।
एक समयेऽप्यनेकाः, सिद्धास्तेऽनेक सिद्धाश्च ॥५९॥

शब्दार्थ

जिणसिद्धा - जिन सिद्ध	**गणहारि** - गणधर
अरिहंता - अरिहंत देव (तीर्थंकर परमात्मा)	**तित्थसिद्धा** - तीर्थ सिद्ध है ।
अजिण सिद्धा - अजिनसिद्ध	**अतित्थ सिद्धा** - अतीर्थ सिद्ध
पुंडरिअ - पुंडरिक गणधर	**य** - और
पमुहा - प्रमुख	**मरुदेवी** - मरुदेवी माता

शब्दार्थ

गिहिलिंग सिद्ध - गृहस्थलिंग सिद्ध	**साहू** - साधु
भरहो - भरत चक्रवर्ती	**सलिंगसिद्धा** - स्वलिंग सिद्ध
वक्कलचीरी - वल्कलचीरी	**थी सिद्धा** - स्त्रीसिद्ध
य - और	**चंदणा पमुहा** - चंदना प्रमुख
अन्नलिंगम्मि - अन्यलिंग सिद्ध	

शब्दार्थ

पुंसिद्धा - पुरुषलिंग सिद्ध	**सयंबुद्धा** - स्वयंबुद्ध सिद्ध
गोयमाइ - गौतमादि	**भणिया** - कहे गये है ।
गांगेयाइ - गांगेय आदि	**करकंडु** - करकंडु
नपुंसयासिद्धा - नपुंसक सिद्ध	**कविलाइ** - कपिल आदि
पत्तेय - प्रत्येकबुद्ध सिद्ध	

शब्दार्थ

तह - तथा	**गुरुबोहिया** - गुरु द्वारा बोधित सिद्ध
बुद्धबोहि - बुद्धबोधित सिद्ध	**य** - और

इग समये - एक समय में (सिद्ध हो)	**अणेगा सिद्धा** - अनेक सिद्ध हो
इग सिद्धा - एक सिद्ध है	**ते** - वे
य - और	**अणेगसिद्धा** - अनेक सिद्ध है ।
इग समये - एक समय में	**य** - और
वि - भी	

भावार्थ

तीर्थंकर जिनसिद्ध है, पुंडरीकादि गणधर अजिन सिद्ध है, गौतमादि गणधर तीर्थ सिद्ध तथा मरुदेवी माता अतीर्थ सिद्ध है ॥५६॥

भरतचक्रवर्ती गृहस्थलिंग सिद्ध है, वल्कलचीरी अन्यलिंग सिद्ध है, साधु स्वलिंग सिद्ध है तथा श्रमणं प्रमुखी चंदना स्त्रीलिंग सिद्ध है ॥५७॥

गौतमादि पुरुषलिंग सिद्ध है, गांगेय आदि नपुंसकलिंग सिद्ध है, करकंडु प्रत्येकबुद्ध सिद्ध तथा कपिलादि स्वयंबुद्ध सिद्ध है ॥५८॥

तथा गुरु से बोध पाया हुआ बुद्धबोधित सिद्ध है । एक समय में एक ही सिद्ध होनेवाला एकसिद्ध तथा एक समय में अनेक सिद्ध होनेवाले अनेक सिद्ध है ॥५९॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा चतुष्क में तीन गाथाओं में सिद्धों के १२ भेदों को उदाहरण सहित स्पष्ट किया है तथा ५९ वीं गाथा में उदाहरण नहीं देकर अन्तिम ३ भेदों को केवल व्याख्यायित किया है । चूंकि हर आत्मा, जो भी मोक्ष में जाता है, वह या तो एकाकी होता है या उससे ज्यादा संख्या भी हो सकती है । जैसे परमात्मा महावीर एकाकी मोक्ष में गये, अतः एकसिद्ध कहलाये । ऋषभदेव, उनके ९९ पुत्र तथा भरत चक्रवर्ती के ८ पुत्र, इस प्रकार कुल १०८ जीव एक साथ मोक्ष में गये, अतः अनेक सिद्ध कहलाये । इसी प्रकार गुरु के उपदेश से प्रतिबुद्ध होकर मोक्ष में जाने वाला हर आत्मा बुद्धबोधित सिद्ध है ।

सिद्ध के १५ भेदों की व्याख्या के साथ ही ९वें मोक्षतत्त्व की व्याख्या भी संपूर्ण हुई ।

उपसंहार

गाथा

जइआ य होइ पुच्छा, जिणाणमग्गंमि उत्तर तइया ।
इक्कस्स निगोयस्स, अणंतभागो य सिद्धिगओ ॥६०॥

अन्वय

जिणाणमग्गंम्मि जइया य पुच्छा होइ तइया उत्तरं, इक्कस्स निगोयस्स, अणंतभागो य सिद्धिगओ ॥६०॥

संस्कृत पदानुवाद

यदा च भवति पृच्छा, जिनेन्द्रमार्गे उत्तरं तदा ।
एकस्य निगोदस्य, अनन्तभागो च सिद्धिगतः ॥६०॥

शब्दार्थ

जइआ - जब-जब	**उत्तरं** - उत्तर
य - और	**तइया** - तब-तब
होइ - होती है	**इक्कस्स** - एक
पुच्छा - पृच्छा (पूछा जाता है)	**निगोयस्स** - निगोद का
जिणाणमग्गंमि - जिनेश्वर के मार्ग (शासन) में	**अणंतभागो** - अनन्तवां भाग
	सिद्धिगओ - मोक्ष में गया है

भावार्थ

जिनेश्वर के शासन में जब-जब इस प्रकार का प्रश्न पूछा जाता है, तब-तब यही उत्तर होता है कि एक निगोद का अनन्तवां भाग ही मोक्ष में गया है ॥६०॥

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा नवतत्त्व की अंतिम गाथा है। इसका विवरण मोक्षतत्त्व के ७वें भाग द्वार में समाहित है। इस काल के प्रवाह में उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी रूप अनंत-अनंत कालचक्र व्यतीत हो गये हैं, हर कालचक्र में तीर्थंकर तथा उनके शासन में अनेक जीव मोक्ष में जाते रहे है। अनन्तकाल से चल रही इस व्यवस्था में अनंत जीव मोक्ष में गये हैं, तथापि जिनेश्वर से यदि कोई प्रश्न

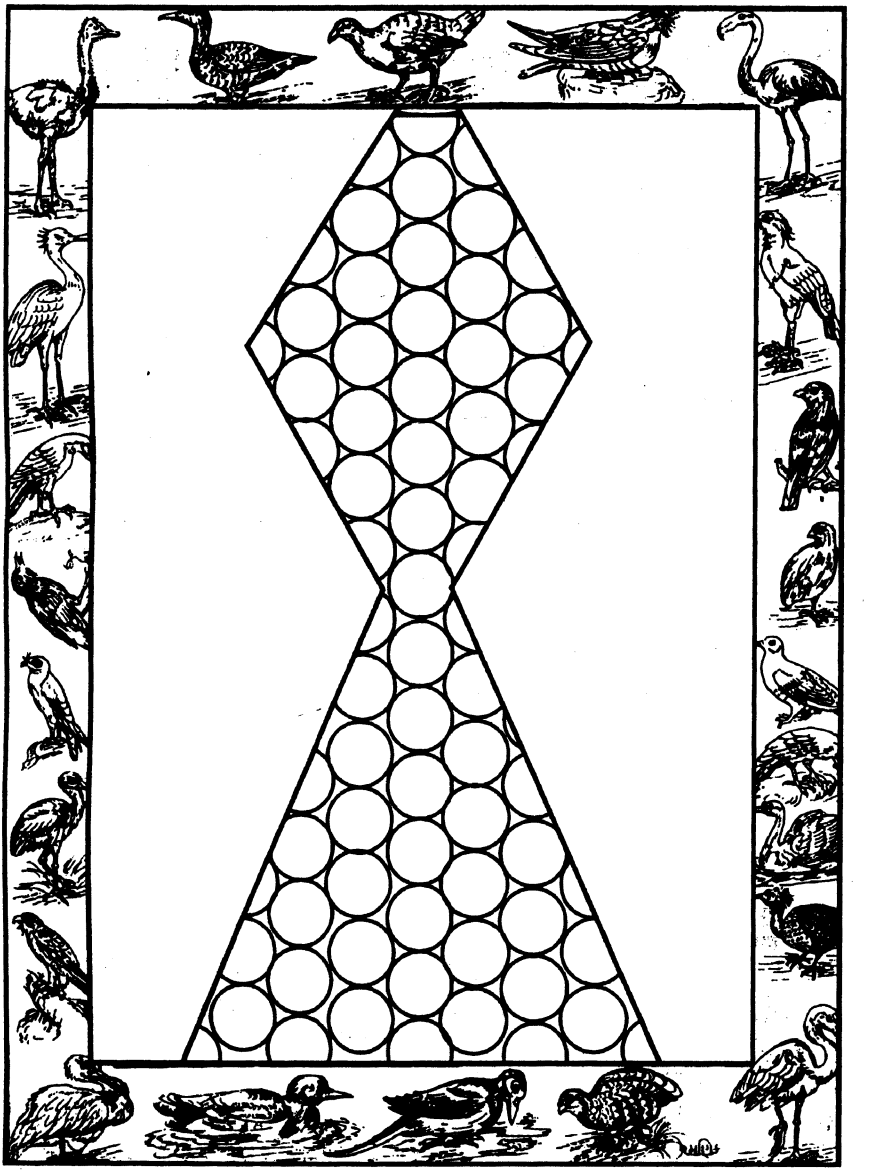

चित्र : लोक में स्थित असंख्य निगोद-गोलक

करें कि कितने जीव मोक्ष में गये तो एक ही उत्तर है कि एक निगोद का अनन्तवां भाग ही मोक्ष में गया है।

इस जगत में निगोद के असंख्याता गोले हैं। एक-एक गोले में असंख्य निगोद है और एक-एक निगोद में अनंत-अनंत जीव हैं। इस एक निगोद का अनन्तवां भाग ही मोक्ष में गया है। परमात्मा का यह कथन केवल श्रद्धापूर्वक अवधारणीय है। क्योंकि अल्पज्ञानी-अज्ञानी जीवों की सामान्य बुद्धि इतने निगोद के जीवों की कल्पना नहीं कर सकती। फिर उसमें असंख्यात तथा अनंत जीवों का अस्तित्व हमारी बुद्धि को अवश्य चकित कर देता है, हमारी बुद्धि यदि इसे भ्रम कहती है, अयथार्थ अथवा कोरी कल्पना कहती है तो अवश्य मिथ्यात्व दशा को उपलब्ध होती है। यदि हमारी धारणा श्रद्धापूर्वक स्वीकार करती है कि केवलज्ञानी का कथन परमसत्य है तो सम्यक्त्व की रोशनी से आलोकित होकर जीवात्मा अल्पभवी बन संसार से मुक्त हो जाती है।

जिनेश्वर का शासन अनूठा व अद्भुत है। यहाँ प्रत्येक कथन केवलज्ञान की कसौटी पर कसा हुआ है। अतः विसंवाद, असत्यता अथवा पूर्वापर विरोध का सर्वथा अभाव है। इस प्रकार परमात्मा ने जैसा नवतत्त्व का निरूपण किया है, वह सत्य है, तथ्य है, युक्तियुक्त है, श्रद्धापूर्वक अवधारणीय है। जो इन नवतत्त्वों का अध्ययन कर, इस पर सम्यक् श्रद्धान कर, सम्यक् आचार-विचार रूप सम्यक् चारित्र का पालन करता है, वह मुक्तिपद को प्राप्त करता है। नवतत्त्वों को जानने का यही उद्देश्य तथा परम लक्ष्य है।

●

नवतत्त्व प्रकरण प्रश्नोत्तरी

प्रारंभिक प्रश्नोत्तर

१) नवतत्त्व प्रकरण के रचयिता कौन है ?

उत्तर : नवतत्त्व प्रकरण के रचयिता चिरंतनाचार्य है। कहीं-कहीं ऐसा उल्लेख भी उपलब्ध होता है कि इसके रचयिता पार्श्वनाथ परम्परा के ४४वें पट्टधर देवगुप्ताचार्य है।

२) नवतत्त्वों में सर्वप्रथम जीव को ही क्यों स्थान दिया गया है ?

उत्तर : इन नौ तत्त्वों में ज्ञाता, पुद्गल का उपभोक्ता, शुभाशुभ कर्मों का कर्ता तथा संसार और मोक्ष के लिये सत्पुरुषार्थ करने वाला जीव ही है। अगर जीव न हो तो पुद्गल का उपयोग कौन करेगा ? कौन पुण्य-पाप का उपार्जन करेगा तथा कौन संवर, निर्जरा द्वारा मोक्ष को प्राप्त करेगा ? इसलिये नवतत्त्वों में जीव तत्त्व को प्रथम स्थान पर रखा गया है।

३) तत्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : चौदह राजलोक रूप जगत में रहे हुए पदार्थों के लक्षण, भेद, स्वरूप आदि को जानना, तत्त्व कहलाता है।

४) तत्त्व कितने व कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : तत्त्व नौ हैं - १. जीव, २. अजीव, ३. पुण्य, ४. पाप, ५. आश्रव, ६. संवर, ७. निर्जरा, ८. बंध, ९. मोक्ष।

५) जीव तत्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : जीवों के लक्षण, भेद, स्वरूप आदि को जानना जीव तत्त्व है।

६) जीव किसे कहते है ?

उत्तर : जो शुभाशुभ कर्मों का कर्ता-हर्ता तथा भोक्ता हो, जो सुख-दुःख रूप ज्ञान के उपयोग वाला हो, जो चैतन्य-लक्षण से युक्त हो, जो प्राणों को धारण करता है, वह जीव कहलाता है।

७) द्रव्य जीव किसे कहते है ?

उत्तर : ५ इन्द्रियादि द्रव्य प्राणों को धारण करने वाला द्रव्य जीव कहलाता है।

८) भाव जीव किसे कहते है ?

उत्तर : सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि भाव प्राणों को धारण करनेवाला भावजीव कहलाता है।

९) प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर : "प्राणिति जीवति अननेति प्राण:" अर्थात् जिसके द्वारा जीव में जीवत्व है, इसकी प्रतीति होती है, वह प्राण कहलाता है।

१०) अजीव किसे कहते है ?

उत्तर : जीव से विपरीत लक्षण वाला अजीव कहलाता है। जो चैतन्य लक्षण रहित जड स्वभावी हो, सुख-दु:ख का अनुभव न करे, प्राणों को धारण न करे, वह अजीव कहलाता है।

११) अजीव के कितने प्रकार हैं एवं कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : अजीव के दो प्रकार हैं - (१) द्रव्य अजीव, (२) भाव अजीव।

१२) द्रव्य अजीव किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो अजीव अपनी मुख्य क्रिया में प्रवर्तन न करता हो, वह द्रव्य अजीव कहलाता है।

१३) भाव अजीव किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो अजीव अपनी मुख्य क्रिया में प्रवर्तन कर रहा हो, वह भाव अजीव कहलाता है।

१४) पुण्य किसे कहते है ?

उत्तर : जो आत्मा को पवित्र करें, जिसकी शुभ प्रकृति हो, जिसके द्वारा आमोद-प्रमोद, ऐश-आराम, सुख-साधनों की बहुलता प्राप्त हो, जिसके द्वारा जीव सुख का भोग करे, उसे पुण्य कहते हैं।

१५) पुण्य के कितने व कौनसे प्रकार है ?

उत्तर : पुण्य के २ प्रकार है - १. पुण्यानुबंधी पुण्य, २. पापानुबंधी पुण्य।

१६) पुण्यानुबंधी पुण्य किसे कहते है ?

उत्तर : जिस पुण्य को भोगते हुए नया पुण्य बंधे, उसे पुण्यानुबंधी पुण्य कहते

है। जैसे मेघकुमार।

१७) पापानुबंधी पुण्य किसे कहते है ?

उत्तर : जिस पुण्य को भोगते हुए पाप का अनुबंध हो, उसे पापानुबंधी पुण्य कहते है। जैसे मम्मण सेठ।

१८) पुण्य के अन्य दो प्रकार कौन - से हैं ?

उत्तर : पुण्य के अन्य दो प्रकार हैं - (१) द्रव्य पुण्य, (२) भाव पुण्य।

१९) द्रव्य पुण्य किसे कहते है ?

उत्तर : जीव को सुख भोगने में कारण रूप जो शुभकर्म पुद्गल हैं, उसे द्रव्य पुण्य कहते है।

२०) भाव पुण्य किसे कहते है ?

उत्तर : शुभ कर्म को बांधने में कारण रूप जीव के जो शुभ अध्यवसाय हैं, उसे भाव पुण्य कहते है।

२१) पुण्य के ७ प्रकार कौन-से हैं ?

उत्तर : पुण्य के ७ प्रकार निम्नोक्त हैं -

अन्न पुण्य - भूखे को भोजन देना।
पान पुण्य - प्यासे की प्यास बुझाना।
शयन पुण्य - थके हुए निराश्रित प्राणियों को आश्रय देना।
लयन पुण्य - पाट-पाटला आदि आसन देना।
वस्त्र पुण्य - वस्त्रादि देकर सर्दी-गर्मी से रक्षण करना।
मन पुण्य - हृदय से सभी प्राणियों के प्रति सुख की भावना।
वचन पुण्य - निर्दोष-मधुर शब्दों से अन्य को सुख पहुँचाना।
काय पुण्य - शरीर से सेवा-वैयावच्चादि करना।
नमस्कार पुण्य - नम्रतायुक्त व्यवहार करना।

२२) पाप किसे कहते है ?

उत्तर : पुण्य से विपरीत स्वभाव वाला, जिसके द्वारा अशुभ कर्मों का ग्रहण हो, जिसके द्वारा जीव को दुःख, कष्ट तथा अशांति मिले, उसे पाप कहते है।

२३) पाप कितने प्रकार का है ?

उत्तर : पाप २ प्रकार का है - १. पापानुबंधी पाप २. पुण्यानुबंधी पाप।

२४) पापानुबंधी पाप किसे कहते है ?

उत्तर : जिस पापकर्म को भोगते हुए नये पापकर्म का अनुबंध हो, उसे पापानुबंधी पाप कहते है। जैसे विपन्न-दुःखी, कसाई इस भव में पाप कार्य से दुःख भोग रहे हैं और रौद्र तथा क्रूर कर्म द्वारा वे नये पाप कर्म का उपार्जन कर रहे हैं, इसे पापानुबंधी पाप कहा जाता है।

२५) पुण्यानुबंधी पाप किसे कहते है ?

उत्तर : जिस पाप कर्म को भोगते हुए पुण्य का बंध हो, वह पुण्यानुबंधी पाप है। जैसे जीव दरिद्रता आदि दुःखों को भोगता हुआ मन में समता रखे कि यह मेरे ही पाप कर्म का परिणाम है। इस प्रकार की विचारधारा वाला जीव पाप कर्म को भोगता हुआ भी नये पुण्य का उपार्जन करता है। जैसे पूणिया श्रावक।

२६) पाप के अन्य दो प्रकार कौन-से हैं ?

उत्तर : पाप के अन्य दो प्रकार हैं - (१) द्रव्य पाप, (२) भाव पाप।

२७) द्रव्य पाप किसे कहते है ?

उत्तर : जीव को दुःख भोगने में कारण रूप जो अशुभ कर्म हैं, उसे द्रव्य पाप कहते है।

२८) भाव-पाप किसे कहते है ?

उत्तर : अशुभ पापकर्म को उत्पन्न करने में कारण रूप जीव के जो क्रोधादि कषायरूप अशुभ अध्यवसाय हैं, उसे भाव पाप कहते है।

२९) पुण्य-पाप की चतुर्भंगी कौन-सी है ?

उत्तर : १. पुण्यानुबंधी पुण्य - पुण्य बांधने वाला पुण्य।
२. पुण्यानुबंधी पाप - पुण्य बांधने वाला पाप।
३. पापानुबंधी पुण्य - पाप बांधने वाला पुण्य।
४. पापानुबंधी पाप - पाप बांधने वाला पाप।

३०) आश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : जीव की शुभाशुभ योग प्रवृत्ति से आकृष्ट होकर कर्म वर्गणा का आना अर्थात् जीवरूपी तालाब में पुण्य-पाप रूपी कर्म-जल का आगमन आश्रव कहलाता है ।

३१) आश्रव के मुख्य भेद कितने हैं ?

उत्तर : आश्रव के मुख्य भेद २ हैं - १. द्रव्य आश्रव, २. भाव आश्रव.

३२) द्रव्याश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : जीव में शुभाशुभ कर्मों का आगमन होना द्रव्याश्रव कहलाता है । जैसे कालसौकरिक कसाई ।

३३) भावाश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : कर्मों के आगमन में कारण रूप जीव के जो राग एवं द्वेषयुक्त अध्यवसाय हैं, उसे भावाश्रव कहते है ।

३४) संवर किसे कहते है ?

उत्तर : जीव में आते हुए कर्मों को व्रत-प्रत्याख्यान आदि के द्वारा रोकना, अर्थात् जीव रूपी तालाब में आश्रव रूपी नालों से कर्म रूपी पानी के आगमन को त्याग-प्रत्याख्यान रूपी पाल(दीवार) द्वारा रोकना, संवर कहलाता है ।

३५) संवर के मुख्य भेद कितने हैं ?

उत्तर : संवर के मुख्य भेद २ है - द्रव्य संवर तथा भाव संवर ।

३६) द्रव्य संवर किसे कहते है ?

उत्तर : शुभाशुभ कर्म पुद्गलों को रोकना द्रव्य संवर है ।

३७) भाव संवर किसे कहते है ?

उत्तर : शुभाशुभ कर्मों को रोकने में कारणभूत जीव के जो अध्यवसाय हैं, उसे भाव संवर कहते है ।

३८) निर्जरा किसे कहते है ?

उत्तर : आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों का देशतः क्षय होना या अलग होना, निर्जरा कहलाता है ।

३९) निर्जरा के मुख्य कितने प्रकार हैं ? नाम लिखो ।

उत्तर : निर्जरा के मुख्य दो प्रकार हैं - (१) द्रव्यनिर्जरा, (२) भाव निर्जरा।

४०) उक्त परिभाषा में "देशतः" शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है ?

उत्तर : उक्त परिभाषा में "देशतः" शब्द का प्रयोग ही उपयुक्त है क्योंकि मोक्षतत्त्व का अर्थ भी निर्जरा (कर्मों की) होता है, किन्तु वहाँ सर्व कर्मों की निर्जरा होती है, जबकि निर्जरा तत्त्व में आंशिक रुप से यानि देशतः कर्मों की निर्जरा होती है।

४१) द्रव्य निर्जरा किसे कहते है ?

उत्तर : बंधे हुए कर्मों का अल्पांश रूप से क्षय होना द्रव्य निर्जरा है।

४२) भाव निर्जरा किसे कहते है ?

उत्तर : बंधे हुए कर्मों को आंशिक रूप से क्षय करने में कारण रूप जीव के जो विशुद्ध अध्यवसाय है, उसे भाव निर्जरा कहते है।

४३) निर्जरा के अन्य भेद कौनसे हैं ?

उत्तर : निर्जरा के अन्य २ भेद हैं - सकाम निर्जरा तथा अकाम निर्जरा।

४४) सकाम निर्जरा किसे कहते है ?

उत्तर : आत्मिक गुणों को पैदा करने के लक्ष्य से जिस धर्मानुष्ठान का आचरण-सेवन किया जाय अर्थात् अविरत सम्यग्दृष्टि जीव, देशविरत श्रावक तथा सर्वविरत मुनि महात्मा, जिन्होंने सर्वज्ञोक्त तत्त्व को जाना है और उसके परिणाम स्वरूप जो धर्माचरण किया है, उनके द्वारा होने वाली निर्जरा सकाम निर्जरा है।

४५) अकाम निर्जरा किसे कहते है ?

उत्तर : सर्वज्ञ कथित तत्त्वज्ञान के प्रति अल्पांश रूप से भी अप्रतीति वाले जीव-अज्ञानी तपस्वियों की अज्ञानभरी कष्टदायी क्रियाएँ तथा पृथ्वी, वनस्पति पंच स्थावर काय जो सर्दी-गर्मी को सहन करते हैं, उन सबसे जो निर्जरा होती है, वह अकाम निर्जरा कहलाती है।

४६) बंध किसे कहते है ?

उत्तर : जीव के साथ नीर-क्षीरवत् कर्म वर्गणाएँ संबद्ध हो, उसे बंध कहते है।

४७) बंध के दो प्रकार कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : बंध के दो प्रकार हैं - (१) द्रव्य बंध, (२) भाव बंध ।

४८) द्रव्य बंध किसे कहते है ?

उत्तर : आत्मा के साथ कर्म पुद्‌गलों का परस्पर एकमेक, सम्बद्ध होना, द्रव्य बंध है ।

४९) भाव बंध किसे कहते है ?

उत्तर : कर्म को बांधने में जीव का जो राग-द्वेष युक्त आत्म-परिणाम है, वह भाव बंध है ।

५०) मोक्ष किसे कहते है ?

उत्तर : ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मों का आत्मा से सर्वथा नष्ट हो जाना, मोक्ष कहलाता है ।

५१) मोक्ष के मुख्य दो प्रकार कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : मोक्ष के दो प्रकार हैं - (१) द्रव्य मोक्ष, (२) भाव मोक्ष ।

५२) द्रव्य मोक्ष किसे कहते है ?

उत्तर : कर्मों का आत्मा से सर्वथा विलग होना, द्रव्य मोक्ष है ।

५३) भाव मोक्ष किसे कहते है ?

उत्तर : कर्मों को संपूर्ण क्षय करने में कारण रूप आत्मा के जो परम विशुद्ध अध्यवसाय है, उसे भाव मोक्ष कहते है ।

५४) नवतत्त्वों का वर्णन कौनसे आगम में हैं ?

उत्तर : स्थानांग सूत्र के ९वें स्थान में नवतत्त्वों का वर्णन है ।

५५) नवतत्त्वों में कौन-कौन से तत्त्व हेय-ज्ञेय तथा उपादेय है ?

उत्तर : १. हेय - पाप, आश्रव, बन्ध, पुण्य ।
२. ज्ञेय - जीव, अजीव ।
३. उपादेय - पुण्य, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष ।

५६) हेय-ज्ञेय तथा उपादेय से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : हेय - त्याग करने योग्य या छोडने योग्य ।
ज्ञेय - जानने योग्य ।
उपादेय - ग्रहण करने योग्य या स्वीकार करने योग्य ।

५७) पुण्य तत्त्व को हेय तथा उपादेय, दोनों प्रकार में क्यों उल्लिखित किया गया है ?

उत्तर : जब तक जीवात्मा मोक्ष में नहीं पहुँचता है, तब तक पुण्य उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है क्योंकि पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्य जीवन, श्रेष्ठ कुल, स्वस्थ शरीर, विचक्षण बुद्धि, जिनधर्म, सुदेव तथा सुगुरु इन की पुण्य के परिणाम स्वरूप ही प्राप्ति होती हैं।

अगर पुण्य नहीं होगा तो इन सबकी प्राप्ति नहीं होगी और इनके अभाव में संयम व मोक्ष की आराधना कैसे होगी ? अतः व्यवहार नय से पुण्य उपादेय है। ज्योंहि मंजिल प्राप्त होती है, सीढियाँ स्वतः छूट जाती है, इसी प्रकार जीव पुण्य से समस्त अनुकूलताओं के प्राप्त होने पर मोक्षमार्ग पर गतिशील हो जाता है, तब पुण्य सोने की बेडी रूप होने से हेय अर्थात् त्याग करने योग्य होता है।

५८) आश्रव तत्त्व को हेय क्यों कहा गया ?

उत्तर : आत्मा के अंदर अनवरत रूप से शुभाशुभ कर्मों का आगमन होने से आत्मिक गुण आवृत्त होते जाते हैं, जिससे जीव को स्वयं के स्वरूप का भान नहीं रहता, अतः आश्रव तत्त्व हेय है।

५९) संवर तत्त्व उपादेय क्यों है ?

उत्तर : आते हुए कर्मों को रोकने से आत्मा के गुण अनावृत्त होते हैं, जिससे जीव का निजस्वरूप प्रकट होने लगता है, अतः संवर तत्त्व उपादेय है।

६०) निर्जरा तत्त्व की उपादेयता क्यों है ?

उत्तर : पुराने बंधे हुए कर्मों को आत्मा से विलग निर्जरा तत्त्व द्वारा किया जाता है। जैसे-जैसे कर्मों की निर्जरा होती है, वैसे-वैसे आत्म स्वरूप प्रकट होता जाता है, इसलिये निर्जरा तत्त्व उपादेय है।

६१) मोक्ष तत्त्व उपादेय क्यों है ?

उत्तर : कर्मो का संपूर्ण क्षय होना मोक्ष है। जब मोक्ष प्राप्त होता है, तो जीव अपने संपूर्ण शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। उसमें किसी भी प्रकार का कर्म विकार रूप मल नहीं रहता। इस अमल-निर्मल तथा संपूर्ण

आत्मदशा को प्राप्त होने का नाम ही मोक्ष है। अतः मोक्ष तत्त्व चरम एवं परमश्रेष्ठ होने से उपादेय है।

६२) नवतत्त्वों में संख्याभेद किस प्रकार से है ?

उत्तर : नवतत्त्वों का एक दूसरे में समावेश होने से सात, पांच अथवा दो तत्त्व भी होते हैं।

- पुण्य तथा पाप को आश्रव तत्त्व में समाविष्ट करने पर तत्त्व सात होते हैं।
- आश्रव, पुण्य तथा पाप, इन तीनों तत्त्वों को बंध में गिनने पर व निर्जरा व मोक्ष को एक ही गिनने पर तत्त्व पांच होते हैं।
- संवर, निर्जरा तथा मोक्ष, ये तीन तत्त्व जीव के स्वभाव रूप होने से जीव तत्त्व में इन तीनों का समावेश हो जाता है। पुण्य, पाप, आश्रव तथा बन्ध, ये चारों तत्त्व कर्म परिणाम रूप होने से इनका समावेश अजीव तत्त्व में हो जाता है। इस प्रकार ४ तत्त्व जीव व ५ तत्त्व अजीव स्वभावी है। इस विवक्षा से नौ तत्त्व के जीव तथा अजीव, ये दो ही भेद रह जाते हैं।

६३) नवतत्त्वों में रूपी तत्त्व कितने हैं ?

उत्तर : रूपी तत्त्व ६ हैं - १. जीव, २. अजीव, ३. पुण्य, ४. पाप, ५. आश्रव, ६. बंध।

६४) नवतत्त्वों में अरूपी तत्त्व कितने है ?

उत्तर : अरूपी तत्त्व ५ है - १. जीव, २. अजीव, ३. संवर, ४. निर्जरा, ५. मोक्ष।

६५) रूपी तथा अरूपी किसे कहते है ?

उत्तर : जिसमें रूप, रस, गंध व स्पर्श पाये जाते हैं, वह पदार्थ रूपी कहलाता है तथा जिसमें इन चारों का अभाव हो, वह अरूपी कहलाता है।

६६) जीव रूपी है या अरूपी ?

उत्तर : निश्चय नय से आत्मा शुद्ध स्वरूपी होने से अरूपी है परंतु व्यवहार नय की अपेक्षा से संसार में कर्म संयोग से नानाविध योनियों में भ्रमण

करने वाला व विभिन्न देह धारण करने वाला होने से जीव रूपी भी है।

६७) अजीव तत्त्व को रूपी व अरूपी दोनों क्यों कहा ?

उत्तर : अजीव तत्त्व के भेदों में पुद्गल के ४ भेद रूपी हैं, इसलिये रूपी तथा बाकी के १० भेद अरूपी हैं, अतः अरूपी कहा है।

६८) नवतत्त्वों के कुल कितने भेद हैं ?

उत्तर : नवतत्त्वों के कुल २७६ भेद इस प्रकार हैं - जीव-१४, अजीव-१४, पुण्य-४२, पाप-८२, आश्रव-४२, संवर-५७, निर्जरा-१२, बंध-४, मोक्ष-९।

६९) नवतत्त्वों के २७६ भेदों में से हेय के भेद कितने हैं ?

उत्तर : हेय के १७० भेद हैं - पुण्य-४२, पाप-८२, आश्रव-४२ तथा बंध-४।

७०) नवतत्त्वों २७६ भेदों में से उपादेय के भेद कितने हैं ?

उत्तर : उपादेय के भेद १२० हैं - पुण्य-४२, संवर-५७, निर्जरा-१२, मोक्ष-९।

७१) नवतत्त्वों के २७६ भेदों में से ज्ञेय के भेद कितने हैं ?

उत्तर : २८ भेद ज्ञेय के हैं - जीव-१४, अजीव-१४।

७२) नवतत्त्व के २७६ भेदों में से जीव के भेद कितने हैं ?

उत्तर : जीव के भेद ९२ है - जीव-१४, संवर-५७, निर्जरा-१२, मोक्ष-९।

७३) नवतत्त्व के २७६ भेदों में से अजीव के भेद कितने हैं ?

उत्तर : १८४ भेद अजीव के हैं - अजीव-१४, पुण्य-४२, पाप-८२, आश्रव-४२, बंध-४।

७४) नवतत्त्व के २७६ भेदों में से रुपी के भेद कितने हैं ?

उत्तर : रुपी के १८८ भेद हैं - जीव-१४, अजीव-४, पुण्य-४२, पाप-८२, आश्रव-४२, बंध-४।

७५) नवतत्त्व के २७६ भेदों में से अरुपी के कितने भेद हैं ?

उत्तर : अरुपी के १०२ भेद हैं - जीव-१४, अजीव-१०, संवर-५७, निर्जरा-१२, मोक्ष-९।

१. जीव तत्त्व का विवेचन

७६) संसारी जीवों के विभिन्न अपेक्षाओं से कौन-कौन से भेद होते हैं ?

उत्तर : संसारी जीवों के विभिन्न अपेक्षाओं से ६ प्रकार के भेद नवतत्त्व में उल्लिखित हैं ।

७७) छह प्रकार के भेदों को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर : १. समस्त जीवों का मति व श्रुतज्ञान का अनन्तवां भाग प्रकट होने से समस्त जीव चैतन्यलक्षण से युक्त है । इस चेतना लक्षण द्वारा सभी जीव एक प्रकार के है ।

२. संसारी जीवों के त्रस तथा स्थावर ये दो भेद होने से जीव २ प्रकार के है । त्रस व स्थावर इन दो भेदों में सभी संसारी जीवों का समावेश हो जाता है ।

३. वेद की अपेक्षा से समस्त संसारी जीव ३ प्रकार के हैं । कोई जीव स्त्रीवेद वाला है, कोई पुरुषवेद वाला है तो कोई नपुंसक वेद वाला है । इन तीनों वेद में समस्त संसारी जीव समाविष्ट हो जाते हैं ।

४. चार गतियों की अपेक्षा से संसारी जीव के ४ प्रकार है । नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य तथा देव, इन चार गतियों से अलग किसी जीव का अस्तित्व नहीं है ।

५. इन्द्रियों की अपेक्षा से संसारी जीवों के ५ भेद हैं । एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय, इन पांच भेदों में संसार की समस्त जीव राशि समाविष्ट है ।

६. षट्काय की अपेक्षा से संसारी जीवों के ६ प्रकार हैं । पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय, इन षट्काय में समस्त संसारी जीव समाहित हो जाते हैं ।

७८) त्रस किसे कहते है ?

उत्तर : त्रस नाम कर्म के उदय से जो जीव सर्दी-गर्मी से बचने के लिये गमनागमन कर सके, उसे त्रस कहते है ।

७९) स्थावर किसे कहते है ?

उत्तर : स्थावर नाम कर्म के उदय से जो जीव दुःख अथवा कष्ट से बचने के लिये गमनागमन न कर सके, उन्हें स्थावर कहते है ।

८०) स्थावरकायिक जीवों के कितने भेद है ?

उत्तर : स्थावरकायिक जीवों के ५ भेद है – १. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, ३. तेउकाय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय ।

८१) पृथ्वीकाय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव की काया (शरीर) पृथ्वी रूप हो, उसे पृथ्वीकाय कहते है । जैसे पाषाण, धातुएँ इत्यादि ।

८२) अप्काय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव का शरीर जल रूप हो, उसे अप्काय कहते है । जैसे पानी, ओला, बर्फ आदि ।

८३) तेउकाय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव की काया अग्नि रूप हो, उसे तेउकाय कहते है । जैसे अंगारा, ज्वाला, बिजली आदि ।

८४) वायुकाय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव का शरीर वायु रूप हो, उसे वायुकाय कहते है ।

८५) वनस्पतिकाय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव का शरीर वनस्पति रूप हो, उसे वनस्पतिकाय कहते है । जैसे फल, फूल, लकडी, पत्रादि ।

८६) त्रस जीवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर : त्रस जवों के ४ भेद हैं – १. द्वीन्द्रिय, २. त्रीन्द्रिय, ३. चतुरिन्द्रिय, ४. पंचेन्द्रिय ।

८७) इन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जीव के चिन्ह को अथवा जिनकी उपस्थिति से आत्मा की पहचान व अभिव्यक्ति हो, उसे इन्द्रिय कहते हैं ।

८८) एकेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिन जीवों के केवल त्वचा रूप स्पर्शनेन्द्रिय ही होती है, वे जीव

एकेन्द्रिय कहलाते हैं। पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु तथा वनस्पति, ये पांच भेद एकेन्द्रिय के हैं।

८९) बेइन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिनके स्पर्शनेन्द्रिय तथा रसनेन्द्रिय रूप दो इन्द्रियाँ होती हैं, वे जीव बेइन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे शंख, सीप, लट, कोडी आदि।

९०) त्रीन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिनके स्पर्शन, रसना तथा घ्राण, ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं, वे जीव त्रीन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे खटमल, जूँ, चींटी, कीडे, मकोडे आदि।

९१) चतुरिन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ होती है, वे जीव चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे बिच्छू, भौंरा, मक्खी, मच्छर आदि।

९२) पंचेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र (कान) ये पांचों इन्द्रियाँ होती है, वे जीव पंचेन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे गाय, बैल, घोडा, मनुष्य, देवादि।

९३) स्पर्शनेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : त्वचा, जिस के माध्यम से जीव को स्पर्शत्व संबंधी आठ प्रकार का यथायोग्य ज्ञान हो, उसे स्पर्शनेन्द्रिय कहते है।

९४) रसनेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जीभ, जिस के माध्यम से मधुर, अम्ल आदि का ज्ञान हो, उसे रसनेन्द्रिय कहते है।

९५) घ्राणेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : नाक, जिसके माध्यम से सुरभि-दुरभि गंध का अनुभव होता है, उसे घ्राणेन्द्रिय कहते हैं।

९६) चक्षुरिन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : चक्षु, जिसके माध्यम से कृष्ण, नील आदि रूपत्व का ज्ञान होता है, उसे चक्षुरिन्द्रिय कहते हैं।

९७) श्रोत्रेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : कान, जिसके माध्यम से शब्दत्व संबंधी ज्ञान होता है, उसे श्रोतेन्द्रिय कहते हैं ।

९८) स्पर्शनेन्द्रिय के कितने विषय है ?

उत्तर : स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय हैं - १. मृदु, २. कर्कश, ३. गुरु, ४. लघु, ५. स्निग्ध, ६. रूक्ष, ७. शीत, ८. उष्ण ।

९९) रसनेन्द्रिय के कितने विषय हैं ?

उत्तर : रसनेन्द्रिय के ५ विषय हैं - १. मधुर, २. अम्ल, ३. कषाय, ४. कटु, ५. तिक्त ।

१००) घ्राणेन्द्रिय के कितने विषय हैं ?

उत्तर : घ्राणेन्द्रिय के दो विषय हैं - १. सुरभि गंध, २. दुरभि गंध ।

१०१) चक्षुरिन्द्रिय के कितने विषय हैं ?

उत्तर : चक्षुरिन्द्रिय के ५ विषय हैं - १. कृष्ण, २. नील, ३. रक्त, ४. पीत, ५. श्वेत ।

१०२) श्रोत्रेन्द्रिय के कितने विषय हैं ?

उत्तर : श्रोत्रेन्द्रिय के तीन विषय है – १. जीव शब्द, २. अजीव शब्द, ३. मिश्र शब्द ।

१०३) एकेन्द्रिय में कितने विषय पाये जाते हैं ?

उत्तर : एकेन्द्रिय में एक स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय पाये जाते हैं ।

१०४) बेइन्द्रिय में कितने विषय पाये जाते हैं ?

उत्तर : बेइन्द्रिय में स्पर्शनेन्द्रिय के ८ और रसनेन्द्रिय के ५ इस तरह कुल १३ विषय पाते हैं ।

१०५) तेइन्द्रिय में कितने विषय पाये जाते हैं ?

उत्तर : तेइन्द्रिय में पन्द्रह विषय पाये जाते हैं - स्पर्शनेन्द्रिय के ८, रसनेन्द्रिय के ५ और घ्राणेन्द्रिय के २ ।

१०६) चउरिन्द्रिय में कितने विषय पाये जाते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त १५ एवं चक्षुइन्द्रिय के ५, ये कुल बीस विषय चउरिन्द्रिय में

पाये जाते हैं ।

१०७) पंचेन्द्रिय में कितने विषय पाये जाते हैं ?

उत्तर : पंचेन्द्रिय में पांचों इन्द्रियों के कुल २३ विषय पाये जाते हैं ।

१०८) शरीर में शीत क्या है ?

उत्तर : शरीर में कान की लोल शीत है ।

१०९) शरीर में उष्ण क्या है ?

उत्तर : शरीर में उष्ण कलेजा है ।

११०) शरीर में स्निग्ध क्या है ?

उत्तर : शरीर में स्निग्ध आँख की कीकी है ।

१११) शरीर में रूक्ष क्या है ?

उत्तर : शरीर में रूक्ष जीभ है ।

११२) शरीर में लघु (हल्का) क्या है ?

उत्तर : शरीर में लघु (हल्का) केश है ।

११३) शरीर में गुरु (भारी) क्या है ?

उत्तर : शरीर में गुरु (भारी) अस्थि है ।

११४) शरीर में कर्कश (खुरदरा) क्या है ?

उत्तर : शरीर में कर्कश (खुरदरा) पाँव की एडी है ।

११५) शरीर में कोमल (मृदु) क्या है ?

उत्तर : शरीर में कोमल (मृदु) गले का तालवा है ।

११६) इन्द्रियों के विषय किसे कहते हैं ?

उत्तर : पांच इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा के अनुभव में आने वाले पुद्‌गल के स्वरूप को इन्द्रियों का विषय कहते हैं ।

११७) इन्द्रिय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : सामान्य रूप से इन्द्रिय के दो भेद है - १. द्रव्येन्द्रिय, २. भावेन्द्रिय।

११८) द्रव्येन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : नाक, कान आदि इन्द्रियों की बाहरी तथा भीतरी पौद्‌गलिक संरचना को द्रव्येन्द्रिय कहते है ।

११९) द्रव्येन्द्रिय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय, (२) उपकरण द्रव्येन्द्रिय ।

१२०) निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : इन्द्रिय की रचना-विशेष को निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय कहते है ।

१२१) निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय के कितने भेद है ?

उत्तर : दो भेद हैं - १. बाह्य निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय, २. आभ्यंतर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय।

१२२) बाह्य-निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : इन्द्रियों के बाह्य भिन्न-भिन्न आकार को बाह्य निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय कहते हैं ।

१२३) आभ्यंतर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : उत्सेधांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और प्रतिनियत चक्षु आदि इन्द्रियों के आकार रूप से अवस्थित शुद्ध आत्म प्रदेशों की रचना को आभ्यन्तर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय कहते है ।

१२४) उपकरण द्रव्येन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : आभ्यन्तर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय के भीतर अपने-अपने विषय को ग्रहण करने में समर्थ पौद्‌गलिक शक्ति को उपकरण-द्रव्येन्द्रिय कहते है ।

१२५) उपकरण द्रव्येन्द्रिय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो (१) बाह्य उपकरण द्रव्येन्द्रिय, (२) आभ्यंतर उपकरण द्रव्येन्द्रिय ।

१२६) बाह्य उपकरण द्रव्येन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : इन्द्रिय की आभ्यंतर आकृति-विशेष को बाह्य उपकरण द्रव्येन्द्रिय कहते हैं ।

१२७) आभ्यंतर उपकरण द्रव्येन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : इन्द्रिय की आभ्यंतर आकृति में रही हुई विषय ग्रहण करने की शक्ति को आभ्यंतर उपकरण द्रव्येन्द्रिय कहते हैं ।

१२८) आभ्यंतर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय तथा उपकरण द्रव्येन्द्रिय में क्या भेद हैं ?

उत्तर : आभ्यन्तर निर्वृत्ति है आकार और उपकरण है उसके भीतर विद्यमान अपने अपने विषयों को ग्रहण करने वाली पौद्‌गलिक शक्ति । वात-

पित्त आदि से उपकरण द्रव्येन्द्रिय नष्ट हो जाय तो आभ्यंतर द्रव्येन्द्रिय होने पर भी विषयों का ग्रहण नहीं होता। जैसे-बाह्य निर्वृत्ति है तलवार, आभ्यंतर निर्वृत्ति है तलवार की धार और उपकरण है - तलवार की छेदन-भेदन की शक्ति।

१२९) भावेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : आत्मा के परिणाम विशेष (जानने की योग्यता और प्रवृत्ति)-ज्ञान शक्ति को भावेन्द्रिय कहते है।

१३०) भावेन्द्रिय के भेद कितने हैं ?

उत्तर : भावेन्द्रिय के २ भेद हैं - लब्धि तथा उपयोग।

१३१) लब्धि भावेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने पर स्पर्शादि विषयों को जानने की शक्ति को लब्धि भावेन्द्रिय कहते हैं।

१३२) उपयोग भावेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त शक्ति की प्रवृत्ति को उपयोग भावेन्द्रिय कहते हैं।

१३३) लब्धि व उपयोग में क्या अंतर है ?

उत्तर : चेतना की योग्यता लब्धि है और चेतना का व्यापार उपयोग है। लब्धि भावेन्द्रिय से जीवात्मा में आत्म स्वरुप का उतना प्रकट होना, जिससे वह स्पर्श-गन्ध-रूप-रसादि को जान सके। इस योग्यता के प्राप्त होने पर भी यह आवश्यक नहीं कि हम निरंतर उस विषय का ज्ञान करते रहे। जिस समय जिस इन्द्रिय को उपयोग में लाया जाता है, उस समय उसके द्वारा ज्ञान कर सकते हैं। यह उपयोग भावेन्द्रिय है। उदाहरणार्थ - दूरबीन खरीदने की शक्ति यह लब्धि है और दूर स्थित पदार्थों को देखना उपयोग है।

१३४) पांच इन्द्रियों का आभ्यन्तर आकार कैसा है ?

उत्तर : बाह्य आकार तो कान, नाक, आंख, जीभ, शरीर का अपना-अपना है। आभ्यन्तर आकार श्रोत्रेन्द्रिय का कदम्ब के फूल जैसा, चक्षुरिन्द्रिय का मसूर की दाल जैसा, घ्राणेन्द्रिय का अतिमुक्त पुष्प की चन्द्रिका जैसा,

रसनेन्द्रिय का खुरपे जैसा, स्पर्शनेन्द्रिय का शरीर के जैसा आकार है।

१३५) जीव के विभिन्न अपेक्षाओं से वर्गीकरण कीजिए।

उत्तर : १. एक की अपेक्षा से - चैतन्य लक्षण की अपेक्षा से समस्त जीव समान है।

२. दो की अपेक्षा से - १. त्रस, २. स्थावर।
१. संज्ञी, २. असंज्ञी।
१. सूक्ष्म, २. बादर।
१. पर्याप्त, २. अपर्याप्त।
१. व्यवहारराशि, २. अव्यवहारराशि।
१. आहारी, २. अणाहारी।

३. तीन की अपेक्षा से- १. पुरुषवेदी, २. स्त्रीवेदी, ३. नपुंसकवेदी।
१. भव्य, २. अभव्य, ३. जातिभव्य।

४. चार की अपेक्षा से -१. नारक, २. तिर्चञ्च, ३. मनुष्य, ४. देव।

५. पांच की अपेक्षा से - १. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. पंचेन्द्रिय।

६. छह की अपेक्षा से- १. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, ३. तेउकाय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय, ६. त्रसकाय।

७. सात की अपेक्षा से- १. सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २. बादर एकेन्द्रिय, ३. द्वीन्द्रिय, ४. त्रीन्द्रिय, ५. चतुरिन्द्रिय, ६. असंज्ञी पंचेन्द्रिय, ७. संज्ञी पंचेन्द्रिय।

८. आठ की अपेक्षा से- १. अण्डज, २. पोतज, ३. जरायुज, ४. रसज ५. संस्वेदज, ६. सम्मूर्च्छिमज, ७. उद्भिज, ८. उपपातज।

९. नौ की अपेक्षा से - १. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. असन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, ६. संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, ७. नारकी, ८. मनुष्य, ९. देव।

१०. दस प्रकार से – १. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, ३. तेउकाय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय, ६. द्वीन्द्रिय, ७. त्रीन्द्रिय, ८. चतुरिन्द्रिय, ९. असंज्ञी पंचेन्द्रिय, १०. संज्ञी पंचेन्द्रिय ।

११. ग्यारह प्रकार से – १. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, ३. तेउकाय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय, ६. द्वीन्द्रिय, ७. त्रीन्द्रिय, ८. चतुरिन्द्रिय, ९. पुरुषवेदी १०. स्त्रीवेदी, ११. नपुंसकवेदी (पंचेन्द्रिय)

१२. बारह प्रकार से – १. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, ३. तेउकाय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय, ६. त्रसकाय ये ६ पर्याप्त और ६ अपर्याप्ता = १२

१३. तेरह प्रकार से – १. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, ३. तेउकाय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय, ये ५ पर्याप्ता + ५ अपर्याप्ता = १० तथा ११. पुरुषवेदी, १२. स्त्रीवेदी, १३. नपुंसक वेदी (त्रस)

१४. चौदह प्रकार से – १. अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २. पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, ३. अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, ४. पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, ५. अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, ६. पर्याप्त द्वीन्द्रिय, ७. अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, ८. पर्याप्त त्रीन्द्रिय, ९. अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय, १०. पर्याप्त चतुरिन्द्रिय, ११. अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय, १२. पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय, १३. अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय, १४. पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय

१३६) अपर्याप्ता किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव के जितनी पर्याप्तियाँ होती हैं, उनको पूर्ण किये बिना ही जो मृत्यु को प्राप्त हो जाते है, वे जीव अपर्याप्ता कहलाते हैं ।

१३७) पर्याप्ता किसे कहते है ?

उत्तर : जिन जीवों के जितनी पर्याप्तियाँ होती है, उन स्वयोग्य पर्याप्तियाँ को पूर्ण कर मरने वाले जीव पर्याप्ता कहलाते हैं ।

१३८) अपर्याप्ता जीवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर : अपर्याप्ता जीवों के २ भेद हैं - १. लब्धि अपर्याप्ता, २. करण अपर्याप्ता।

१३९) पर्याप्ता जीवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पर्याप्ता जीवों के २ भेद हैं - १. लब्धि पर्याप्ता, २. करण पर्याप्ता ।

१४०) लब्धि अपर्याप्ता किसे कहते है ?

उत्तर : जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, वे जीव लब्धि अपर्याप्ता कहलाते हैं ।

१४१) करण अपर्याप्ता किसे कहते है ?

उत्तर : जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ वर्तमान में पूर्ण नहीं की है, वह जीव करण अपर्याप्ता कहलाता है ।

१४२) लब्धि पर्याप्ता किसे कहते है ?

उत्तर : स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करके मरने वाला जीव लब्धि पर्याप्ता कहलाता है ।

१४३) करण पर्याप्ता किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिन जीवों ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली है, वे जीव करण पर्याप्ता कहलाते हैं ।

१४४) लब्धि अपर्याप्ता जीव का काल कितना होता है ?

उत्तर : लब्धि अपर्याप्ता का काल जघन्य तथा उत्कृष्ट से एक अंतर्मुहूर्त्त का होता है ।

१४५) लब्धि पर्याप्ता जीव का काल कितना होता है ?

उत्तर : जीव के पूर्वभव का आयुष्य पूर्ण करने के पश्चात् प्रथम समय से स्वयं के उस भव तक जितना आयुष्य है, उतना काल लब्धि पर्याप्ता का कहलाता है ।

१४६) करण पर्याप्ता जीव का काल कितना होता है ?

उत्तर : जीव के स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के बाद स्वयं का जितना आयुष्य है, उतना पूर्ण करने तक का काल करण पर्याप्ता कहलाता है ।

१४७) करण अपर्याप्ता जीव का काल कितना होता है ?

उत्तर : जो काल लब्धि पर्याप्ता जीवों का है, उसमें अपर्याप्त अवस्था वाला एक अंतर्मुहूर्त्त का काल करण अपर्याप्ता जीवों का काल कहलाता है।

१४८) प्रत्येक जीव नियमतः कितनी पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के बाद मरण को प्राप्त होता है ?

उत्तर : प्रत्येक जीव कम से कम तीन पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के बाद ही मृत्यु को प्राप्त होता है । क्योंकि तीन पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना जीव के परभव का आयुष्य नहीं बंधता है । जब तक आयुष्य बंध नहीं होता तब तक जीव मरण को भी प्राप्त नहीं होता । प्रत्येक अपर्याप्त जीव प्रथम ३ पर्याप्तियाँ तथा पर्याप्त जीव स्वयोग्य चार-पांच अथवा छह पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के बाद ही मरता है ।

१४९) पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : पर्याप्ति अर्थात् विशेष शक्ति-सामर्थ्य । जीवन जीने के लिये उपयोगी पुद्गलों को ग्रहण कर उनका परिणमन करने की आत्मा की शक्ति विशेष को पर्याप्ति कहते है ।

१५०) पर्याप्तियाँ कितनी व कौन-कौन सी हैं ?

उत्तर : पर्याप्तियाँ छह हैं - १. आहार पर्याप्ति, २. शरीर पर्याप्ति, ३. इन्द्रिय पर्याप्ति, ४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, ५. भाषा पर्याप्ति, ६. मनः पर्याप्ति ।

१५१) आहार पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जीव जिस शक्ति के द्वारा आहार के पुद्गलों को ग्रहण कर खल-रस रूप में परिणत करता है, उसे आहार पर्याप्ति कहते है । इसका काल एक समय का ही है ।

१५२) शरीर पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : रस रूप आहार के पुद्गलों को जिस शक्ति द्वारा जीव सप्त धातुओं के रूप में परिणमित करता है, उसे शरीर पर्याप्ति कहते है। इसका काल औदारिक तथा वैक्रिय शरीर वाले जीवों के असंख्यात समय वाले अंतर्मुहूर्त्त का होता है।

१५३) इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जीव जिस शक्ति के द्वारा धातुरूप में परिणत हुए आहार को इन्द्रिय रूप में परिणमित करता है, उसे इन्द्रिय पर्याप्ति कहते है।

१५४) इन्द्रिय पर्याप्ति का काल कितना है ?

उत्तर : वैक्रिय शरीर वाले जीवों को एक समय का तथा औदारिक शरीर वाले जीवों को असंख्यात समय वाले अन्तर्मुहूर्त्त का काल होता है।

१५५) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शक्ति के द्वारा जीव श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण करके उन्हें श्वासोच्छ्वास के रूप में परिणमन कर विसर्जन करता है, उसे श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते है।

१५६) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति का काल कितना है ?

उत्तर : औदारिक शरीर वाले जीवों को एक अंतर्मुहूर्त्त की तथा वैक्रिय शरीर वाले जीवों को एक समय की श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति होती है।

१५७) भाषा पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जीव जिस शक्ति के द्वारा भाषायोग्य पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण करके, भाषा रूप में परिणमन कर विसर्जित करता है, उसे भाषा पर्याप्ति कहते है।

१५८) भाषा पर्याप्ति का काल कितना है ?

उत्तर : औदारिक शरीर वाले जीवों को एक अंतर्मुहूर्त्त का तथा वैक्रिय शरीर वाले जीवों का एक समय का काल शास्त्र में वर्णित है।

१५९) मनःपर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर : जीव जिस शक्ति के द्वारा मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर मन के रूप में परिणत कर विसर्जन करता है, उसे मनः पर्याप्ति कहते है।

१६०) मनः पर्याप्ति का काल कितना है ?

उत्तर : औदारिक शरीर वाले जीवों को एक अंतर्मुहूर्त्त का तथा वैक्रिय शरीर वाले जीवों को एक समय का काल मनोपर्याप्ति का होता है ।

१६१) एकेन्द्रिय जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उत्तर : एकेन्द्रिय जीवों के ४ पर्याप्तियाँ होती हैं - १. आहार पर्याप्ति, २. शरीर पर्याप्ति, ३. इन्द्रिय पर्याप्ति, ४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति ।

१६२) विकलेन्द्रिय जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उत्तर : विकलेन्द्रिय जीवों के ५ पर्याप्तियाँ होती हैं – १. आहार पर्याप्ति, २. शरीर पर्याप्ति, ३. इन्द्रिय पर्याप्ति, ४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, ५. भाषा पर्याप्ति ।

१६३) विकलेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : जो त्रसकाय की श्रेणी में आते है, तथा जिन्हें विकल अर्थात् एक से अधिक व पाँच से न्यून इन्द्रियाँ प्राप्त हुई हैं, ऐसे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों को सामूहिक रूप में विकलेन्द्रिय कहते हैं ।

१६४) असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उत्तर : मनः पर्याप्ति के अतिरिक्त पांच पर्याप्तियाँ होती हैं ।

१६५) असंज्ञी किसे कहते है ?

उत्तर : जो जीव मन रहित होते हैं अर्थात् जिनके मनःपर्याप्ति नहीं होती, वे जीव असंज्ञी कहलाते है ।

१६६) संज्ञी किसे कहते है ?

उत्तर : जिनके दीर्घकालिकी संज्ञा हो अर्थात् जो मन सहित होते हैं, वे जीव संज्ञी कहलाते है ।

१६७) संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उत्तर : संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को छहों पर्याप्तियाँ होती हैं ।

१६८) कौन-कौन से जीव असंज्ञी कहलाते हैं ?

उत्तर : एकेन्द्रिय, (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय), द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीव असंज्ञी

कहलाते हैं ।

१६९) संज्ञी-असंज्ञी जीव कहाँ-कहाँ हैं ?

उत्तर : मात्र पंचेन्द्रिय में ही संज्ञी और असंज्ञी, दोनों होते हैं । शेष सभी जीव असंज्ञी (मन रहित) ही हैं ।

१७०) सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : माता-पिता के संयोग बिना जन्म योग्य जलादि सामग्री से एकाएक (स्वतः) उत्पन्न होने वाले मेंढक, मछली आदि तिर्चञ्च पंचेन्द्रिय तथा मनुष्य के मल, मूत्रादि १४ अशुचि स्थानों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय जीव सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय कहलाते हैं । ये जीव नियमतः बादर ही होते हैं । इन समस्त सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीवों को मन नहीं होने से असंज्ञी पंचेन्द्रिय भी कहा जाता है ।

१७१) १४ अशुचि स्थान कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : १. मल, २. मूत्र, ३. कफ, ४. नाक का मल, ५. वमन, ६. पित्त, ७. मवाद, ८. रुधिर, ९. वीर्य, १०. त्याग किये गये वीर्य के पुद्गल, ११. मूर्दा शरीर, १२. परस्पर संयोग में, १३. मैल, १४. पसीना एवं समस्त गंदी नालियाँ ।

१७२) बादर जीव किसे कहते है ?

उत्तर : जो बादर नाम कर्म के उदय से बादर शरीर में रहते है तथा जो काटने से कट जाय, छेदने से छिद जाय, भेदने से भिद जाय, अग्नि से जल जाय, पानी से बह जाय तथा छद्मस्थ को इन्द्रियगोचर हो, अथवा यंत्र द्वारा दिखाई दे, वे जीव बादर कहलाते है ।

१७३) बादर के कितने भेद हैं ?

उत्तर : बादर के दो भेद है - साधारण तथा प्रत्येक ।

१७४) साधारण किसे कहते है ?

उत्तर : निगोद को साधारण कहते है । जहाँ एक शरीर में अनंत जीव निवास करते है, उसे भी साधारण कहते है । जैसे आलू, प्याज आदि जमीनकंद ।

१७५) प्रत्येक किसे कहते है ?

उत्तर : जहाँ एक शरीर में एक ही जीव निवास करता है, उसे प्रत्येक कहते है। जैसे आम, अंगूर आदि।

१७६) निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक शरीर को आश्रय करके अनंत जीव जिसमें रहते हैं, अर्थात् एक ही शरीर में अनंत जीवों का एक समान ही आहार, आयु, श्वासोच्छ्वास आदि हो, वे निगोद के जीव कहलाते हैं।

१७७) निगोद के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो भेद है - सूक्ष्म तथा बादर।

१७८) बादर निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर : बादर अर्थात् स्थूल। जिस स्थूल शरीर में अनंत जीव रहते हो, वह बादर निगोद है।

१७९) सूक्ष्म निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर : जहाँ एक शरीर में अनंत जीव रहते हो और वे चर्म चक्षुओं से अथवा यंत्र से दिखाई न देते हो, केवली भगवान को ही ज्ञानगम्य हो, उसे सूक्ष्म निगोद कहते है।

१८०) निगोद का जीव एक श्वासोच्छ्वास में कितने भव करता हैं ?

उत्तर : निगोद का जीव एक श्वासोच्छ्वास में साढे सत्रह भव अर्थात् १८ बार जन्म तथा १७ बार मृत्यु को प्राप्त करता है।

१८१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्ता तथा पर्याप्ता जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिन जीवों के बहुत सारे शरीर इकट्ठे होने पर भी दृष्टिगोचर या यंत्र द्वारा दिखाई नहीं देते हैं, स्पर्श से भी नहीं जाने जाते, ऐसे पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु तथा वनस्पतिकाय के जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कहे जाते हैं।

जिस प्रकार अंजन की डिब्बी में अंजन भरा हुआ होता है, उसी प्रकार ये सूक्ष्म जीव संपूर्ण लोकाकाश में ठूंस-ठूंस कर भरे हुए हैं। इन जीवों का शस्त्रादि से छेदन-भेदन या अग्नि से प्रज्वलन असंभव है। सूक्ष्म नामकर्म के उदय से ये अदृश्य ही रहते हैं। इनकी हिंसा मानसिक

संकल्प से ही संभव है। इन जीवों के केवल स्पर्शनेन्द्रिय ही होती है। ये जीव अगर ४ पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व ही मर जाते हैं, तो अपर्याप्ता और ४ पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के पश्चात् मरते हैं, तो पर्याप्ता कहलाते हैं।

१८२) सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्ता तथा पर्याप्ता जीव कहाँ रहते हैं ?

उत्तर : संपूर्ण लोकाकाश में।

१८३) बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्ता तथा पर्याप्ता जीव से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : जिन जीवों के बहुत सारे शरीर एकत्रित होने पर चक्षुगोचर या यंत्रगोचर होते हैं, ऐसे बादर नाम कर्म वाले पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु तथा वनस्पतिकाय के जीव बादर एकेन्द्रिय कहलाते हैं। इन जीवों का छेदन-भेदन तथा अग्नि, जलादि द्वारा हनन भी होता है। ये बादर एकेन्द्रिय जीव मनुष्य के भोग-उपभोग में बहुत ही उपकारी बनते हैं। इन्हीं के उपकार से मनुष्य को अन्न, जल, फल, वस्त्रादि की प्राप्ति होती है। स्पर्शनेन्द्रिय से युक्त ये जीव यदि ४ पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना मरते हैं तो अपर्याप्ता तथा पूर्ण करके मरते हैं तो पर्याप्ता बादर एकेन्द्रिय कहलाते हैं।

१८४) अपर्याप्ता तथा पर्याप्ता बादर एकेन्द्रिय जीव कितने स्थान में होते हैं ?

उत्तर : लोक के असंख्यातवें भाग में।

१८५) अपर्याप्ता तथा पर्याप्ता द्वीन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्पर्श तथा रसना, इन दो इन्द्रियों वाले जीवों को बेइन्द्रिय कहा जाता है। ये जीव केवल बादर ही होते हैं। ऐसे जीव स्वयोग्य ५ पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व मरते हैं, तो अपर्याप्त तथा पूर्ण करके मरते हैं, तो पर्याप्त द्वीन्द्रिय कहलाते हैं।

१८६) अपर्याप्ता तथा पर्याप्ता त्रीन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्पर्श, रस तथा घ्राण, इन तीन इन्द्रियों से युक्त जीव त्रीन्द्रिय कहलाता है। ये जीव स्वयोग्य ५ पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व मृत्यु को प्राप्त करे तो अपर्याप्ता और पूर्ण करके मरे तो पर्याप्ता त्रीन्द्रिय कहलाते हैं।

१८७) अपर्याप्ता तथा पर्याप्ता चतुरिन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर : स्पर्श, रस, घ्राण तथा चक्षु, इन चार इन्द्रियों से युक्त जीवों को चतुरिन्द्रिय कहा जाता हैं। ये जीव अगर स्वयोग्य ५ पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व मर जाते हैं तो अपर्याप्ता तथा पूर्ण करने के पश्चात् मरते हैं तो पर्याप्ता चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं।

१८८) क्या विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) जीव सूक्ष्म नहीं होते ?

उत्तर : नहीं। विकलेन्द्रिय जीव त्रसकायिक होने से इनके सूक्ष्म नाम कर्म का उदय नहीं होता। ये केवल बादर ही होते हैं। सूक्ष्म नाम कर्म का उदय केवल स्थावरकायिक एकेन्द्रिय जीवों को ही होता हैं।

१८९) असंज्ञी पंचेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : संमूर्च्छिम मनुष्य तथा सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं। इन जीवों के पांचों ही इन्द्रियाँ होती हैं परंतु विशिष्ट मनोविज्ञान से रहित होने के कारण ये असंज्ञी कहलाते हैं। ये जीव यदि स्वयोग्य ५ पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व ही मर जाते हैं तो अपर्याप्ता असंज्ञी तथा पूर्ण करने के पश्चात् मरते हैं तो पर्याप्ता असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं। संमूर्च्छिम मनुष्य नियमा अपर्याप्ता ही होते हैं।

१९०) संज्ञी पंचेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो जीव माता-पिता के संयोग से गर्भ में उत्पन्न होते है, ऐसे मनुष्य तथा तिर्यञ्च व उपपात जन्म धारण करने वाले नारक तथा देव संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं। इन जीवों के ५ इन्द्रियाँ तथा मन सहित ६ पर्याप्तियाँ होती है। ये जीव यदि मरण से पूर्व स्वयोग्य ६ पर्याप्तियाँ पूर्ण करते है तो पर्याप्ता और यदि पूर्ण नहीं करते हैं, तो अपर्याप्ता संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं।

१९१) जीव का जन्म कितने प्रकार से होता हैं ?

उत्तर : जीव का जन्म तीन प्रकार से होता है – १. सम्मूर्च्छन, २. गर्भज, ३. उपपात।

१९२) कौन से जीव सम्मूर्च्छिम कहलाते हैं ?

उत्तर : जो माता-पिता के संयोग बिना अन्य बाह्य संयोग से उत्पन्न होते हैं, वे सम्मूर्च्छिम कहलाते हैं।

१९३) कौनसे जीव गर्भज कहलाते हैं ?

उत्तर : जो माता-पिता का संयोग होने पर गर्भ से उत्पन्न होते हैं, वे जीव गर्भज कहलाते हैं ।

१९४) उपपात जन्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो जीव उत्पत्ति स्थान में रहे हुए वैक्रिय पुद्गलों को सर्वप्रथम ग्रहण करके उत्पन्न होते हैं, उनका जन्म उपपात कहलाता हैं ।

१९५) कौन-कौन से जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता हैं ?

उत्तर : १. एकेन्द्रिय (पृथ्वी आदि ५ स्थावर काय), २. विकलेन्द्रिय, तथा ३. असंज्ञी पंचेन्द्रिय ।

१९६) कौन-कौन से जीव गर्भज जन्म की श्रेणी में होते हैं ?

उत्तर : संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य ।

१९७) किनका उपपात जन्म होता हैं ?

उत्तर : देवों तथा नारकी जीवों का उपपात जन्म ही होता हैं ।

१९८) जीव के लक्षण कितने व कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : जीव के लक्षण ६ है - १. ज्ञान, २. दर्शन, ३. चारित्र, ४. तप, ५. वीर्य, ६. उपयोग ।

१९९) लक्षण किसे कहते हैं ?

उत्तर : पदार्थ के असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं ।

२००) असाधारण धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो गुण उसी वस्तु में संपूर्ण रूप से रहता हो और उससे बाहर अन्य किसी में न पाया जाता हो, उसे असाधारण धर्म कहते हैं ।

२०१) ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके द्वारा वस्तु को जाना जाता है, वह ज्ञान कहलाता हैं ।

२०२) दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : वस्तु के सामान्य धर्म को जानने की शक्ति को दर्शन कहते हैं ।

२०३) वस्तु में कितने प्रकार के धर्म हैं ?

उत्तर : वस्तु में दो प्रकार के धर्म है - १. सामान्य धर्म, २. विशेष धर्म ।

२०४) साकारोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर : जिसके द्वारा विशेष धर्म का बोध हो, वह ज्ञान साकारोपयोग है ।

२०५) साकारोपयोग के कितने भेद होते हैं ? कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : साकारोपयोग के निम्न आठ भेद होते हैं - (१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मनःपर्यवज्ञान (५) केवलज्ञान (६) मतिअज्ञान (७) श्रुतअज्ञान (८) विभंगज्ञान ।

२०६) निराकारोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके द्वारा वस्तु के सामान्य धर्म को जाना जाय, वह निराकारोपयोग हैं ।

२०७) निराकारोपयोग के कितने भेद होते हैं ? नाम लिखो ।

उत्तर : निराकारोपयोग के ४ भेद निम्नोक्त हैं – (१) चक्षुदर्शन (२) अचक्षुदर्शन (३) अवधिदर्शन (४) केवलदर्शन ।

२०८) चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : ज्ञानादि गुणों में रमणता प्राप्त करना अथवा आठ कर्मों को नष्ट करने के लिये यम-नियमादि शुभ आचरण का पालन करना चारित्र हैं ।

२०९) चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चारित्र के दो भेद हैं - १. द्रव्य चारित्र, २. भाव चारित्र ।

२१०) द्रव्य चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : व्यवहार में समस्त अशुभ तथा हिंसाजनक क्रियाओं का त्याग द्रव्य चारित्र हैं ।

२११) भावचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : हिंसादिक अशुभ तथा रौद्र परिणामों से अपने मन को पीछे हटाना या संयत करना भाव चारित्र हैं ।

२१२) तप किसे कहते हैं ?

उत्तर : इच्छाओं का अभाव होना अथवा अनशनादि शुभानुष्ठान के द्वारा आठ कर्मों का क्षय करना तप हैं ।

२१३) वीर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : आत्मा की शक्ति या पराक्रम को वीर्य कहते है ।

२१४) वीर्य कितने प्रकार का होता हैं ?

उत्तर : वीर्य दो प्रकार का होता है - १. लब्धि वीर्य, २. करण वीर्य ।

२१५) लब्धि वीर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : ज्ञान-दर्शन आदि के उपयोग में प्रवर्तित आत्मा का स्वाभाविक वीर्य लब्धि वीर्य कहलाता है ।

२१६) करण वीर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : मन-वचन-काया के आलंबन से प्रवर्तित होता वीर्य करण वीर्य कहलाता है ।

२१७) उपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके द्वारा ज्ञान तथा दर्शन गुण की प्रवृत्ति होती है, उसे उपयोग कहते हैं ।

२१८) जीव के लक्षण रूप ज्ञान व दर्शन में उपयोग का समावेश हो जाता हैं, फिर उपयोग को अलग से जीव का लक्षण बताने की क्या आवश्यकता हैं ?

उत्तर : परिभाषानुसार यदि देखा जाये तो ज्ञान, दर्शन तथा उपयोग में कोई भिन्नता नहीं हैं, परन्तु आंतरिक दृष्टि से देखा जाय तो हमे भिन्नता नजर आयेगी, क्योंकि किसी भी वस्तु के विशेष धर्म को जानने की आत्मा में रही हुई शक्ति, ज्ञान तथा सामान्य धर्म को जानने की आत्मा में रही हुई शक्ति, दर्शन, इन शक्तियों का व्यापार, इनका इस्तेमाल और उपयोग कहलाता हैं ।

२१९) सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रियादि जीवों में ज्ञानादि लक्षण कैसे संभव हैं ?

उत्तर : सूक्ष्म अपर्याप्त (निगोद) जीव को उत्पत्ति के प्रथम समय में भी मति तथा श्रुतज्ञान का अनन्तवाँ भाग उद्‌घाटित रहता है और प्रथम समय में भी वह श्रुतज्ञान एक पर्याय वाला नहीं अपितु अनेक पर्याय वाला होता हैं। वह मति तथा श्रुतज्ञान उस जीव में अस्पष्ट और वैसे ही आवृत्त हैं, जैसे मूर्च्छागत मनुष्य में ज्ञान। इसलिये उसमें ज्ञान लक्षण अवश्य होता हैं। ज्ञान की तरह दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य तथा उपयोग आदि

गुण भी हीनाधिक रूप से होते हैं। सत्ता मात्र से तो सूक्ष्म अपर्याप्त निगोद जीव को अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त तप, अनन्त वीर्य तथा अनन्त उपयोग होते हैं। परंतु कर्मावरण से वे गुण अल्परुप से ही प्रगट हो पाते हैं।

जिस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्ता जीव में ये अनंत छह लक्षण हैं, उसी प्रकार चौदह जीव भेदों में भी ये लक्षण होते हैं। जैसे ज्ञानादि गुण सिद्ध परमात्मा में है, वैसे ही सूक्ष्म निगोद से लेकर समस्त जीवों में है। सिद्धों में वे गुण सम्पूर्ण रूप से प्रगट है, जबकि १४ जीव भेदों में सत्तागत हैं अर्थात् अप्रगट है। वे ६ लक्षण जीव (चैतन्य) के अतिरिक्त अन्य किसी में भी नहीं पाये जाते तथा जीव में अवश्यमेव रहते हैं। अतः इन्हें जीव का लक्षण या असाधारण धर्म कहा गया है।

२२०) जीव के बाह्य लक्षण क्या हैं ?

उत्तर : १० प्रकार के द्रव्य प्राण जीव के बाह्य लक्षण हैं।

२२१) जीव के आंतरिक लक्षण क्या हैं ?

उत्तर : जीव के आंतरिक लक्षण अनंत ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप तथा वीर्य है। इन्हें भावप्राण भी कहा जाता है।

२२२) द्रव्य प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके द्वारा जीव जीवित रहता हैं, उसे द्रव्य प्राण कहते हैं।

२२३) द्रव्य प्राण कितने व कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : द्रव्य प्राण १० हैं - पांच इन्द्रिय प्राण - १. स्पर्श, २. रस, ३. घ्राण, ४. चक्षु, ५. श्रोत्र - तीन बल प्राण - ६. मनोबल प्राण, ७. वचनबल प्राण, ८. कायबल प्राण ९. श्वासोच्छ्वास प्राण १०. आयुष्य प्राण।

२२४) प्राण तथा पर्याप्ति में क्या अंतर हैं ?

उत्तर : पर्याप्ति प्राणों का कारण है तथा प्राण उसका कार्य हैं।

२२५) पर्याप्ति तथा प्राण का काल कितना होता हैं ?

उत्तर : पर्याप्ति का काल अन्तर्मुहूर्त का है, जबकि प्राण जीवन पर्यंत रहते हैं।

२२६) कौन सा प्राण किस पर्याप्ति द्वारा उत्पन्न होता है ?

उत्तर : ५ इन्द्रिय प्राण - मुख्य रूप से इन्द्रिय पर्याप्ति द्वारा ।

१. कायबल प्राण - मुख्य रूप से शरीर पर्याप्ति द्वारा ।

१. वचनबल प्राण - मुख्य रूप से भाषा पर्याप्ति द्वारा ।

१. मनोबल प्राण - मुख्य रूप से मनःपर्याप्ति द्वारा ।

१ श्वासोच्छ्वास प्राण - मुख्य रूप से श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति द्वारा ।

१ आयुष्य प्राण - इस में आहारादि पर्याप्ति सहचारी-उपकारी कारण रूप है ।

२२७) इन्द्रिय प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर : इन्द्रियों के द्वारा मिलने वाली शक्ति को इन्द्रिय प्राण कहते हैं ।

२२८) योग किसे कहते हैं ?

उत्तर : मन, वचन तथा काया के व्यापार को योग कहते हैं ।

२२९) बल प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर : तीन योग से मिलने वाली शक्ति-बल को बलप्राण कहते हैं ।

२३०) बल प्राण से क्या अभिप्राय हैं ?

उत्तर : १. मनोबल प्राण - विचार करने की शक्ति ।

२. वचनबल प्राण - बोलने की शक्ति ।

३. कायबल प्राण - शरीर की शक्ति ।

२३१) श्वासोच्छ्वास प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर : श्वासोच्छ्वास वर्गणा के पुद्गलों को शरीर में ग्रहण करने और बाहर निकालने की शक्ति को श्वासोच्छ्वास प्राण कहते हैं ।

२३२) आयुष्य प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके संयोग से एक शरीर में अमुक समय तक जीव रहता है तथा जिसके वियोग से जीव (आत्मा) उस शरीर में से निकल जाय, उसे आयुष्य प्राण कहते है ।

२३३) आयुष्य प्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर : आयुष्य प्राण के दो भेद हैं - १. द्रव्य आयुष्य, २. काल आयुष्य,

अन्य अपेक्षा से - १. अपवर्तनीय, २. अनपवर्तनीय ।

२३४) द्रव्य आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : आयुष्य कर्म के पुद्‌गल द्रव्य आयुष्य है ।

२३५) काल आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : उन पुद्‌गलों द्वारा जीव जितने समय तक अमुक एक भव में स्थित रहता है, उसका नाम काल आयुष्य है ।

२३६) अपवर्तनीय आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : आयुष्य कर्म के बंधे हुए पुद्‌गल किसी निमित्त अथवा शस्त्रादि के आघात आदि को प्राप्त कर शीघ्र क्षीण हो जाय अर्थात् अकाल मृत्यु की प्राप्ति होना, अपवर्तनीय आयुष्य है ।

२३७) अनपवर्तनीय आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : बंधे हुए आयुष्य में किसी प्रकार का परिवर्तन संभव न हो, जितना बांधा हो, उतना अवश्यमेव भोगना पडे, उसे अनपवर्तनीय आयुष्य कहते है ।

२३८) द्रव्य तथा काल आयुष्य को भोगे बिना क्या जीव की मृत्यु संभव है ?

उत्तर : इन दोनों में से जीव ने द्रव्य आयुष्य यदि अपर्वतनीय बांधा है तो द्रव्य आयुष्य अवश्य भोगता है परंतु काल आयुष्य पूर्ण करता है अथवा नहीं भी करता है । अपूर्ण काल में मृत्यु संभव है पर द्रव्य आयुष्य तो पूर्ण भोगना ही पडता है । और यदि द्रव्य आयुष्य अनपवर्तनीय बांधा है तो द्रव्य और काल, दोनों आयुष्य अवश्य भोगता है ।

२३९) अकाल मृत्यु होने पर द्रव्य आयुष्य को पूर्ण भोगना कैसे संभव है ?

उत्तर : द्रव्य आयुष्य के पुद्‌गल चूंकि अपवर्तनीय अर्थात् अकस्मात् किसी आघात से शीघ्र क्षय के स्वभाव वाले होने से अंतिम समय में एक ही साथ भोग लिये जाते है ।

२४०) अनपवर्तनीय आयुष्य किन-किन जीवों को प्राप्त होता है ?

उत्तर : ४ प्रकार के जीवों को अनपवर्तनीय आयुष्य की प्राप्ति होती है –

१. **उपपात जन्म वाले** - समस्त देव तथा नारकी जीव ।

२. चरम शरीरी - अंतिम शरीरी अर्थात् उसी भव में मोक्ष जाने वाले, आगे संसार में जन्म नहीं लेने वाले।

३. उत्तम पुरुष - अर्थात् त्रेसठशलाका पुरुष (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ बलदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव)

४. असंख्येयवर्षायुषी-असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले युगलिक तिर्यञ्च तथा युगलिक मनुष्य। शेष जीवों के अपवर्तनीय और अनपर्वतनीय, दोनों प्रकार के आयुष्य होते हैं।

२४१) अनपवर्तनीय आयुष्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर : अनपवर्तनीय आयुष्य के दो भेद हैं - १. निरूपक्रम, २. सोपक्रम।

२४२) निरूपक्रम आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : मृत्युकाल में बिना किसी निमित्त के सहज और आत्मिक शांति व समाधिपूर्वक पूर्ण होने वाला तीर्थंकरादि का आयुष्य निरूपक्रम आयुष्य कहलाता है।

२४३) सोपक्रम आयुष्य किसे कहते है ?

उत्तर : मृत्युकाल में निमित्तपूर्वक पूर्ण होनेवाला आयुष्य सोपक्रम आयुष्य कहलाता है। जैसे गजकुसुमाल व मेतार्य मुनि का आयुष्य। ये चरम शरीरी जीव थे। अतः अनपवर्तनीय आयुष्य का बंध था पर वह आयुष्य सोपक्रमिक होने से उन्हें मरणांत उपसर्ग हुआ और उसी वेदना को सहते-सहते आयुष्य पूर्णाहुति के साथ उन्हें केवलज्ञान व निर्वाण प्राप्त हो गया। अपवर्तनीय आयुष्य सोपक्रमिक ही होता है।

२४४) एकेन्द्रिय जीवों के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : एकेन्द्रिय जीवों के ४ प्राण होते हैं - १. स्पर्शेन्द्रिय, २. कायबल, ३. श्वासोच्छास, ४. आयुष्य।

२४५) द्वीन्द्रिय जीवों के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : द्वीन्द्रिय जीवों के ६ प्राण होते हैं - १. स्पर्शेन्द्रिय, २. रसनेन्द्रिय, ३. कायबल, ४. वचनबल, ५. श्वासोच्छास, ६. आयुष्य।

२४६) त्रीन्द्रिय जीवों के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त ६ तथा घ्राणेन्द्रिय अधिक होने से ७ प्राण होते हैं ।

२४७) चतुरिन्द्रिय जीवों के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : चक्षुरिन्द्रिय व उपरोक्त ७ सहित कुल ८ प्राण होते हैं ।

२४८) असंज्ञी तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के कितने प्राण होते है ?

उत्तर : असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को श्रोत्रेन्द्रिय अधिक होने से ९ तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को मनोबल सहित कुल १० प्राण होते हैं ।

२४९) एकेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय जीवों के क्रमशः एक तथा दो ही इन्द्रियाँ (स्पर्श, रस) होने से श्वासोच्छ्वास लेना कैसे संभव है ?

उत्तर : तीन तथा उससे अधिक इन्द्रिय वाले जीवों को जो श्वासोच्छ्वास नासिका (घ्राणेन्द्रिय) द्वारा ग्रहण होता है, वह दिखाई देने वाला बाह्य श्वासोच्छ्वास है परंतु इसका ग्रहण, प्रयत्न तथा परिणमन तो सर्व आत्मप्रदेशों से होता है। इसे आभ्यंतर श्वासोच्छ्वास भी कहते है। जिन एकेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय जीवों के नासिका नहीं है, वे सर्व शरीर प्रदेशों से श्वासोच्छ्वास के योग्य पुद्गल ग्रहणकर परिणमन कर विसर्जित करते हैं । इन जीवों का श्वासोच्छ्वास अव्यक्त है, जबकि नासिकावाले जीवों का श्वासोच्छ्वास व्यक्त-अव्यक्त दोनों प्रकार का होता है ।

२५०) अपर्याप्त जीवों के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : अपर्याप्त को उत्कृष्ट से ७ तथा जघन्य से तीन प्राण होते हैं ।

२५१) अपर्याप्ता एकेन्द्रिय जीवों में कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : अपर्याप्ता एकेन्द्रिय जीवों में तीन प्राण होते हैं - १. आयुष्य, २. काय बल, ३. स्पर्शनेन्द्रिय तथा श्वासोच्छ्वास प्राण अधूरा ही होता है ।

२५२) पर्याप्ता एकेन्द्रिय जीवों में कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : ४ प्राण होते हैं - १. स्पर्शनेन्द्रिय, २. कायबल, ३. श्वासोच्छ्वास, ४. आयुष्य ।

२५३) अपर्याप्ता बेइन्द्रिय जीवों में कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : १. आयुष्य, २. कायबल, ३. स्पर्शनेन्द्रिय, ४. रसनेन्द्रिय, ये ४ प्राण होते हैं । पांचवाँ प्राण अपूर्ण होता है ।

२५४) पर्याप्ता बेइन्द्रिय जीवों में कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : ६ प्राण होते हैं - १. स्पर्शनेन्द्रिय, २. रसनेन्द्रिय, ३. वचनबल, ४. कायबल, ५. श्वासोच्छ्वास, ६. आयुष्य ।

२५५) अपर्याप्ता तेइन्द्रिय जीवों में कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : इन जीवों में आयुष्य, कायबलप्राण, स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय ये ५ प्राण ही होते हैं ।

२५६) पर्याप्ता तेइन्द्रिय के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : पर्याप्ता तेइन्द्रिय के सात प्राण होते हैं –

तीन इन्द्रिय - स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय ।

दो बल - कायबल, वचनबल ।

श्वासोच्छ्वास और आयुष्य ।

२५७) अपर्याप्ता चतुरिन्द्रिय जीवों में कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : अपर्याप्ता चतुरिन्द्रिय जीवों में १. आयुष्य, २. कायबल, ३. स्पर्शन, ४. रसना, ५. घ्राण, ६. चक्षु - ये ६ प्राण होते हैं ।

२५८) पर्याप्त चतुरिन्द्रिय के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : पर्याप्त चतुरिन्द्रिय के पर्याप्ता तेइन्द्रिय के ७ प्राण व चक्षुरिन्द्रिय सहित ८ प्राण होते हैं ।

२५९) अपर्याप्ता असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त ६ व ७ वां श्रोत्रेन्द्रिय प्राण होता है। अपर्याप्ता असंज्ञी पंचेन्द्रिय को भी ७ ही प्राण होते हैं ।

२६०) पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : पर्याप्त चतुरिन्द्रिय के ८ प्राण एवं श्रोत्रेन्द्रिय सहित नौ प्राण पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के होते हैं ।

२६१) पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर : पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के ९ प्राण एवं मनोबल सहित १० प्राण पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के होते हैं ।

२६२) जीव के उत्कृष्ट भेद कितने हैं ?

उत्तर : जीव के उत्कृष्ट ५६३ भेद हैं । नारकी के १४, तिर्यञ्च के ४८, मनुष्य के ३०३ तथा देवता के १९८ भेद, ये कुल भेद ५६३ होते हैं ।

२६३) नारकी के चौदह भेद कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : (१) घम्मा, (२) वंशा, (३) शैला, (४) अञ्जना, (५) रिट्ठा, (६) मघा, (७) माघवती, इन सात नरकों मे रहने वाले जीवों के पर्याप्त व अपर्याप्त भेद से नारकी जीवों के १४ भेद होते हैं ।

२६४) तिर्यञ्च के ४८ भेद कौन से हैं ?

उत्तर : एकेन्द्रिय के २२, विकलेन्द्रिय के ६ तथा तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के २०, ये कुल मिलाकर तिर्यञ्च के ४८ भेद हैं ।

२६५) एकेन्द्रिय के २२ भेद कौन से हैं ?

उत्तर : पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु इन चारों के सूक्ष्म-बादर, और इन दोनों के अपर्याप्त और पर्याप्त, ये भेद होने से कुल १६ भेद तथा वनस्पति के तीन भेद-सूक्ष्म, प्रत्येक, साधारण । इन तीनों के अपर्याप्त तथा पर्याप्त, ये दो-दो भेद होने से कुल १६ + ६ = २२ भेद एकेन्द्रिय के हैं ।

२६६) विकलेंद्रिय को ६ भेद कौन से हैं ?

उत्तर : विकलेंद्रिय के ३ भेद हैं - बेइन्द्रिय-तेइन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय । इन तीनों के अपर्याप्त तथा पर्याप्त, इन दो-दो भेदों की अपेक्षा कुल ३ x २ = ६ भेद होते हैं ।

२६७) तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के २० भेद कौन से हैं ?

उत्तर : तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के पांच भेद हैं - जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प । इन पांच के संज्ञी-असंज्ञी, इन दो-दो भेदों की अपेक्षा से कुल १० भेद हुए । इन दसों के अपर्याप्त तथा पर्याप्त इन दों भेदों से कुल १० x २ = २० भेद होते हैं ।

२६८) जलचर किसे कहते हैं ?

उत्तर : जल में चरहने वाले जीव जलचर कहलाते हैं । जैसे मगर, कछुआ आदि ।

२६९) स्थलचर किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्थल (पृथ्वी) पर चलने वाले जीव स्थलचर कहलाते हैं । जैसे-गाय, भैंस आदि ।

२७०) खेचर किसे कहते हैं ?

उत्तर : ख-आकाश, खे-आकाश में, चर-उडने वाले जीव खेचर कहलाते हैं। जैसे कबूतर, कौआ आदि।

२७१) खेचर के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार भेद हैं - (१) चर्मपक्षी - चमडे की पंख वाले पक्षी चर्मपक्षी कहलाते हैं। जैसे-चमगादड आदि।

(२) रोमपक्षी - रोम की पंख वाले रोमपक्षी कहलाते हैं। जैसे - चिड़िया, कबूतर, हंस आदि।

(३) समुग्ग पक्षी - डिब्बे की तरह बंद पंख वाले समुग्ग पक्षी कहलाते हैं।

(४) विवत पक्षी - जिनके पंख सदा फैले हुए ही रहते हैं, वे विवत पक्षी कहलाते हैं।

समुग्ग पक्षी तथा विततपक्षी, ये दो जाति के पक्षी ढाई द्वीप के बाहर ही होते हैं।

२७२) उरपरिसर्प किसे कहते हैं ?

उत्तर : उर अर्थात् छाती से चलने वाले जीव उरपरिसर्प कहलाते हैं। जैसे सांप आदि।

२७३) भुज परिसर्प किसे कहते हैं ?

उत्तर : भुजाओं से चलने वाले जीव भुज परिसर्प कहलाते हैं। जैसे-नेवला, चूहा आदि।

२७४) मनुष्य के ३०३ भेद कौन से हैं ?

उत्तर : कर्मभूमि के १५, अकर्मभूमि के ३० और अन्तरद्वीप के ५६, ये सब मिलाकर गर्भज मनुष्य के १०१ भेद होते हैं। इनके अपर्याप्त तथा पर्याप्त, इन दो भेदों की अपेक्षा से कुल २०२ भेद होते हैं। इन १०१ क्षेत्रों के सम्मूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त के १०१ भेद गिनने पर मनुष्य के कुल ३०३ भेद होते हैं।

२७५) पन्द्रह कर्मभूमि कौन सी है ?

उत्तर : ५ भरत, ५ ऐरवत और ५ महाविदेह, ये पन्द्रह कर्मभूमि के क्षेत्र हैं।

२७६) कर्मभूमि किसे कहते हैं ?

उत्तर : जहाँ असि-तलवार आदि शस्त्र, मसि-स्याही अर्थात् पढने-लिखने का कार्य, कसि-कृषि-खेती के द्वारा मनुष्य अपना जीवन निर्वाह करते हैं, उसे कर्मभूमि कहते हैं। इन पन्द्रह कर्मभूमियों में ही तीर्थंकर, गणधर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव होते हैं।

२७७) तीस अकर्मभूमि के क्षेत्र कौन से हैं ?

उत्तर : ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवर्ष, ५ रम्यकवर्ष, ५ हैमवतवर्ष, ५ हैरण्यवतवर्ष, ये तीस अकर्मभूमि के क्षेत्र हैं।

२७८) अकर्मभूमि किसे कहते हैं ?

उत्तर : जहाँ असि-मसि-कृषि का व्यापार नहीं होता, वह अकर्म भूमि है। इन क्षेत्रों में १० प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं, जिससे मनवांछित प्राप्त कर मनुष्य अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यहाँ तीर्थंकरादि नहीं होते। अतः इन क्षेत्रों को भोगभूमि भी कहा जाता हैं।

२७९) छप्पन अन्तर्द्वीप के क्षेत्र कौन से हैं ?

उत्तर : जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र की मर्यादा करनेवाला चुल्लहिमवंत पर्वत है। पूर्व तथा पश्चिम की तरफ लवण समुद्र के जल से जहाँ इस पर्वत का स्पर्श होता है, वहाँ इसके दोनों तरफ चारों विदिशाओं में गजदन्ताकार दो-दो दाढाएँ निकली हुई है। एक-एक दाढा पर सात-सात अन्तर्द्वीप है। इस प्रकार चार दाढाओं पर अट्ठाईस अन्तर्द्वीप है। भरतक्षेत्र की तरह ऐरवत क्षेत्र की मर्यादा करनेवाला शिखरी पर्वत है, जिसके पूर्व-पश्चिम के चारों कोणों में चार दाढाएँ हैं। और एक-एक दाढा पर सात-सात अन्तर्द्वीप है। कुल चार दाढाओं पर अट्ठाईस अन्तर्द्वीप है। इसप्रकार दोनों पर्वत की आठ दाढाओं पर छप्पन अन्तर्द्वीप है।

२८०) ये अन्तर्द्वीप क्यों कहलाते हैं ?

उत्तर : ये लवणसमुद्र के बीच में होने से अथवा परस्पर द्वीपों में अन्तर (दूरी) होने से ये अन्तर्द्वीप कहलाते हैं। यहाँ भी असि-मसि-कसि का कर्म नहीं होता।

२८१) देवता के १९८ भेद कौन से हैं ?

उत्तर : १० भवनपति, १५ परमाधार्मिक, १६ वाणव्यन्तर, १० तिर्यक्जृम्भक, १० ज्योतिष्क, १२ वैमानिक, ३ किल्विषिक, ९ लोकान्तिक, ९

ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर वैमानिक। ये कुल ९९ हुए। इनके अपर्याप्त तथा पर्याप्त के भेद से देवता के कुल १९८ भेद होते हैं।

२८२) भरतक्षेत्र में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : ५१ भेद पाये जाते है। तिर्यञ्च के ४८, एक भरतक्षेत्र कर्मभूमि का अपर्याप्ता, पर्याप्ता तथा सम्मूर्च्छिम इस प्रकार कुल ५१ भेद पाये जाते हैं।

२८३) जम्बूद्वीप में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : ७५ भेद। ४८ तिर्यञ्च के, एक भरत, एक ऐरवत, एक महाविदेह, एक हैमवत, एक हैरण्यवत, एक हरिवास, एक रम्यकवास, एक देवकुरु, एक उत्तरकुरु। इन नौ के अपर्याप्ता, पर्याप्ता तथा सम्मूर्च्छिम, ये तीन तीन भेद गिनने पर कुल ९ x ३ = २७ भेद होते हैं। इस प्रकार कुल ४८ + २७ = ७५ भेद हुए।

२८४) लवण समुद्र में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : २१६ भेद। ४८ तिर्यञ्च के, छप्पन अन्तर्द्वीप के अपर्याप्त, पर्याप्त तथा सम्मूर्च्छिम ये तीन-तीन भेद गिनने पर ५६ x ३ = १६८ भेद होते हैं। कुल १६८ + ४८ = २१६ भेद हुए।

२८५) धातकी खण्ड में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : १०२ भेद। ४८ तिर्यञ्च के, दो भरत, दो ऐरवत, दो महाविदेह, दो हैमवत, दो हैरण्यवत, दो हरिवास, दो रम्यकवास, दो देवकुरु, दो उत्तरकुरु। इन अठारह के अपर्याप्ता, पर्याप्ता तथा सम्मूर्च्छिम ये तीन तीन भेद गिनने पर ५४ भेद हुए। कुल ४८ + ५४=१०२ भेद हुए।

२८६) कालोदधि समुद्र में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : केवल तिर्यञ्च के ४८ भेद पाये जाते हैं।

२८७) अर्द्धपुष्कर द्वीप में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : धातकी खण्ड की तरह ही अर्द्धपुष्कर द्वीप में भी जीव के १०२ भेद पाये जाते हैं।

२८८) समुच्चय ढाईद्वीप में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : ३५१ भेद। १०१ अपर्याप्त मनुष्य, १०१ पर्याप्त मनुष्य, १०१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य, ये मनुष्य के ३०३ भेद और ४८ तिर्यञ्च के भेद कुल ३०३

+ ४८ = ३५१ भेद होते हैं।

२८९) ढाई द्वीप के बाहर जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : ११८ भेद। ४६ भेद तिर्यञ्च के (बादर तेउकाय के अपर्याप्त तथा पर्याप्त, ये दो भेद छोडकर), १६ वाणव्यन्तर देव, १० तिर्यग् जृम्भकदेव, १० ज्योतिष्क, इन ३६ के अपर्याप्त तथा पर्याप्त जोडने पर ७२ भेद हुए। इस प्रकार कुल ७२ + ४६ = ११८ भेद हुए।

२९०) अधोलोक में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : ११५ भेद। ७ नरक, १५ परमाधार्मिक, १० भवनपति, इन ३२ के पर्याप्त तथा अपर्याप्त ये दो-दो भेद जोडने पर ६४ भेद हुए। ४८ तिर्यञ्च के व ३ मनुष्य के। ये कुल ६४ + ४८ + ३ = ११५ भेद हुए।

२९१) तिर्च्छालोक में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : ४२३ भेद। मनुष्य के ३०३ भेद, तिर्यञ्च के ४८। १६ वाणव्यतर, १० जृम्भक, १० ज्योतिष्क, इन ३६ के अपर्याप्त और पर्याप्त भेद जोडने पर ७२ हुए। इस प्रकार कुल ३०३ + ४८ + ७२ = ४२३ भेद हुए।

२९२) उर्ध्वलोक में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : १२२ भेद। तिर्यञ्च के ४६ (बादर तेउकाय के पर्याप्त तथा अपर्याप्त, इन दो भेदों को छोडकर)। ३ किल्विषी, १२ देवलोक, ९ लोकान्तिक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान, इन ३८ के पर्याप्त तथा अपर्याप्त के भेद जोडने पर ७६ भेद हुए। कुल भेद ४६ + ७६ = १२२ हुए।

२९३) सिद्धशिला पर जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : १२ भेद। पृथ्वी आदि पांच स्थावर के सूक्ष्म के अपर्याप्त तथा पर्याप्त, ये १० भेद तथा बादर वायुकाय के अपर्याप्त तथा पर्याप्त ये २ भेद। इस प्रकार कुल १२ भेद पाये जाते हैं।

२९४) सातवीं नरक के नीचे जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : सिद्धशिलावत् यहाँ भी १२ भेद पाये जाते हैं।

२९५) संपूर्ण लोकाकाश में जीव के कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर : ५६३ भेद।

२९६) जीव तत्त्व को जानने का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर : जीव तत्त्व ज्ञेय है अर्थात् जानने योग्य है क्योकि जीवतत्त्व को जाने बिना नव तत्त्वो में हेय, ज्ञेय व उपादेय कौन से हैं, उसकी प्रतीति नहीं

हो सकती ।

जीव में अनंतज्ञानादि ६ लक्षण होने के बावजूद आज हममें ज्ञान-दर्शनादि का अल्प अंश उदित हैं ? परंतु संपूर्ण उदित नहीं है, इस प्रकार से चिंतन करते हुए हमारी आत्मा में विवेक की जागृति होगी । जीव के १४ भेदों में हमारा समावेश किसमें होता हैं ? १४ भेदों को जानकर उनकी हिंसा से बचकर हेय को हेय रूप में, उपादेय को उपादेय रूप में तथा ज्ञेय को ज्ञेय रूप में जानकर जीवत्व का चिंतन कर स्वस्वरूप की, सिद्धावस्था की प्राप्ति का लक्ष्य प्रत्येक जीव रखे । यही जीवतत्त्व को जानने का एकमात्र उद्देश्य है ।

अजीव तत्त्व का विवेचन

२९७) अजीव किसे कहते है ?

उत्तर : जो चैतन्य रहित हो, जो सुख-दुःख के अनुभव से रहित हो, जड हो, उसे अजीव कहते है ।

२९८) अजीव के भेद तथा उपभेद कितने हैं ?

उत्तर : अजीव के मुख्य भेद ५ तथा कुल भेद १४ हैं ।

२९९) अजीव के ५ भेद कौन-से है ?

उत्तर : १. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. पुद्गलास्तिकाय, ५. काल ।

३००) अजीव के १४ उपभेद कौन-कौन से है ?

उत्तर : अजीव के १४ उपभेद निम्नप्रकार से है -

धर्मास्तिकाय के तीन भेद - स्कंध, देश, प्रदेश ।

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद - स्कंध, देश, प्रदेश ।

आकाशास्तिकाय के तीन भेद - स्कंध, देश, प्रदेश ।

पुद्गलास्तिकाय के चार भेद - स्कंध, देश, प्रदेश, परमाणु ।

काल का एक भेद, इस प्रकार अजीव के कुल १४ भेद होते हैं ।

३०१) धर्मास्तिकाय किसे कहते है ?

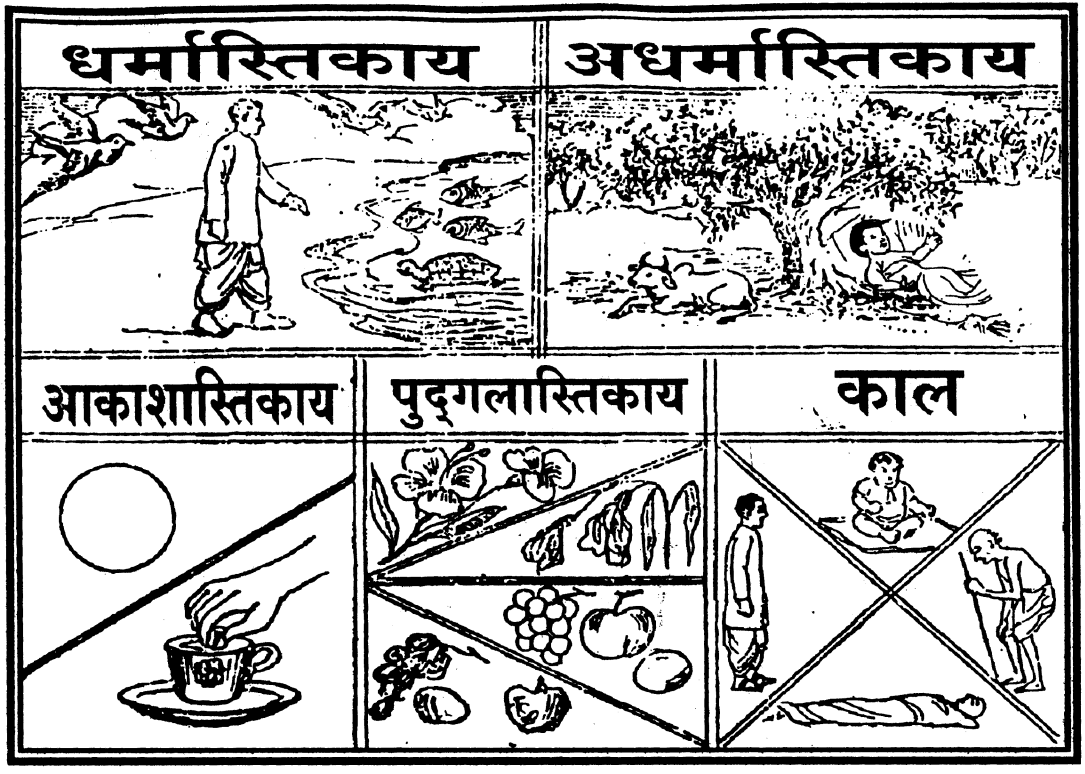

चित्र : अजीव द्रव्य का विवेचन

उत्तर : जीव एवं पुद्गलों की गति में सहायक बनने वाले द्रव्य को धर्मास्तिकाय कहते है ।

३०२) अधर्मास्तिकाय किसे कहते है ?

उत्तर : जीव तथा पुद्गल को स्थिर करने में सहयोग करने वाला द्रव्य अधर्मास्तिकाय कहलाता है ।

३०३) आकाशास्तिकाय किसे कहते है ?

उत्तर : जीव तथा पुद्गलों को अवकाश (स्थान) देने वाला द्रव्य आकाशास्तिकाय कहलाता है ।

३०४) पुद्गलास्तिकाय किसे कहते है ?

उत्तर : जो प्रतिसमय पूरण एवं गलन स्वभाव वाला है, उसे पुद्गलास्तिकाय कहते है ।

३०५) काल किसे कहते है ?

उत्तर : वस्तुओं के परिणमन अर्थात् परिवर्तन में सहकारी रूप शक्ति को काल कहते है । अथवा जो नवीन वस्तु को पुरानी तथा पुरानी को नष्ट करे, वह काल है ।

३०६) अस्तिकाय किसे कहते है ?

उत्तर : अस्ति - छोटे से छोटा अविभाज्य अंश, जिसके दो टुकडे न हो सके ऐसा अविभागी प्रदेश । काय अर्थात् समूह । अस्तिकाय - प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते है ।

३०७) षट्द्रव्य में कितने द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं ?

उत्तर : १. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय, ५. पुद्गलास्तिकाय, ये पांचों द्रव्य प्रदेशों के समूह होने से अस्तिकाय कहलाते है ।

३०८) काल को अस्तिकाय क्यों नहीं कहा गया है ?

उत्तर : काल केवल वर्तमान में एक समय रूप ही होता है । उसके स्कंध, देश, प्रदेश नहीं होते हैं, क्योंकि वह अखण्ड द्रव्य रूप है । इसलिये उसके साथ अस्तिकाय शब्द नहीं जोड़ा जाता ।

अनागतस्यानुत्पत्तेः, उत्पन्नस्य च नाशतः ।
प्रदेश प्रचयाभावात्, काले नेवास्तिकायता ॥

अर्थात् अनागतकाल की उत्पत्ति हुई नहीं, उत्पन्न काल का नाश हो जाने से तथा प्रदेश प्रचय का अभाव होने से काल अस्तिकाय नहीं है ।

३०९) स्कंध किसे कहते है ?

उत्तर : परमाणुओं के समूह को स्कंध कहते है अथवा अनेक प्रदेश वाले एक पूरे द्रव्य को स्कंध कहते है। जैसे - अनेक दानों से बना हुआ मोतीचूर का अखंड लड्डू ।

३१०) देश किसे कहते है ?

उत्तर : अनेक प्रदेशों वाले एक द्रव्य के स्कंध में रहे हुए एक भाग को देश कहते है । जैसे अनेक कणों वाले मोतीचूर के लड्डू का एक भाग ।

३११) प्रदेश किसे कहते है ?

उत्तर : स्कंध या देश से मिले हुए अविभाज्य अंश को अथवा अनेक प्रदेशों वाले द्रव्य के स्कंध में रहे हुए अविभाज्य भाग को प्रदेश कहते है। जैसे - अनेक कणों वाले मोतीचूर के लड्डू का एक अविभाज्य कण ।

३१२) परमाणु किसे कहते है ?

उत्तर : स्कंध या देश से पृथक् हुए निर्विभाज्य सूक्ष्मतम अंश को, जिसके दो टुकडे नहीं हो सके, उसे परमाणु कहते है । जैसे-लड्डू से पृथक् हुआ निर्विभाज्य कण परमाणु है ।

३१३) प्रदेश तथा परमाणु में क्या अंतर है ?

उत्तर : अणु जब स्कंध से जुडा रहे तो प्रदेश कहलाता है और पृथक् हो जाय तब परमाणु कहलाता है ।

३१४) प्रदेश बडा होता है या परमाणु ?

उत्तर : दोनों ही समान क्षेत्र को घेरने वाले होने से एक समान है ।

३१५) धर्मास्तिकाय द्रव्य के स्कंध-देश-प्रदेश की संख्या कितनी है ?

उत्तर : धर्मास्तिकाय द्रव्य स्कंध की अपेक्षा से एक है ।

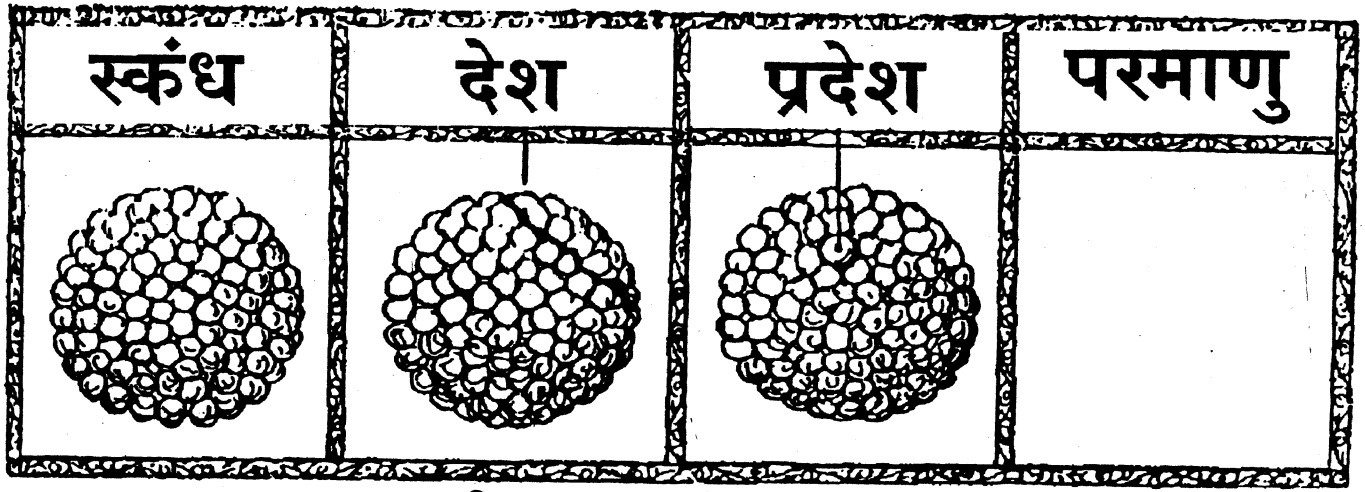

चित्र : पुद्गल के चार भेद

देश की अपेक्षा से असंख्य है। (दो प्रदेश न्यून)
प्रदेश की अपेक्षा से असंख्य है। (देश की संख्या से दो प्रदेश अधिक)

३१६) अधर्मास्तिकाय के स्कंध-देश-प्रदेश की संख्या कितनी है ?

उत्तर : अधर्मास्तिकाय द्रव्य स्कंध की अपेक्षा से एक है।
देश की अपेक्षा से असंख्य है। (दो प्रदेश न्यून)
प्रदेश की अपेक्षा से - असंख्य है। (देश की संख्या से दो प्रदेश अधिक)

३१७) आकाशास्तिकाय द्रव्य के स्कंध-देश-प्रदेश की संख्या कितनी है ?

उत्तर : आकाशास्तिकाय द्रव्य - स्कंध की अपेक्षा से - एक है।
देश की अपेक्षा से - असंख्य है। (दो प्रदेश न्यून)
प्रदेश की अपेक्षा से - असंख्य है। (देश की संख्या से दो प्रदेश अधिक)

३१८) पुद्गलास्तिकाय के स्कंध-देश-प्रदेश-परमाणु की संख्या कितनी है ?

उत्तर : पुद्गलास्तिकाय के स्कंध - एक स्कंध में संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं।
देश - एक पुद्गल में एक से लगाकर अनंत देश होते हैं। सभी स्कंधों के मिलाकर भी अनंत देश होते हैं।
प्रदेश - अनंत प्रदेश होते हैं।
परमाणु - अनंत परमाणु होते हैं।

३१९) काल के स्कंध-देश-प्रदेश कितने होते हैं ?

उत्तर : काल के स्कंध-देश-प्रदेश नहीं होते है परंतु समय अनंत होते हैं।

३२०) धर्मास्तिकाय - अधर्मास्तिकाय - आकाशास्तिकाय इन तीनों के परमाणु रूप भेद क्यों नहीं होता है ?

उत्तर : धर्मास्तिकायादि के समस्त प्रदेश स्कंध के साथ जुडे हुए ही रहते हैं क्योंकि ये तीनों अखंड द्रव्य है। इनका प्रदेश कभी भी द्रव्य से अलग नहीं होता। जो स्कंध से अलग पडता है, वही प्रदेश परमाणु कहा

जाता है, अतः इन तीनों के परमाणु नहीं होते हैं।

३२१) धर्मास्तिकाय का स्वरूप तथा लक्षण क्या है ?

उत्तर : धर्मास्तिकाय के स्वरूप तथा लक्षण को छह प्रकार से जाना जाता है–

धर्मास्तिकाय द्रव्य से - एक द्रव्य है।

क्षेत्र से - सकल लोकव्यापी है (अलोक में नहीं)।

काल से - अनादि-अनन्त है अर्थात् न तो कभी उत्पन्न हुआ है, न कभी अन्त होगा, अतः त्रिकालवर्ती है।

भाव से - अरूपी है (वर्ण-गंध-रस-स्पर्श रहित है)।

गुण से - गमन सहायक, गति में उदासीन भाव से सहायता करने वाला है।

संस्थान से - लोकाकृति समान।

३२२) अधर्मास्तिकाय के स्वरूप तथा लक्षण क्या है ?

उत्तर : अधर्मास्तिकाय द्रव्य से - एक द्रव्य है।

क्षेत्र से - सकल लोक में व्याप्त है। (अलोक में नहीं है।)

काल से - अनादि अनन्त है।

भाव से - अरूपी है।

गुण से - उदासीन भाव से स्थिर रहने में सहायक है।

संस्थान से - लोकाकृति समान।

३२३) आकाशास्तिकाय से स्वरूप तथा लक्षण क्या है ?

उत्तर : आकाशास्तिकाय द्रव्य से - एक द्रव्य है।

क्षेत्र से - लोक-अलोक व्यापी है।

काल से - अनादि-अनन्त है।

भाव से - अरूपी (अमूर्त) है।

गुण से - अवकाश देने वाला है।

संस्थान से - ठोस-गोलाकृति समान।

३२४) काल का स्वरूप तथा लक्षण क्या है ?

उत्तर : काल-द्रव्य से - अनन्त द्रव्य है।

क्षेत्र से - ढाई द्वीप प्रमाण है।

काल से - अनादि-अनन्त है।

भाव से - अरूपी है।

गुण से - वर्तना गुण वाला है अर्थात् वस्तु को नई से पुरानी, पुरानी को नष्ट कर नवीन का निर्माण करना।

संस्थान नहीं है।

३२५) पुद्गलास्तिकाय के स्वरूप को स्पष्ट करो।

उत्तर : पुद्गलास्तिकाय-द्रव्य से - पुद्गल द्रव्य अनंत है।

क्षेत्र से - लोक प्रमाण है।

काल से - अनादि-अनन्त है।

भाव से - रूपी हैं अर्थात् वर्ण, गंध, रस, स्पर्श युक्त है।

गुण से - ग्रहण गुण वाला, (इन्द्रियों से ग्रहण होने के कारण) गलन-सडन-विध्वंसन गुण वाला है।

संस्थान से - परिमंडलादि पांच आकृतिवाला।

३२६) जीवास्तिकाय का स्वरुप क्या है ?

उत्तर : जीवास्तिकाय-द्रव्य से-जीव अनन्तद्रव्य है।

क्षेत्र से - लोकप्रमाण है।

काल से - अनादि-अनंत हैं।

भाव से - अरुपी है।

गुण से - चेतना लक्षणवाला है।

संस्थान से - स्वदेहाकृति समान।

३२७) छह द्रव्यों में एक विशिष्ट गुण कौनसा है, जो सब द्रव्यों में समान रुप से पाया जाता है ?

उत्तर : काल से अनादि-अनंत भेद सब में हैं।

३२८) द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसमें गुण तथा पर्याय रहते हैं, उसे द्रव्य कहते है अथवा जो उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य से युक्त है, वह द्रव्य है।

३२९) गुण किसे कहते है ?

उत्तर : अविच्छिन्न रूप से द्रव्य में रहने वाला गुण है। द्रव्य का जो सहभावी धर्म अर्थात् द्रव्य के आश्रित रहने वाला तथा स्वयं निर्गुण हो, उसे गुण कहते है। जैसे आत्मा का गुण चेतना, ज्ञान। सोने का गुण पीतत्व आदि।

३३०) पर्याय किसे कहते है ?

उत्तर : द्रव्य की जो भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती है, उसे पर्याय कहते है। जैसे आत्मा की मनुष्यत्व, देवत्व तथा सोने की हार, कंगन आदि विभिन्न दशाएँ पर्याय हैं।

३३१) उत्पाद किसे कहते है ?

उत्तर : उत्पन्न होना उत्पाद है।

३३२) व्यय किसे कहते है ?

उत्तर : नष्ट होना व्यय है।

३३३) ध्रौव्य किसे कहते है ?

उत्तर : स्थिर रहना अथवा अपने स्वरूप को सुरक्षित रखना ध्रौव्य है।

३३४) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, इस त्रिपदी के आधार पर द्रव्य की व्याख्या कीजिए।

उत्तर : जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक द्रव्य (सत्) त्रिलक्षणात्मक है। तत्वार्थ सूत्र के पंचम अध्याय में 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' सूत्रानुसार जिसमें उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य है, वही सत् है। जो पूर्व अवस्थाओं को छोडता है और उत्तर अवस्थाओं को प्राप्त करता है, फिर भी अपने स्वरूप का त्याग नहीं करता, वह द्रव्य है।

अवस्थाओं का परिणमन भी उसी में संभव है, जो ध्रुव या नित्य रहे। ध्रुवत्व या नित्यत्व के अभाव में न तो पूर्ववर्ती अवस्था संभव है, न ही उत्तरवर्ती। जैसे स्वर्ण का कभी कंगन बनवा लिया तो कभी हार। कंगन का व्यय-विनाश हुआ और हार का उत्पाद हुआ परंतु इसमें स्वर्ण का ध्रुवत्व ज्यों का त्यों रहा। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य

में उत्पाद-व्यय रूप परिणमन होने पर भी द्रव्य की स्वरूप हानि नहीं होती। जीव द्रव्य अथवा अन्य कोई भी द्रव्य न तो उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है। मात्र पर्याय परिणमन होता है। अतः द्रव्य की सत्ता त्रैकालिक है।

३३५) मूर्त्त (रूपी) द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर : जिसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हो, वे द्रव्य मूर्त्त-रूपी कहलाते हैं।

३३६) अमूर्त्त (अरूपी) द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर : जो पदार्थ वर्णादि से रहित है, जिन्हें इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकती, वे अरूपी या अमूर्त्त कहलाते हैं।

३३७) आकाशास्तिकाय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : आकाशास्तिकाय के २ भेद हैं - १. लोकाकाश, २. अलोकाकाश।

३३८) लोकाकाश किसे कहते है ?

उत्तर : जिसमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवादि द्रव्य रहते हैं, उसे लोकाकाश कहते है।

३३९) अलोकाकाश किसे कहते है ?

उत्तर : जिसमें आकाश के अतिरिक्त किसी भी द्रव्य का अस्तित्व न हो, उसे अलोकाकाश कहते हैं।

३४०) लोकाकाश तथा अलोकाकाश का परिमाण क्या है ?

उत्तर : लोकाकाश का परिमाण चौदह राजलोक है। इसके अतिरिक्त अनन्त अलोकाकाश है।

३४१) लोकाकाश तथा अलोकाकाश के प्रदेश समान है या असमान ?

उत्तर : लोकाकाश के असंख्य प्रदेश हैं जबकि अलोकाकाश के अनंत प्रदेश हैं।

३४२) उपरोक्त दोनों आकाशास्तिकाय के ही भेद है, फिर यह असमानता क्यों ?

उत्तर : धर्म-अधर्म, पुद्गल तथा जीव को जो अवकाश देता है, वह लोकाकाश है। चूंकि धर्म-अधर्मादि द्रव्य असंख्य प्रदेशी हैं अतः लोकाकाश भी असंख्य प्रदेशी है। अलोकाकाश में न जीव द्रव्य है, न अजीव द्रव्य

है। अनन्त लोक समा जाय, इतना विराट् होने से अलोकाकाश अनंत प्रदेशी है।

३४३) लोकाकाश व अलोकाकाश का विभाजक तत्व क्या है ?

उत्तर : धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय लोक-अलोक के विभाजक तत्व है। ये जिस आकाश खंड में व्याप्त है, वहाँ गति व स्थिति होती है। जहाँ गति व स्थिति है, वहाँ जीव एवं पुद्गल का अस्तित्व है। अतः जीव, पुद्गल, धर्म तथा अधर्म से व्याप्त आकाश खण्ड लोकाकाश है। शेष आकाश खण्ड अलोकाकाश है।

३४४) आकाशास्तिकाय अमूर्त्त है, फिर वह नीले रंग वाला क्यों दिखायी देता है ?

उत्तर : नीला रंग आकाश का नहीं है, क्योंकि आकाश अमूर्त्त है। अमूर्त्त का कोई वर्ण नहीं होता। वह जैसा यहाँ है, वैसा ही सर्वत्र है। जो नीला (आसमानी) रंग हमे दृष्टिगत हो रहा है, वह दूर अवस्थित रज कणों का है। रजकण हमारे आसपास भी है पर सामीप्य के कारण नजर नहीं आते हैं। दूरी व सघनता होने पर वे ही रजकण आसमानी वर्ण में दृष्टिगोचर होते है। जैसे एक ऊँचाई पर बादल सघन पिंड के रूप में श्वेतवर्णी दिखाई देते हैं परंतु निकट जाने पर वैसे प्रतीत नहीं होते।

३४५) धर्मास्तिकाय की हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है ?

उत्तर : धर्मास्तिकाय जीव और पुद्गल की गति, क्रिया या हलन-चलन में सहायक तत्त्व है। अगर धर्मास्तिकाय द्रव्य का अभाव हो जाय तो जीव और पुद्गल की गति ही अव्यवस्थित हो जाये। धर्मास्तिकाय के द्वारा ही जीवों के आगमन, गमन, उन्मेष, मनोयोग, वचनयोग तथा काययोग में प्रवृत्ति होती है। इसके अतिरिक्त जितने भी चल भाव हैं, वे सब धर्मास्तिकाय द्वारा ही प्रवृत्त होते हैं।

३४६) अधर्मास्तिकाय की हमारे जीवन में क्या उपादेयता है ?

उत्तर : अगर अधर्मास्तिकाय नहीं होता तो जीव का खडे रहंना, बैठना, मन को एकाग्र करना, मौन करना, निस्पंद होना, करवट बदलना आदि जितने भी स्थिर भाव है, वे संभव नहीं हो पाते। आदमी सदैव चलता

ही रहता। गति ही करता रहता। अधर्मास्तिकाय के कारण ही स्थिति संभव है।

३४७) गति-शक्ति धर्मास्तिकाय में विद्यमान है या जीव और पुद्गल में ?

उत्तर : गति-शक्ति जीव और पुद्गल में है, धर्मास्तिकाय में नहीं। धर्मास्तिकाय केवल जीव और पुद्गल के हलन-चलन में उदासीन भाव से सहायक है। जैसे लंगडे व्यक्ति के लिये लाठी। जिस प्रकार स्वयं चलने में समर्थ लंगडे को लाठी केवल सहारा देती है। वह लंगडे को गति करने में न तो प्रेरणा देती है, न कर्ता बनती है। ठीक उसी प्रकार पुद्गल तथा जीव के गमनागमन में धर्मास्तिकाय सहकारी कारण है। पुद्गल तथा जीव की तीनों ही काल में गमन क्रिया विद्यमान रहती है अतः वह त्रिकालवर्ती अर्थात् अनादि-अनंत है। जीव तथा पुद्गल संपूर्ण लोक में गति करते हैं, अतः धर्मास्तिकाय सकल लोकव्यापी है।

३४८) अधर्मास्तिकाय जीव तथा पुद्गल के स्थिर रहने में ही सहायक होता है अथवा स्वभावतः स्थिर रहने वाले पदार्थों का सहायक होता है ?

उत्तर : अधर्मास्तिकाय स्वभावतः स्थिर रहने वाले पदार्थों के स्थिर रहने में नहीं बल्कि गतिशील पदार्थों के स्थिर रहने में सहायक होता है। जो स्वभावतः स्थिर है, उन्हें सहायता की कोई आवश्यकता नहीं। सहायता की जरूरत उन्हीं पदार्थों को होती है, जो सदा स्थिर नहीं होते। स्थिर रहने में उपादान कारण स्वयं पदार्थ ही है, अधर्मास्तिकाय केवल उदासीन भाव से सहायक है। यह सकल लोकव्यापी है। अलोक में इसका अभाव है क्योंकि वहाँ पुद्गल और जीव नहीं है।

३४९) गतिशील द्रव्य कितने हैं तथा स्थिर द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर : जीव और पुद्गल में ही गति है। इनके अलावा सभी द्रव्य स्थिर है। जीव व पुद्गल में भी निरन्तर गति नहीं होती। वे कभी गति करते हैं, तो कभी स्थिर रहते हैं।

३५०) आकाशास्तिकाय की क्या उपयोगिता है ?

उत्तर : आकाश द्रव्य समस्त द्रव्यों का आधार है, बाकी सब द्रव्य आधेय है।

आधार रूप आकाश का यदि अभाव हो जाय तो कोई पदार्थ टिक नहीं सकता। घडे में पानी इसीलिये ठहरता है कि उसमें आश्रय देने का गुण विद्यमान है। इसी प्रकार समस्त पदार्थों को आश्रय देने वाला आकाश ही है।

३५१) काल की हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है ?

उत्तर : काल की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है, क्योंकि उसके बिना कोई भी कार्यक्रम निर्धारित नहीं हो सकता। छोटे से लेकर बडे कार्य तक में काल की सहायता अपेक्षित है। प्रत्येक पदार्थ काल के आश्रित है। उसके कारण सृष्टि का सौंदर्य तथा संतुलन है। पदार्थों में, चाहे वे सजीव हो या निर्जीव, जो भी परिवर्तन होता है, वह काल के कारण ही संभव है।

३५२) काल के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर : मुख्य दो प्रकार है - १. निश्चयकाल, २. व्यवहारकाल।

३५३) निश्चयकाल किसे कहते है ?

उत्तर : जो परिणाम का हेतु है, वर्तता रहता है, वर्ण-गंध-रस-स्पर्श रहित, अगुरुलघु लक्षण वाला है, वह निश्चयकाल है।

३५४) व्यवहार काल किसे कहते है ?

उत्तर : समय, घडी, मुहूर्त्त, दिन-रात, मास, वर्ष, ऐसा जो काल है, वह व्यवहार काल है। यह सूर्य-चंद्र आदि ज्योतिष्कों की गति पर निर्भर करता है, जो केवल मनुष्यक्षेत्र में ही चलता है।

३५५) पुद्गलास्तिकाय की हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है ?

उत्तर : पुद्गल हमारे अत्यंत निकट के उपकारी है। संसारी जीव पुद्गल के अभाव में रह ही नहीं सकता। उसकी आवश्यकता पुद्गल के द्वारा ही सम्पन्न होती है। हमारा शरीर पुद्गल की ही देन है। भाषा, मन, प्राण, अपान आदि सब पुद्गल के ही उपकार हैं। जिस प्रकार अनुचर मालिक की आज्ञा मानने को मजबूर होते है, वैसे ही पुद्गल द्वारा निर्मित इन्द्रिय आदि जीव की आज्ञा मानते हैं।

३५६) पुद्गल के लक्षण क्या है ?

उत्तर : उत्तराध्ययन सूत्र में पुद्गल को ५ लक्षणयुक्त कहा गया है –

१. वर्ण – काला, नीला, लाल, पीला, सफेद ।

२. गंध – सुरभि तथा दुरभि ।

३. रस – तीखा, कडवा, कसैला, खट्टा और मीठा ।

४. स्पर्श – कठोर-कोमल, हल्का-भारी, ठंडा-गरम, स्निग्ध-रूक्ष ।

५. संस्थान – परिमंडल, वृत्त, त्र्यंस, समचतुरस्त्र तथा आयत ।

ये पांचो लक्षण प्रत्येक पुद्गल में पाये जाते हैं ।

३५७) पुद्गल अनंतानंत है जबकि लोकाकाश के प्रदेश असंख्य है । इस स्थिति में लोक प्रमाण का अवगाहन पुद्गल में कैसे घटेगा ?

उत्तर : अल्प और अधिक प्रदेशों का अवगाहन करने में सघन और असघन परिणति ही कारण है । अधिक परमाणु वाला स्कंध भी सघन परिणति से अल्प क्षेत्र में रह सकता है और उसकी अपेक्षा अल्प परमाणु वाला स्कंध असघन परिणति से उससे अधिक क्षेत्र में रहता है । एक परमाणु एक आकाश प्रदेश में रहता है, वैसे ही द्वि-प्रदेशी, संख्यात या असंख्यात यावत् अनंतप्रदेशी स्कंध भी परमाणु की भांति सघन परिणति के योग से एक आकाश प्रदेश में रह सकते हैं । जैसे एक सेर पारा जितने क्षेत्र को रोकता है, उससे अधिक एक सेर लोहा, उससे अधिक एक सेर मिट्टी, और उससे भी अधिक एक सेर रुई क्षेत्र का अवगाहन करती है । यद्यपि रूई से मिट्टी का, मिट्टी से लोहे का और लोहे से पारे का पुद्गल प्रचय अधिक है । रुई से मिट्टी, मिट्टी से लोहे और लोहे से पारे की सघन परिणति है । अतः एव क्षेत्र का रोकना भी क्रमशः अल्प, अल्पतर होता है । जैसे अनंत प्रदेशी एक स्कंध असंख्य प्रदेशों में समा जाता है, वैसे ही अनंत प्रदेशी अनेक स्कंध भी असंख्य प्रदेशों में समा जाते हैं । एक कक्ष में जहाँ एक दीपक का प्रकाश समा जाता है, वहीं सैंकडों दीपक का प्रकाश भी समा जाता है ।

३५८) पुद्गल द्रव्य के लक्षण कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, ये पुद्गल के लक्षण हैं ।

३५९) शब्द किसे कहते है ?

उत्तर : शब्द अर्थात् ध्वनि या आवाज ।

३६०) शब्द कितने प्रकार का है ?

उत्तर : १. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र, शब्द के ये तीन प्रकार हैं ।

३६१) सचित्त शब्द किसे कहते है ?

उत्तर : जीव के मुख से उच्चरित होता शब्द, सचित्त शब्द कहलाता है ।

३६२) अचित्त शब्द किसे कहते है ?

उत्तर : पत्थर आदि अजीव पदार्थों के परस्पर सघर्ष से उत्पन्न होने वाला शब्द, अचित्त शब्द है ।

३६३) मिश्र शब्द किसे कहते है ?

उत्तर : जीव के प्रयत्न से बजने वाली बांसुरी, वीणा या शंख आदि की आवाज मिश्र शब्द है ।

३६४) व्यक्त और अव्यक्त शब्द किसे कहते है ?

उत्तर : विकलेंद्रिय तथा पशु आदि का शब्द स्पष्ट अक्षरात्मक व अर्थात्मक नहीं होने से अव्यक्त शब्द कहलाता है जबकि मनुष्य का शब्द स्पष्ट अक्षरात्मक एवं अर्थात्मक होने से व्यक्त शब्द कहलाता है ।

३६५) शब्द की उत्पत्ति कहाँ से होती है ?

उत्तर : शब्द की उत्पत्ति अष्टस्पर्शी पुद्गल स्कंध से होती है परंतु शब्द स्वयं चतुःस्पर्शी पुद्गल स्कंध है ।

३६६) नैयायिक शब्द को किसका गुण मानते हैं ?

उत्तर : नैयायिक रूपी शब्द को अरूपी आकाश का गुण मानते है, जो दोषपूर्ण है ।

३६७) जैनदर्शन का शब्द के विषय में क्या अभिमत है ?

उत्तर : जैन दार्शनिक शब्द को पुद्गल का गुण मानते हैं । शब्द की उत्पत्ति

पुद्गल से होती है और शब्द स्वयं भी पुद्गल रूप है ।

३६८) अंधकार किसे कहते है ?

उत्तर : तेज का अभाव ही अंधकार है । अंधकार भी पुद्गल रूप है ।

३६९) उद्योत किसे कहते है ?

उत्तर : शीतल वस्तु का शीतल प्रकाश उद्योत कहलाता है । चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि ज्योतिष विमानों का, चन्द्रकान्त आदि रत्नों का तथा जुगनू आदि जीवों का प्रकाश उद्योत है ।

३७०) प्रभा किसे कहते है ?

उत्तर : चन्द्रादि के प्रकाश में से तथा सूर्य के प्रकाश में से जो दूसरा किरण रहित उपप्रकाश पडता है, वह प्रभा है । यह प्रभा पुद्गल स्कंधों में से प्रकट होती है तथा स्वयं भी पुद्गल रूप है ।

३७१) प्रभा व किरण में क्या अंतर है ?

उत्तर : किरण स्वयं प्रकाशरूप है जबकि प्रभा किरण का उपप्रकाश है । यदि प्रभा न हो तो सूर्यादि की किरणों का प्रकाश जहाँ पडता हो, वहीं प्रकाश रहे, परन्तु उसके समीप के स्थान में अमावस्या जैसा अन्धकार ही रहे । परन्तु उपप्रकाश रूप प्रभा होने से ऐसा नहीं होता । चन्द्रादि की कान्ति को भी शास्त्रों में प्रभा कहा है ।

३७२) छाया किसे कहते है ?

उत्तर : दर्पण अथवा प्रकाश में पडने वाला प्रतिबिंब छाया कहलाती है ।

३७३) आतप किसे कहते है ?

उत्तर : शीत वस्तु का उष्ण प्रकाश आतप कहलाता है ।

३७४) वर्ण किसे कहते हैं ?

उत्तर : चक्षुरिन्द्रिय के विषय को वर्ण कहते हैं । वर्ण अर्थात् रंग ।

३७५) वर्ण के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पांच - १. कृष्ण, २. नील, ३. पीत, ४. रक्त और ५. श्वेत ।

३७६) गंध किसे कहते हैं ?

उत्तर : घ्राणेन्द्रिय के विषय को गंध कहते हैं ।

३७७) गंध के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - सुरभि व दुरभि ।

३७८) रस किसे कहते हैं ?

उत्तर : रसनेंद्रिय के विषय को रस कहते है ।

३७९) रस के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पांच - १. तिक्त - (चरपरा), २. कटु (कडवा), ३. कषाय (कसैला), ४. अम्ल (खट्टा), ५. मधुर (मीठा) ।

३८०) स्पर्श किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्पर्शनेन्द्रिय के विषय को स्पर्श कहते हैं ।

३८१) स्पर्श के कितने भेद हैं ?

उत्तर : आठ - १. शीत, २. उष्ण, ३. स्निग्ध, ४. रूक्ष, ५. लघु, ६. गुरु, ७. मृदु, ८. कर्कश ।

३८२) रूपी द्रव्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - १. अष्टस्पर्शी, २. चतुःस्पर्शी ।

३८३) अष्टस्पर्शी रूपी द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर : जिसमें वर्ण, गंध, रस और संस्थान के साथ उपरोक्त आठों स्पर्श पाये जाते हैं, उसे अष्टस्पर्शी रूपी द्रव्य कहते है ।

३८४) चतुःस्पर्शी रूपी द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर : जिसमें वर्ण, गंध, रस के साथ उष्ण, शीत, स्निग्ध और रूक्ष, ये चार स्पर्श पाये जाते हो, उसे चतुःस्पर्शी रूपी द्रव्य कहते है ।

काल द्रव्य का विवेचन

३८५) एक मुहूर्त्त में कितनी आवलिकाएँ होती हैं ?

उत्तर : एक मुहूर्त्त में एक करोड, सडसठ लाख, सत्तहत्तर हजार, दो सौ सोलह से (कुछ) अधिक आवलिकाएँ होती हैं ।

३८६) समय किसे कहते है ?

उत्तर : काल का अत्यंत सूक्ष्म अंश, जिसका केवली के ज्ञान में भी विभाग

न हो सके, उसे समय कहते है, एक आवलिका के असंख्यातवें भाग को भी समय कहते है ।

३८७) समय की सूक्ष्मता को समझाने के लिये उदाहरण दीजिये ?

उत्तर : आंख मींच कर खोलने में असंख्यात समय व्यतीत हो जाते है । उन असंख्यात समयों की एक आवलिका होती है । ऐसी सूक्ष्म आवलिका में निगोद के जीवों का एक भव हो जाता है । समय की सूक्ष्मता को इस उदाहरण द्वारा भी समझ सकते है, जैसे - अति जीर्ण वस्त्र को त्वरा से फाडने पर एक तंतु से दूसरे तंतु को फटने में जो समय लगता है, वह भी असंख्य समय प्रमाण है ।

३८८) पक्ष किसे कहते है ?

उत्तर : पन्द्रह दिनों का एक पक्ष होता है ।

३८९) पक्ष कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर : पक्ष दो प्रकार के होते हैं : (१) कृष्ण पक्ष (२) शुक्ल पक्ष ।

३९०) मास किसे कहते है ?

उत्तर : २ पक्ष का अथवा ३० अहोरात्र का एक मास होता है ।

३९१) अहोरात्र किसे कहते है ?

उत्तर : दिन और रात को अहोरात्र कहते है ।

३९२) एक अहोरात्र में कितनी घड़ी होती है ?

उत्तर : एक अहोरात्र में साठ घडी (२४ घंटे या ३० मुहूर्त) होती है ।

३९३) एक घडी का परिमाण कितना होता है ?

उत्तर : एक घडी का परिमाण २४ मिनट होता है ।

३९४) एक मुहूर्त्त में कितनी घडी होती है ?

उत्तर : एक मुहूर्त्त में दो घडी होती है ।

३९५) एक वर्ष में कितने मास होते हैं ?

उत्तर : एक वर्ष में १२ मास होते हैं ।

३९६) एक वर्ष में कितनी ऋतुएँ होती हैं ?

उत्तर : एक वर्ष में छह ऋतुएँ होती हैं - १. हेमंत, २. शिशिर, ३. वसंत, ४.

ग्रीष्म, ५. वर्षा, ६. शरद।

३९७) एक ऋतु में कितने मास होते हैं ?

उत्तर : एक ऋतु में दो मास होते हैं।

३९८) एक अयन कितनी ऋतु का होता हैं ?

उत्तर : तीन ऋतु अर्थात् छह माह का एक अयन (दक्षिणायन या उत्तरायण) होता है।

३९९) एक युग कितने वर्ष का होता है ?

उत्तर : एक युग पांच वर्ष का होता है।

४००) एक वर्ष कितने अयन का होता है ?

उत्तर : एक वर्ष २ अयन का होता है।

४०१) कितने वर्ष का एक पूर्वांग होता है ?

उत्तर : ८४ लाख वर्ष का एक पूर्वांग होता है।

४०२) एक पूर्व में कितने पूर्वांग अथवा कितने वर्ष होते हैं ?

उत्तर : एक पूर्व ८४ लाख पूर्वांग अथवा सत्तर लाख छप्पन हजार क्रोड (७६५६०००००००००) वर्ष होते हैं।

४०३) पल्योपम कितने वर्षों का होता है ?

उत्तर : असंख्यात वर्षों का एक पल्योपम होता है।

४०४) पल्योपम की व्याख्या कीजिए।

उत्तर : उत्सेधांगुल के माप से एक योजन (चार कोस) लंबा, चौडा, गहरा, एक कुआं, जिसको सात दिन की उम्र वाले युगलिक बालक के एक-एक केश के असंख्य टुकडों से इस तरह ठसा-ठस भर दिया जाय कि उसके उपर से चक्रवर्ती की विशाल सेना पसार हो जाये तब भी उसके ठोसपन में किंचित् मात्र भी फर्क न आये। उस कूप में से प्रति समय में एक-एक केश का टुकडा निकाले। इस प्रकार करते हुए जब केशराशि से पूरा कुआं खाली हो जाय, उतने समय की अवधि अथवा परिमाण को बादर उद्धार पल्योपम कहते है।

४०५) कितने पल्योपम का एक सागरोपम होता है ?

उत्तर : १० कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है ।

४०६) कोडाकोडी किसे कहते है ?

उत्तर : करोड को करोड से गुणा करने पर जो संख्या आती है, उसे कोडा कोडी कहते है ।

४०७) कितने सागरोपम की एक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी होती है ?

उत्तर : दस कोडाकोडी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी होती है ।

४०८) कालचक्र किसे कहते है ?

उत्तर : एक उत्सर्पिणी तथा एक अवसर्पिणी काल का एक कालचक्र होता है ।

४०९) एक कालचक्र कितने सागरोपम का होता है ?

उत्तर : एक कालचक्र २० क़ोडाकोडी सागरोपम का होता है ।

४१०) एक पुद्गल परावर्तन काल किसे कहते है ?

उत्तर : अनंत कालचक्र का एक पुद्गल परावर्तनकाल होता है ।

४११) पुद्गल परावर्तन काल के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पुद्गल परावर्तन काल के ८ भेद हैं - १. द्रव्य पुद्गल परावर्त, २. क्षेत्र पुद्गल परावर्त, ३. काल पुद्गल परावर्त, ४. भाव पुद्गल परावर्त। इन चारों के सूक्ष्म तथा बादर ये दो-दो भेद होने से कुल ८ भेद होते हैं ।

४१२) बादर द्रव्य पुद्गल परावर्त्त काल किसे कहते है ?

उत्तर : औदारिक-वैक्रिय-तैजस-भाषा-श्वासोच्छ्वास-मन तथा कार्मण, इन सात पुद्गल वर्गणाओं के माध्यम से जीव को जगत के सभी पुद्गलों का उपभोग कर छोडने में जितना समय व्यतीत होता है, उसे बादर द्रव्य पुद्गल परावर्त कहते है ।

४१३) सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त किसे कहते है ?

उत्तर : उपरोक्त सात वर्गणा के सभी पुद्गलों को औदारिक आदि किसी भी एक वर्गणा के रूप में उपभोग कर छोडने में जितना समय लगता है,

उस काल को सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त कहते है ।

४१४) बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त किसे कहते है ?

उत्तर : चौदह राजलोक के सभी आकाश प्रदेशों का बिना क्रम के मृत्यु द्वारा स्पर्श करते हुए किसी एक जीव को जितना समय लगता है, उस काल को बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त कहते है ।

४१५) सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त किसे कहते है ?

उत्तर : चौदह राजलोक के सभी आकाश प्रदेशों को क्रमशः प्रदेश के अनुसार मृत्यु द्वारा स्पर्श करते हुए किसी एक जीव को लगने वाला काल सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त है ।

४१६) बादरकाल पुद्गल परावर्त किसे कहते है ?

उत्तर : कालचक्र के संपूर्ण समय को बिना क्रम के मृत्यु द्वारा स्पर्श करने में जो समय लगता है, उसे बादर काल पुद्गल परावर्त कहते है ।

४१७) सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्त किसे कहते है ?

उत्तर : काल चक्र के संपूर्ण समय को क्रमशः मृत्यु द्वारा स्पर्श करने में जो समय लगता है, उसे सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्त कहते है ।

४१८) बादर भाव पुद्गल परावर्त किसे कहते है ?

उत्तर : सभी रसबंध के अध्यवसाय स्थानकों को बिना क्रम के मृत्यु द्वारा स्पर्श करने में जितना समय लगता है, उसे बादर भाव पुद्गल परावर्त कहते है ।

४१९) सूक्ष्म भाव पुद्गल परावर्त किसे कहते है ?

उत्तर : रसबन्ध के एक-एक अध्यवसाय को मृत्यु द्वारा क्रमशः स्पर्श करने में लगने वाला समय सूक्ष्म भाव पुद्गल परावर्त कहलाता है ।

४२०) पल्योपम के कुल कितने प्रकार हैं ?

उत्तर : पल्योपम के कुल छह प्रकार हैं : १. उद्धार पल्योपम, २. अद्धा पल्योपम, ३. क्षेत्र पल्योपम, इन तीनों के सूक्ष्म तथा बादर ऐसे दो-दो भेद होने से छह भेद हैं ।

४२१) सूक्ष्म उद्धार पल्योपम किसे कहते है ?

पुद्गल परावर्त

द्रव्य पुद्गल परावर्त

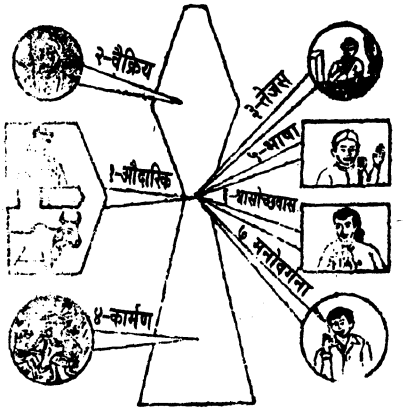

क्षेत्र पुद्गल परावर्त

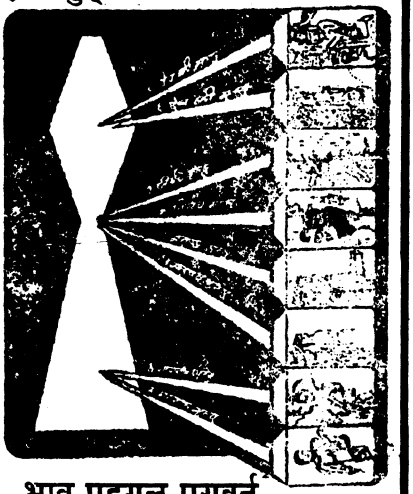

काल पुद्गल परावर्त

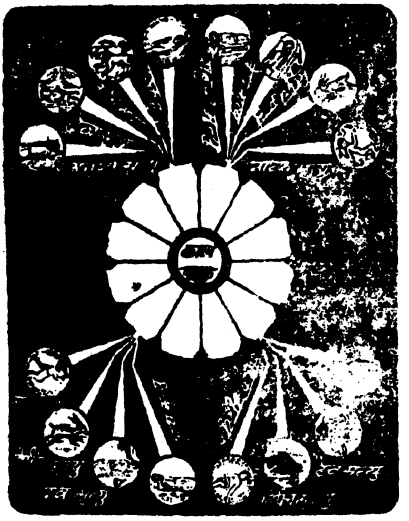

भाव पुद्गल परावर्त

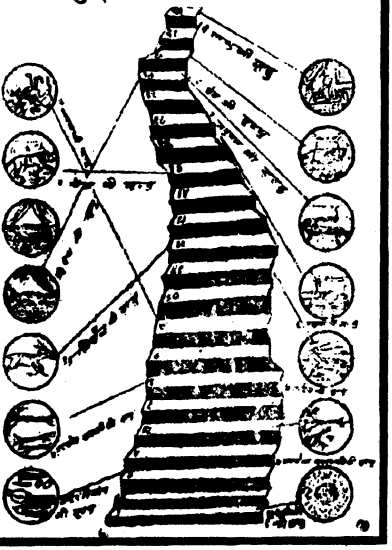

उत्तर : बादर उद्धार पल्योपम की भाँति कुएँ में सात दिन के नवजात शिशु के एक बाल के असंख्य टुकडे करके कुएँ को पूर्ववत् भरा जाये और प्रति समय एक-एक टुकडा निकाला जाय। जितनी कालावधि में वह कुआं खाली हो, उसे सूक्ष्म उद्धार पल्योपम कहते है।

४२२) बादर अद्धा पल्योपम किसे कहते है ?

उत्तर : बादर उद्धार पल्योपम की भाँति बाल से भरे कुएँ में से प्रति सौ वर्ष में बाल का टुकडा निकाला जाये। जितने समय में वह कुआं खाली हो जाय, उसे बादर अद्धा पल्योपम कहते है।

४२३) सूक्ष्म अद्धा पल्योपम किसे कहते है ?

उत्तर : सूक्ष्म उद्धार पल्योपम की भाँति केश से भरे हुए कुएँ में से प्रति सौ वर्ष में एक टुकडा निकाला जाये और जितने समय में वह खाली हो, उतने समय को सूक्ष्म अद्धा पल्योपम कहते है।

४२४) बादर क्षेत्र पल्योपम किसे कहते है ?

उत्तर : बादर उद्धार पल्योपम को समझाने के लिये कुएँ में जो वालाग्र भरा है, उस वालाग्र को स्पर्श किए हुए आकाश प्रदेश में से एक-एक आकाश प्रदेश को एक-एक समय में बाहर निकालने में जितना समय लगे, उस समय को बादर क्षेत्र पल्योपम कहते है।

४२५) सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम किसे कहते है ?

उत्तर : सूक्ष्म उद्धार पल्योपम को समझाने के लिये कुएँ में जो वालाग्र भरा है, उस वालाग्र को स्पर्श किये हुए और नहीं स्पर्शे हुए आकाश प्रदेशों में से एक-एक समय में एक-एक आकाश प्रदेश को बाहर निकालने में जितना समय लगे, उस समय को सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम कहते है।

४२६) सागरोपम के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पल्योपम की भाँति ही सागरोपम के भी ३ भेद है - १. उद्धार सागरोपम, २. अद्धा सागरोपम तथा ३. क्षेत्र सागरोपम। सूक्ष्म तथा बादर रूप दो भेदों की अपेक्षा से प्रत्येक के पुनः दो-दो भेद हैं।

४२७) बादर उद्धार सागरोपम किसे कहते है ?

उत्तर : दस कोडाकोडी बादर उद्धार पल्योपम का एक बादर उद्धार सागरोपम होता है ।

४२८) सूक्ष्म उद्धार सागरोपम किसे कहते है ?

उत्तर : दस कोडाकोडी सूक्ष्म उद्धार पल्योपम एक सूक्ष्म उद्धार सागरोपम होता है ।

४२९) अद्धा सागरोपम के दोनों भेद स्पष्ट कीजिए ।

उत्तर : १. दस कोडाकोडी बादर अद्धा पल्योपम का एक बादर अद्धा सागरोपम होता है ।

२. दस कोडाकोडी सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का एक सूक्ष्म अद्धा सागरोपम होता है ।

४३०) क्षेत्र सागरोपम के दोनों भेद स्पष्ट करो ।

उत्तर : १. दस कोडाकोडी बादर क्षेत्र पल्योपम का एक बादर क्षेत्र सागरोपम होता है ।

२. दस कोडाकोडी सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम का एक सूक्ष्म क्षेत्र सागरोपम होता है ।

४३१) एक कालचक्र में कितने आरे होते हैं ?

उत्तर : एक कालचक्र में छह अवसर्पिणी काल के तथा छह उत्सर्पिणी काल के, कुल १२ आरे होते हैं ।

४३२) अवसर्पिणी काल किसे कहते है ?

उत्तर : जिस काल में जीवों के संघयण, संस्थान अवगाहना, आयुष्य, बल, वीर्य, पराक्रम, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श उत्तरोत्तर हीन होते जाते हैं, उसे अवसर्पिणी काल कहते है ।

४३३) उत्सर्पिणी काल किसे कहते है ?

उत्तर : जिस काल में जीवों के संहनन, संस्थान उत्तरोत्तर शुभ होते जाय, आयुष्य, अवगाहना, बल, पराक्रम, वीर्य आदि वृद्धि को प्राप्त होते जाय, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श भी शुभ होते जाय, उसे उत्सर्पिणी काल कहते है।

४३४) अवसर्पिणी काल के छह आरों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करो।

उत्तर : १. सुषम-सुषम : यह आरा ४ कोडाकोडी सागरोपम का होता है। इस आरे में जन्मे मनुष्य का देहमान ३ कोस, आयुष्य ३ पल्योपम का होता है तथा तीन-तीन दिन के अन्तर से आहार की इच्छा होती है। उन के वज्र ऋषभनाराच संघयण एवं समचतुरस्त्र संस्थान होता है। शरीर में २५६ पसलियाँ होती हैं। इनकी इच्छा तथा आकांक्षाएँ दस प्रकार के कल्पवृक्ष पूरी करते है। कल्पवृक्ष इन्हें इतने रसप्रचुर, स्वादिष्ट तथा शक्तिवर्धक फल प्रदान करते हैं कि तुअर के दाने जितना आहार ग्रहण करने मात्र से ही इन्हें संतोष और तृप्ति हो जाती है। स्वयं की आयुष्य के ६ मास शेष रहे हो तब युगलिनी एक युगल (पुत्र-पुत्री) को जन्म देती है तथा ४९ दिन तक ही उनका पालन पोषण करती है। तत्पश्चात् वह युगल स्वावलंबी होकर स्वतंत्र घूमता है। युवा होने पर वे ही पति-पत्नी का व्यवहार करते हैं। इन (युगल रूप जन्म होने के कारण) युगलिक मनुष्यों का आयुष्य पूर्ण होने पर एक छींक और एक जंभाई से मृत्यु हो जाती है। ये अल्प विषयी तथा अल्प कषायी होने से मरकर देवलोक में ही जाते हैं। इस आरे में सुख ही सुख होने से इसे सुषम-सुषम कहा जाता है।

२. सुषम : इस आरे का काल मान ३ कोडाकोडी सागरोपम है। पहले आरे की अपेक्षा इसमें कम सुख होता है पर दुःख का पूर्णतया अभाव होता है। इस आरे के मनुष्य की अवगाहना २ कोस, आयुष्य २ पल्योपम शरीर में १२८ पसलियाँ तथा २ दिन के अंतर में बेर प्रमाण आहार होता हौ बुद्धि, बल, कांति में पूर्व की अपेक्षा हानि आती है। संतान पालन ६४ दिन करते हैं। शेष प्रथम आरे की तरह है।

३. सुषम-दुःषम : इसका कालमान २ कोडाकोडी सागरोपम है। इसमें सुख अधिक व दुःख कम होता है। देहमान एक कोस, आयुष्य १ पल्योपम, ६४ पसलियाँ तथा आहारेच्छा एक दिन के बाद व आंवले जितने आहार से ही तृप्ति हो जाती है। संतानपालन ७९ दिन होता है। इस आरे के जब ८४ लाख पूर्व, ३ वर्ष ८½ माह शेष रहते हैं

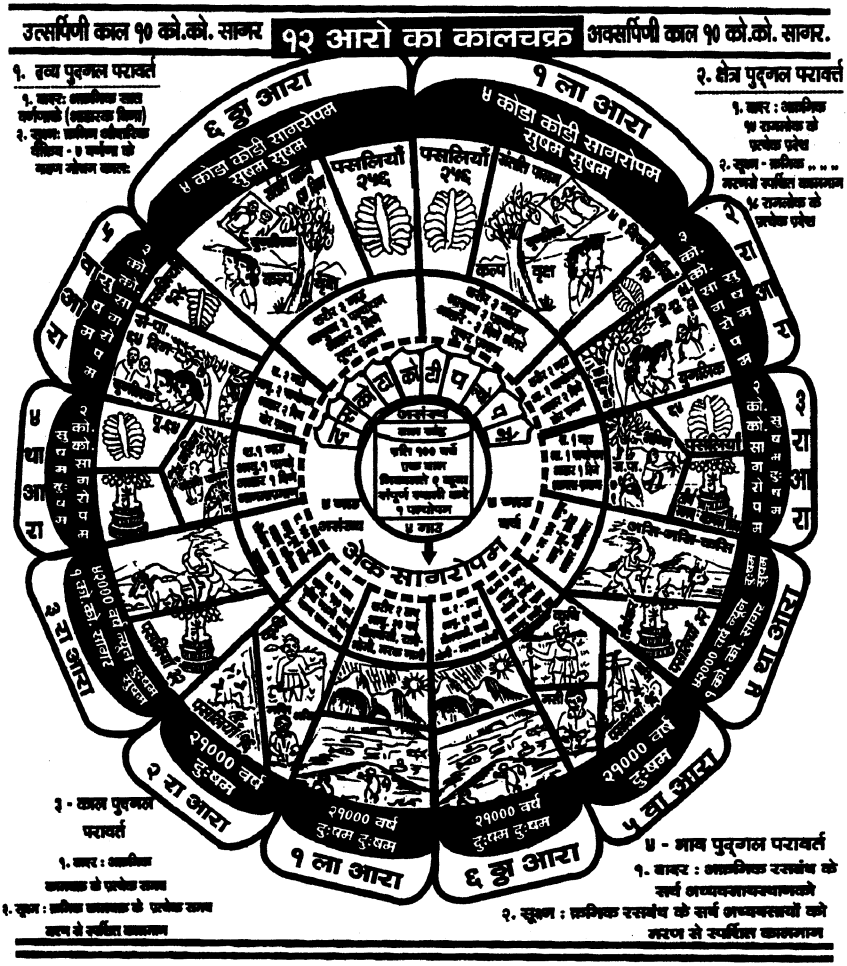

चित्र : छह आरों का विवेचन

तब प्रथम तीर्थंकर का जन्म होता है। इस आरे के तीसरे भाग में छह संघयण तथा छह संस्थान होते हैं। अवगाहना एक हजार धनुष से कम होती है। जीव स्वकृत कर्मों के अनुसार चारों गतियों में जाते है तथा कर्म क्षय कर मोक्ष में भी जाते है।

४. दुःषम-सुषम : इसका काल ४२ हजार वर्ष न्यून एक कोडाकोडी सागरोपम का है। इसमें दुःख ज्यादा और सुख कम होता है। इस आरे में मनुष्य का उत्कृष्ट शरीरमान ५०० धनुष, उत्कृष्ट आयुष्य पूर्व क्रोड वर्ष तथा आहार अनियमित होता है। शरीर में ३२ पसलियाँ होती हैं। छह संघयण व छह संस्थान होते हैं। इस आरे में युगलिकों की उत्पत्ति नहीं होती है। इस आरे में २३ तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव तथा नौ प्रतिवासुदेव होते हैं।

५. दुःषम : इसका कालमान इक्कीस हजार वर्ष का है। इसमें दुःख की अधिकता होने से इसका नाम दुःषम है। जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट साधिक सौ वर्ष का होता है। उत्कृष्ट अवगाहना ७ हाथ होती है। पसलियाँ १६ तथा अन्तिम संघयण व अन्तिम संस्थान होता है। इस आरे में जन्मा जीव मोक्ष प्राप्त नहीं करता है। इस आरे के अन्तिम दिन का तीसरा भाग बीतने पर जाति, धर्म, व्यवहार, सदाचार आदि का लोप हो जाता है। वर्तमान में यही आरा चल रहा है।

६. दुःषम-दुःषम : इक्कीस हजार वर्ष का यह छट्ठा आरा अत्यन्त दुःखमय होने से इसका नाम दुःषम-दुःषम है। इस काल में मानव की देह एक हाथ, पुरुष का आयुष्य २० वर्ष तथा स्त्री का आयुष्य १६ वर्ष का होता है। पसलियाँ ८ व आहार अमर्यादित होता है। छह वर्ष की कुरूपवान् बाला गर्भधारण कर बच्चे को जन्म देती है। सुअर के सदृश सन्तानें अधिक होती हैं। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, संघयण, संस्थान, रूप आदि सब कुछ अशुभ होते हैं। प्राणी अत्यधिक क्लेशकारी होते हैं।

गंगा तथा सिंधु नदियों के किनारे स्थित ७२ बिलों में मनुष्य रहते हैं। दिन में सख्त ताप व रात में भयंकर ठण्डक होती है। रात्रि में बिलवासी

मानव मछलियाँ व जलचरों को पकडकर रेती में दबा देते हैं। सूर्य के प्रचंड ताप से वे दिन में भून जाने पर रात्रि में उन्हें खाते हैं। इस प्रकार ये हिंसक जीव मांसाहारी होते हैं, जो मरकर प्राय: नरक व तिर्यंच योनि में उत्पन्न होते हैं।

४३५) उत्सर्पिणी काल के स्वरूप का वर्णन करो।

उत्तर : १. दु:षम-दु:षम : अवसर्पिणी के छट्ठे आरे की भांति यह आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। विशेषता केवल इतनी है कि अवसर्पिणी काल में देह, आयुष्य आदि का उत्तरोत्तर ह्रास होता है, जबकि उत्सर्पिणी में उत्तरोत्तर विकास होता है।

२. दु:षम - कालमान २१ हजार वर्ष। इसमें सात-सात दिन तक पांच प्रकार की वृष्टियाँ होती हैं।

(१) पुष्कर संवर्तक मेघ - इससे अशुभ भाव, रूक्षता, उष्णता नष्ट होती है।

(२) क्षीर मेघ - शुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की उत्पत्ति होती है।

(३) घृत मेघ - भूमि में स्नेह (स्निग्धता) का प्रादुर्भाव होता है।

(४) अमृत मेघ - वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि के अंकुर प्रस्फुटित होते हैं।

(५) रस मेघ - इससे वनस्पतियों में फल, फूल, पत्ते आदि की वृद्धि होती है। पृथ्वी हरी-भरी और रमणीय हो जाती है। बिलवासी बाहर निकलकर आनंद मनाते है। मांसाहार का त्याग व बुद्धि में दया का आविर्भाव होता है। यह अवसर्पिणी के ५ वें आरे जैसा है।

३. दु:षम-सुषम : यह आरा बयालीस हजार वर्ष न्यून एक कोडाकोडी सागरोपम का होता है। अवसर्पिणी के ४थे आरे के समान ही इसे समझना चाहिये।

४. सुषम-दु:षम : इसे अवसर्पिणी के तीसरे आरे के समान समझना चाहिये।

५. सुषम : इसे अवसर्पिणी के दूसरे आरे के समान समझना चाहिये।

६. सुषम-सुषम : इसे अवसर्पिणी के पहले आरे के समान समझना चाहिये।

४३६) परिणाम किसे कहते है ?

उत्तर : एक अवस्था छोडकर दूसरी अवस्था में जाना परिणाम कहलाता है।

४३७) छह द्रव्य में से कितने द्रव्य परिणामी तथा कितने अपरिणामी है ?

उत्तर : छह द्रव्य में से जीव तथा पुद्गल, ये दो द्रव्य परिणामी हैं। शेष ४ द्रव्य अपरिणामी हैं।

४३८) जीव के परिणाम कितने व कौन से हैं ?

उत्तर : जीव के १० परिणाम है –

१. गति परिणाम (देवादि चार गतियाँ)
२. इन्द्रिय परिणाम (स्पर्शनादि पांच इन्द्रियाँ)
३. कषाय परिणाम (क्रोधादि चार)
४. योग परिणाम (मनोयोगादि तीन)
५. लेश्या परिणाम (कृष्णादि छह)
६. उपयोग परिणाम (मतिज्ञानोपयोग आदि बारह)
७. ज्ञान परिणाम (मत्यादि आठ)
८. दर्शन परिणाम (चक्षुदर्शनादि चार)
९. चारित्र परिणाम (सामायिकादि सात)
१०. वेद परिणाम (स्त्रीवेदादि तीन)

जीव उपरोक्त दस प्रकार के परिणामों को प्राप्त करता रहता है।

४३९) पुद्गल के परिणाम कौन-से हैं ?

उत्तर : पुद्गल के परिणाम निम्न हैं –

१. बन्ध परिणाम (परस्पर सम्बन्ध होना)
२. गति परिणाम (स्थानान्तर होना)
३. संस्थान परिणाम (आकार में निष्पन्न होना)
४. भेद परिणाम (स्कंध से अलग पडना)
५. वर्ण परिणाम (वर्ण उत्पन्न होना)

६. गंध परिणाम (गंध उत्पन्न होना)
७. रस परिणाम (रस उत्पन्न होना)
८. स्पर्श परिणाम (स्पर्श उत्पन्न होना)
९. अगुरुलघु परिणाम (गुरुत्व आदि उत्पन्न होना)
१०. शब्द परिणाम (शब्द उत्पन्न होना)

षड् द्रव्यों का विशेष विवेचन

४४०) क्या छहों द्रव्य शाश्वत है ?

उत्तर : हां - छहों द्रव्य शाश्वत अर्थात् अनादि-अनंत हैं।

४४१) छह द्रव्यों में कितने द्रव्य जीव तथा कितने अजीव हैं ?

उत्तर : केवल जीवास्तिकाय ही जीव है। शेष ५ अजीव हैं।

४४२) छह द्रव्य में कितने रूपी व कितने अरूपी हैं ?

उत्तर : केवल पुद्गलास्तिकाय रूपी हैं। शेष ५ अरूपी हैं।

४४३) छह द्रव्यों में कितने सप्रदेशी व कितने अप्रदेशी हैं ?

उत्तर : केवल काल द्रव्य अप्रदेशी है। शेष ५ द्रव्य सप्रदेशी (प्रदेश सहित) हैं।

४४४) छह द्रव्यों में से कितने द्रव्य एक तथा कितने अनेक हैं ?

उत्तर : १. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ये तीन एक-एक है। शेष तीन जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय तथा काल अनंत हैं।

४४५) छह द्रव्यों में कितने द्रव्य क्षेत्र व कितने क्षेत्री हैं ?

उत्तर : छह द्रव्यों में केवल आकाश द्रव्य क्षेत्र है। शेष पांच द्रव्य क्षेत्री हैं।

४४६) क्षेत्र व क्षेत्री में क्या अंतर है ?

उत्तर : द्रव्य जिसमें रहते हो, वह क्षेत्र है। उसमें रहने वाले द्रव्य क्षेत्री कहलाते हैं।

४४७) छह द्रव्य में से कितने द्रव्य क्रियावान् तथा कितने अक्रियावान् है ?

उत्तर : जीव तथा पुद्गल, ये दो द्रव्य क्रियावान् हैं तथा शेष चार अक्रियावान्

हैं।

४४८) क्रियावान्-अक्रियावान् से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : क्रिया का अर्थ यहाँ गमन-आगमन के लिये प्रयुक्त हुआ है। धर्मास्तिकायादि चारों द्रव्य सदाकाल स्थिर स्वभावी है, अतः उन्हें अक्रियावान् कहा गया है। जीव और पुद्गल में चूंकि गति होती है, अतः वे क्रियावान् हैं।

४४९) छह द्रव्यों में कितने नित्य व कितने अनित्य हैं ?

उत्तर : पुद्गल भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को प्राप्त करने से अनित्य है तथा शेष चार सदा स्वस्वभाव में रहने से नित्य है। जीव आत्मत्व की अपेक्षा नित्य है और गतियों में परिभ्रमण करने से, विभिन्न पर्याय धारण करने से अनित्य है।

४५०) छह द्रव्यों में कितने द्रव्य कारण तथा कितने अकारण हैं ?

उत्तर : धर्मास्तिकायादि ५ द्रव्य कारण तथा जीव द्रव्य अकारण हैं।

४५१) कारण-अकारण से क्या आशय है ?

उत्तर : जो द्रव्य अन्य द्रव्यों के कार्य में उपकारी निमित्तभूत होता है, उसे कारण कहते है। और वह कारण द्रव्य जिन द्रव्यों के कार्य में कारणभूत हुआ हो, वे द्रव्य अकारण है।

४५२) छह द्रव्यों में से कितने द्रव्य कर्ता व कितने अकर्ता हैं ?

उत्तर : केवल जीव द्रव्य कर्ता है। शेष ५ द्रव्य अकर्ता है।

४५३) कर्ता व अकर्ता से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : अन्य द्रव्यों का उपभोग करने वाला द्रव्य कर्ता कहलाता है तथा उपभोग में आने वाले द्रव्य अकर्ता कहलाते हैं। दूसरे अर्थ में, जो धर्म-कर्म, पुण्य-पाप आदि क्रिया करता है, वह कर्ता है तथा धर्म, कर्मादि नहीं करने वाला अकर्ता है।

४५४) छह द्रव्यों में कितने द्रव्य सर्वव्यापी तथा कितने देशव्यापी हैं ?

उत्तर : एक आकाश द्रव्य लोक-अलोक प्रमाण व्याप्त होने से सर्वव्यापी है तथा शेष ५ द्रव्य केवल लोकाकाश में ही होने से देशव्यापी है।

४५५) सर्वव्यापी तथा देशव्यापी किसे कहते है ?

उत्तर : लोक तथा अलोक में, सर्वत्र व्याप्त होकर रहता है, वह सर्वव्यापी कहलाता है। जो केवल लोक में ही रहता है, वह देशव्यापी कहलाता है।

४५६) छह द्रव्यों में से कितने अप्रवेशी तथा कितने सप्रवेशी है ?

उत्तर : सभी द्रव्य यद्यपि एक दूसरे में प्रविष्ट होकर एक ही स्थान में रहे हुए है, तथापि कोई भी द्रव्य अन्य द्रव्य रूप में परिणमित नहीं होता है। अतः सभी द्रव्य अप्रवेशी है।

४५७) प्रवेशी किसे कहते है ?

उत्तर : प्रवेशी अर्थात् अपने स्वभाव को छोड़कर अन्य द्रव्य रूप हो जाना अर्थात् धर्मास्तिकाय का अधर्मास्तिकाय रूप होना या जीव का अजीव हो जाना प्रवेशी कहलाता है। पर ऐसा कदापि नहीं होता है, अतः सभी द्रव्यों को अप्रवेशी कहा गया है।

४५८) अलोकाकाश में अन्य कोई भी द्रव्य नहीं है फिर उसमें अवकाश देने की क्रिया कैसे घट सकेगी ?

उत्तर : अलोकाकाश में भी लोकाकाश के समान ही अवकाश देने की शक्ति है। वहाँ कोई अवकाश लेने वाला द्रव्य नहीं है, इसीसे वह क्रिया नहीं करता।

४५९) छह द्रव्यों की कितनी संख्या है ?

उत्तर : केवली भगवान् ने अपने ज्ञान से देख कर पूर्वोक्त छह द्रव्यों की संख्या इस प्रकार बतलाई है - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय एक-एक है। जीव द्रव्य अनंत हैं, उनके भेद इस प्रकार हैं - संज्ञी मनुष्य संख्यात और असंज्ञी मनुष्य असंख्यात। नरक के जीव असंख्यात, देव असंख्यात, तिर्यंच पंचेन्द्रिय असंख्यात, बेइन्द्रिय जीव असंख्यात, तेउकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय प्रत्येक असंख्यात-असंख्यात हैं। इनसे सिद्ध जीव अनंतगुणा हैं। सिद्धों से भी निगोद के जीव अनंतगुणा हैं।

४६०) एक द्रव्य कहाँ पाया जाता है ?

उत्तर : अलोक में एक द्रव्य (आकाशास्तिकाय) पाया जाता है ।

४६१) दो द्रव्य कहाँ पाये जाते हैं ?

उत्तर : विभाव परिणामी में जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय - ये दो द्रव्य पाये जाते हैं ।

४६२) चार द्रव्य कहाँ पाये जाते हैं ?

उत्तर : अरुपी अजीव में चार द्रव्य (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल) पाये जाते हैं ।

४६३) पाँच द्रव्य कहाँ पाये जाते हैं ?

उत्तर : जीवास्तिकाय को छोड़ कर शेष पाँच द्रव्य अजीव में पाये जाते हैं ।

४६४) छह द्रव्य कहाँ पाये जाते हैं ?

उत्तर : संसार में छहों द्रव्य पाये जाते हैं ।

४६५) अजीव तत्त्व के कुल कितने भेद हैं ?

उत्तर : अजीव तत्त्व के मुख्य भेद १४ है, जो पूर्व में बताये गये हैं परंतु विशेष विचारणा करने पर कुल भेद ५६० होते हैं । ५३० भेद रूपी अजीव के तथा ३० भेद अरूपी अजीव के होते है ।

४६६) अजीव के ५६० भेदों को स्पष्ट करो ।

उत्तर : रूपी अजीव के ५३० भेद –

१. वर्ण के १०० भेद : कृष्ण-नील-रक्त-पीत तथा श्वेत, इन पांचों वर्णों में ५ रस, २ गंध, ८ स्पर्श और ५ संस्थान होते हैं । इन २० भेदों को ५ वर्ण से गुणा करने पर २० x ५ = १०० ।

२. गंध के ४६ भेद : सुरभि व दुरभि - दो गंध है । प्रत्येक गंध में ५ वर्ण, ५ रस, ८ स्पर्श तथा ५ संस्थान है । इन २३ भेदों को दो गंध से गुणा करने पर २३ x २ = ४६ ।

३. रस के १०० भेद : तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और मधुर, इन पांच रसों में प्रत्येक में ५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श तथा ५ संस्थान है। इन बीस को ५ रस से गुणा करने पर २० x ५ = १०० ।

४. स्पर्श के १८४ भेद : ८ स्पर्श में से प्रत्येक स्पर्श में ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ६ स्पर्श (आठ स्पर्श में एक स्वयं व एक विरोधी स्पर्श को छोडकर) और ५ संस्थान, कुल इन २३ भेदों को ८ स्पर्श से गुणा करने पर २३ x ८ = १८४ ।

५. संस्थान के १०० भेद : परिमंडल, आयत, वृत्त, त्र्यस्त्र व चतुरस्त्र, इन पांच संस्थानों के ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श होते हैं । इन २० भेदों को ५ संस्थान से गुणा करने पर २० x ५ = १०० ।

वर्ण	गंध	रस	स्पर्श	संस्थान	कुल
१००	४६	१००	१८४	१००	५३०

अरूपी अजीव के ३० भेद :

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय तथा ४. काल, इन चार द्रव्यों के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव तथा गुण, प्रत्येक के ये पांच-पांच भेद करने पर ४ x ५ = २० भेद होते हैं ।

धर्मास्तिकाय के ३ : स्कंध, देश, प्रदेश ।

अधर्मास्तिकाय के ३ : स्कंध, देश, प्रदेश ।

आकाशास्तिकाय के ३ : स्कंध, देश, प्रदेश ।

काल का एक भेद – ये कुल १० भेद ।

तथा उपरोक्त २० भेद ।

इस प्रकार अरूपी अजीव के ३० भेद होते हैं ।

५३० + ३० = ५६० भेद अजीव तत्त्व के कहे गये हैं ।

४६७) अजीव तत्त्व को जानने का क्या उद्देश्य है ?

उत्तर : अजीव तत्त्व को जानने से जीव को लोक व अलोक के स्वरूप का ज्ञान होता है । लोक में रहे कुछ द्रव्य किस प्रकार हम पर उपकार करते हैं, यह ज्ञान अध्ययन से होता है । अजीव तत्त्वों में सबसे मुख्य है पुद्गल । इस पुद्गल से आत्मा का अनादिकाल से संबंध है । क्योंकि जीव (आत्मा) अनादिकाल से शरीर से सम्बद्ध है । शरीर, कर्म, इन्द्रियाँ सब कुछ पुद्गल की ही परिणति है । इन पुद्गलों में अनुरक्त तथा

आसक्त बनकर जीव जहाँ अनंत संसार का परिभ्रमण बढाता है, वहीं इनसे अपने आप को अलग कर कर्मक्षय भी कर सकता है। राग-द्वेष, क्रोध, कषाय में सबसे बड़ा निमित्त है पुद्गल। जीव धन, वैभव, सत्ता, संपत्ति को प्राप्त करके शाश्वत् तथा अनंत ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय स्वभाव को विस्मृत कर जाता है। क्षणिक, विनाशी और जड पुद्गलों के निमित्त से जीव नरक तक का आयुष्य बांध लेता है और इन्हीं पुद्गलों का उदासीन भाव से सहयोग लेकर वह अजर- अमर पद भी प्राप्त कर सकता है। इन पंचास्तिकाय के स्वरूप को जो यथार्थ रूप से समझ लेता है, वह अवश्यमेव संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

४६८) संसार में हमें अनंत पदार्थ दृष्टिगत होते हैं, फिर द्रव्य की संख्या छह ही क्यों मानी गयी है ?

उत्तर : द्रव्य छह इसलिये माने गये हैं कि इन सभी के गुण एक दूसरे से नहीं मिलते है। जिसमें त्रिकाल सहचारी कोई भी विशेष गुण न हो वह स्वतंत्र द्रव्य नहीं होता। जगत् में पुद्गल पदार्थ अनंत है तथा उन सबके नाम, आकृति आदि भी भिन्न-भिन्न है परंतु उन सबमें पुद्गल के ही गुण पाये जाते हैं। उनसे अन्य कोई गुण उनमें नहीं होने से हम उसे किसी स्वतंत्र द्रव्य के अस्तित्व के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। जीव राशि में भी अनंत जीव हैं। सभी की पर्यायें (मनुष्य, तिर्यंचादि) भिन्न-भिन्न है तथापि उनमें चेतना तथा उपयोग लक्षण एक समान ही है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय तथा काल, ये एक तथा अखंड द्रव्य हैं, अतः द्रव्य छह ही है।

पुण्य तत्त्व का विवेचन

४६९) पुण्य किसे कहते है ?

उत्तर : जो आत्मा को पवित्र करें, जिसकी शुभ प्रकृति हो, जिसका परिणाम मधुर हो, जो सुख-संपदा प्रदान करें, उसे पुण्य कहते है।

४७०) पुण्य बन्ध के कितने कारण हैं ?

उत्तर : पुण्य बन्ध के नौ कारण हैं –

१. अन्न पुण्य - पात्र को अन्न देने से ।

२. पान पुण्य - पात्र को जल देने से ।

३. लयन पुण्य - पात्र को स्थान देने से ।

४. शयन पुण्य - पात्र को शय्या, पाट आदि देने से ।

५. वस्त्र पुण्य - पात्र को वस्त्र देने से ।

६. मन पुण्य - शुभ संकल्प रूप व्यापार से ।

७. वचन पुण्य - शुभ वचन रूप व्यापार से ।

८. काय पुण्य - काया के शुभ व्यापार से ।

९. नमस्कार पुण्य - देव, गुरु तथा अपने से अधिक गुणवान को नमस्कार करने से ।

४७१) पात्र कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर : पात्र तीन प्रकार के होते है - १. सुपात्र, २. पात्र, ३. अनुकंपादि पात्र।

४७२) सुपात्र किसे कहते है ?

उत्तर : मोक्ष मार्ग की ओर अभिमुख हुए तीर्थंकर भगवान से लेकर मुनि महाराज आदि महापुरुष सुपात्र है ।

४७३) पात्र किसे कहते है ?

उत्तर : धर्मी गृहस्थ तथा सद्गृहस्थ पात्र कहलाते हैं ।

४७४) अनुकंपादि पात्र किसे कहते है ?

उत्तर : करुणा, दया करने योग्य अपंग जीव अनुकंपादि पात्र कहलाते हैं ।

४७५) सुपात्र को दान देने से क्या लाभ होता है ?

उत्तर : सुपात्र को धर्म की बुद्धि से दान देने पर अशुभ कर्मों की महानिर्जरा होती है तथा महान् पुण्यानुबंधी पुण्य का उपार्जन होता है ।

४७६) पात्र को दान देने से क्या होता है ?

उत्तर : धर्मी गृहस्थादि पात्र को दान देने से भी पुण्य उपार्जन होता है पर मुनि की अपेक्षा अल्प पुण्य का बन्ध होता है ।

४७७) अपंगादि जीवों को दान देने से क्या होता है ?

उत्तर : अपंगादि दु:खी जीवों को अन्नादिक का दान देने से उन्हें सुख और शांति मिलती है, अत: उससे भी पुण्य का उपार्जन होता है ।

४७८) अपात्र को दान देने से क्या पुण्य बंधता है ?

उत्तर : जो जीव सुपात्र, पात्र या अनुकंपा पात्र नहीं है, अगर वह हमारे घर आंगन में आ जाय कुछ मांगने के लिये तो उसे तिरस्कृत या अपमानित नहीं करना चाहिए । उस अपात्र को यदि हम दुत्कार कर निकाल देते हैं तो हमारे धर्म की निंदा होती है, इस विचार से यदि हम दान करते है तो पुण्योपार्जन होता है अथवा लक्ष्मी की निस्सारता और निर्मोहता से प्रत्येक जीव को दान दिया जाय तब भी पुण्य का ही बंध होता है ।

४७९) नौ प्रकार का पुण्य करने से कितने प्रकार का पुण्य बंध होता है ?

उत्तर : नौ प्रकार का पुण्य करने से ४२ प्रकार का पुण्य बंध होता है ।

४८०) कर्म कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर : कर्म दो प्रकार के है - १. घाती कर्म, २. अघाती कर्म ।

४८१) घाती कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : घाती कर्म के चार भेद हैं - १. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. मोहनीय, ४. अंतराय ।

४८२) अघाती कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : अघाती कर्म के चार भेद हैं - १. वेदनीय, २. आयुष्य, ३. नाम, ४. गोत्र ।

४८३) घाती कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जो आत्मा के अनुजीवी (मूल) गुणों का घात करें, वे घाती कर्म कहलाते हैं ।

४८४) अघाती कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जो आत्मा के प्रतिजीवी गुणों का घात करें, वे अघाती कर्म कहलाते हैं ।

४८५) घाती-अघाती कर्मों में से पुण्य के भेद किसमें हैं ?

उत्तर : अघाती कर्म में पुण्य के भेद हैं ।

पुण्यतत्त्व के बयालीस भेद

४८६) अघाती कर्मों में पुण्य के ४२ भेद किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर : वेदनीय - १, आयुष्य - ३, नाम - ३७, गोत्र - १ । इस प्रकार कुल ४२ भेद होते हैं ।

४८७) पुण्य तत्व की ४२ प्रकृतियों का नामोल्लेख करे ।

उत्तर : १. शाता वेदनीय,

२. उच्चगोत्र,

३-४. मनुष्यद्विक (मनुष्यगति - मनुष्यानुपूर्वी),

५-६. देवद्विक (देवगति - देवानुपूर्वी),

७. पंचेन्द्रिय जाति,

८-१२. ५ शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण),

१३-१५. ३ अंगोपांग (औदारिक अंगोपाग, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक अंगोपांग),

१६. प्रथम संघयण (वज्रऋषभनाराच),

१७. प्रथम संस्थान (समचतुरस्त्र),

१८-२१. वर्ण चतुष्क (शुभ वर्ण-गंध-रस-स्पर्श),

२२. अगुरुलघु नामकर्म, २३. पराघात नामकर्म,

२४. श्वासोच्छ्वास नामकर्म, २५. आतप नामकर्म,

२६. उद्योत नामकर्म, २७. शुभविहायोगति नामकर्म,

२८. निर्माण नामकर्म,

२९-३८. त्रसदशक (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश),

३९. देवायुष्य, ४०. मनुष्यायुष्य, ४१. तिर्यञ्चायुष्य, ४२. तीर्थंकर ।

ये समस्त प्रकृतियाँ पुण्य उदय से ही प्राप्त होती हैं ।

४८८) शातावेदनीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को विविध सुख साधन मिले, आरोग्य तथा इन्द्रिय आदि से उत्पन्न होने वाले सुख का अनुभव हो, उसे शाता वेदनीय कर्म कहते है ।

४८९) उच्चगोत्र किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को उच्च कुल, उत्तम वंश तथा जाति की प्राप्ति होती है, उसे उच्चगोत्र कहते है ।

४९०) मनुष्य गति किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को मनुष्य पर्याय की प्राप्ति होती है, उसे मनुष्यगति कहते है ।

४९१) मनुष्यानुपूर्वी किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव मनुष्यभव में जाते समय आकाश प्रदेशों की श्रेणी के अनुसार गमन करता हुआ उत्पत्ति स्थान पर पहुँचता है, उसे मनुष्यानुपूर्वी कहते है ।

४९२) गति नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के कारण नरकादि पर्याय प्राप्त होती है, उसे गति नामकर्म कहते है । इसके ४ भेद है - १. नरक गति, २. तिर्यञ्च गति, ३. मनुष्य गति, ४ देवगति ।

४९३) आनुपूर्वी नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से विग्रह गति में रहा हुआ जीव आकाशप्रदेशों की श्रेणी के अनुसार गमन कर उत्पत्ति स्थल पर पहुँचता है, उसे आनुपूर्वी नामकर्म कहते है ।

जीव की गति दो प्रकार से होती है – ऋजु गति तथा वक्रगति । ऋजुगति से जीव सीधी आकाश श्रेणी से दूसरे भव में जाता है । परंतु जब कभी उसे आकाश श्रेणी में वक्रता करनी पडती है, तब यह कर्म उदय में आता है । अर्थात् समश्रेणी में इस कर्म का उदय नहीं होता। वक्रगति में ही इसका उदय होता है तथा जिस गति में पैदा होना होता है, वहाँ पहुँचने तक इसका उदय रहता है ।

४९४) देवगति व देवानुपूर्वी (देवद्विक) किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को देवगति व देवानुपूर्वी मिलती है ।

४९५) द्विक, त्रिक, चतुष्क या दशक से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : द्विक, त्रिक, चतुष्क, दशक आदि संज्ञाए हैं । द्विक से दो, त्रिक से तीन यावत् दशक से दश प्रकृतियों का ग्रहण करना चाहिए । नरक द्विक से नरकगति, नरकानुपूर्वी अथवा नरक त्रिक से नरकगति, नरकानुपूर्वी व नरकायुष्य इन तीन प्रकृतियों का ग्रहण होता है । इसी प्रकार त्रस दशक से त्रसादि १० प्रकृतियों का ग्रहण होता है । कर्मशास्त्र में इस प्रकार की संज्ञाएँ प्रचलित हैं ।

४९६) जाति नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जो कर्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय जाति प्रदान करता है, उसे जातिनामकर्म कहते है ।

४९७) जाति की परिभाषा लिखो ।

उत्तर : जगत के जीवों का इन्द्रियों द्वारा किया गया पृथक्करण जाति कहलाता है ।

४९८) शरीर नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जो शीर्ण-विशीर्ण होता है, उसे शरीर कहते है । शरीर नामकर्म के उदय से जीव को ५ प्रकार के शरीर प्राप्त होते हैं ।

४९९) औदारिक शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : उदार, स्थूल, औदारिक वर्गणाओं से बना हुआ तथा मोक्ष प्राप्ति में खास उपयोगी औदारिक शरीर कहलाता है । मनुष्य व तिर्यञ्च का शरीर औदारिक है ।

५००) वैक्रिय शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : जिसमें छोटे-बडे, एक - अनेक, नाना प्रकार के रूप बनाने की शक्ति हो, जो वैक्रिय वर्गणाओं से बना हुआ हो, जिसमें हाड, मांस न हो, मरने के बाद कपूर की तरह बिखर जाय, उसे वैक्रिय शरीर कहते है। देव तथा नारक जीवों को वैक्रिय शरीर जन्म से प्राप्त होता है ।

५०१) आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से आहारक लब्धियुक्त चौदह पूर्वधारी मुनि अपनी शंका का समाधान करने अथवा तीर्थंकर की ऋद्धि देखने की अभिलाषा से पुद्गलों का आहरण कर स्वयं एक हाथ का शरीर आत्म प्रदेशों से व्याप्त कर तीर्थंकर भगवान के पास भेजते हैं, उसे आहारक शरीर कहते है। यह शरीर इतना सूक्ष्म होता है कि चर्म चक्षुओं से दिखायी नहीं देता हैं।

५०२) तैजस शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से शरीर में आहार का पाचन होता है, उन तैजस पुद्गलों के समूह से निर्मित शरीर को तैजस शरीर कहते है।

५०३) कार्मण शरीर किसे कहते है ?

उत्तर : कार्मण वर्गणाओं से बना हुआ, आठ कर्मों का समूह रूप कार्मण शरीर है।

५०४) अंगोपांग नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से अंग, उपांग तथा अंगोपांग की प्राप्ति होती है, उसे अंगोपांग नामकर्म कहते है।

५०५) औदारिक, वैक्रिय तथा आहारक अंगोपांग नामकर्म से क्या आशय है?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव के औदारिक, वैक्रिय, आहारक शरीर को अंग-उपांग तथा अंगोपांग मिले, उसे औदारिक, वैक्रिय, आहारक अंगोपांग नामकर्म कहते है।

५०६) अंग, उपांग तथा अंगोपांग किसे कहते हैं ?

उत्तर : दो हाथ, दो पाँव, सिर, पेट, पीठ तथा हृदय, ये आठ अंग हैं। अंगुलियाँ उपांग है तथा रेखाएं आदि अंगोपांग हैं। औदारिक, वैक्रिय तथा आहारक इन तीन शरीरों के ही अंगोपांग होते हैं।

५०७) संघयण (संहनन) नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को हड्डियों की विशिष्ट रचना प्राप्त होती है, उसे संघयण नामकर्म कहते हैं।

५०८) वज्रऋषभनाराच संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : वज्र = कील, ऋषभ - पट्टा, नाराच - मर्कट बंध अर्थात् जिसमें दोनों ओर से मर्कट बंध द्वारा जुडी हुई दो हड्डियों पर तीसरा हड्डी का पट्टा हो, इन तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील हो, उसे वज्रऋषभनाराच संघयण कहते हैं। दोनों हाथों से दोनों हाथों की कलाईयाँ परस्पर पकडे वह मर्कटबंध कहलाता है ।

५०९) संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को शरीर की आकृति (रचना) शुभाशुभ मिलती है, उसे संस्थान नामकर्म कहते हैं ।

५१०) समचतुरस्त्र संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : सम = समान, चतुः = चार, अस्त्र = कोण। जिस शरीर की आकृति में चार कोण (कोने) समान हो, वह समचतुरस्त्र संस्थान है। चार कोने पद्मासन लगाकर बैठे हुए मनुष्य के (१) बांये घुटने से दांया कंधा (२) दाये घुटने से बांया कंधा (३) दोनों घुटनों के बीच का अंतर (४) ललाट से आसन के मध्य का अंतर एक समान होता है, इस शरीर की सुन्दरता अद्भुत होती है। यह समचतुरस्त्र संस्थान पुण्य उदय से प्राप्त होता है। तीर्थंकर तथा देवताओं के समचतुरस्त्र संस्थान ही होता है ।

५११) वर्णचतुष्क नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श मिलते हैं, उसे वर्णचतुष्क नामकर्म कहते हैं ।

५१२) शुभवर्ण क्या है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर को हंस आदि के समान शुक्ल आदि वर्ण की प्राप्ति होती है, वह शुभवर्ण नामकर्म कहलाता है। शुभ वर्ण तीन हैं - (१) लाल (२) पीला (३) श्वेत ।

५१३) शुभगंध नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में कमल, गुलाब के फूल या चंदन जैसी खुश्बू आती है, उसे शुभगंध नामकर्म कहते हैं ।

५१४) शुभ रस नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में आम्रफल आदि के समान शुभ रस हो, उसे शुभ रस नामकर्म कहते है। आम्ल, मधुर और कषाय ये तीन शुभ रस नामकर्म हैं।

५१५) शुभ स्पर्श नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में स्निग्ध आदि शुभ स्पर्श हो, उसे शुभ स्पर्श नामकर्म कहते है। शुभ स्पर्श ४ हैं - स्निग्ध, उष्ण, मृदु, लघु।

५१६) अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर न तो लोहे के समान अतिभारी हो और न ही अर्कतूल (आक की रूई) के समान अति हल्का हो, उसे अगुरुलघु नामकर्म कहते है।

५१७) पराघात नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को इस प्रकार की मुखमुद्रा प्राप्त होती है कि उसकी तेजस्विता से बलवान पुरुष भी क्षोभ तथा घबराहट को अनुभव करता है, उसे पराघात नामकर्म कहते है। इस प्रकार की आकृति पराघात नामकर्म के उदय से प्राप्त होती है।

५१८) श्वासोच्छ्वास नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण कर उसे श्वासोच्छ्वास रूप में परिणमित करता है और बाहर निकालता है, उस शक्ति को श्वासोच्छ्वास नाम कर्म कहते है।

५१९) आतप नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर उष्ण न होकर भी अन्य जीव को उष्णता प्रदान करता है, उसे आतप नामकर्म कहते है। सूर्यमण्डल में रहने वाले पृथ्वीकायिक जीवों के ऐसा ही शरीर होता हैं।

५२०) उद्योत नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शीतल प्रकाश प्रदान करता है,

उसे उद्योत नामकर्म कहते है। चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-तारा, इन चारों ज्योतिष्क विमानों में स्थित पृथ्वीकायमय रत्नों के, देवों का उत्तर वैक्रिय शरीर, प्रकाश करने वाली औषधियाँ आदि के उद्योत नामकर्म का उदय होता है।

५२१) विहायोगति नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को ऊंट या गधे की तरह अशुभ चाल मिलती है अथवा गज, वृषभ तथा हंसादि की तरह शुभ चाल मिलती है, उसे विहायोगति नामकर्म कहते है।

५२२) निर्माण नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयवों की रचना नियत स्थान पर निर्मित होती है, उसे निर्माण नामकर्म कहते है।

५२३) त्रस दशक नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से त्रसादि दश प्रकृतियाँ प्राप्त होती है, उसे त्रसदशक नामकर्म कहते है।

५२४) त्रसदशक में दश प्रकृतियाँ कौन-कौन सी हैं ?

उत्तर : १. त्रस, २. बादर, ३. पर्याप्त, ४. प्रत्येक, ५. स्थिर, ६. शुभ, ७. सुभग, ८. सुस्वर, ९. आदेय, १०. यश।

५२५) त्रस नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव इच्छापूर्वक गमनागमन कर सके, स्वतंत्रता पूर्वक हलन चलन कर सके, उसे त्रसनामकर्म कहते है।

५२६) बादर नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को ऐसा शरीर मिले जो आँखों से या यंत्र से देखा जा सके, उसे बादर नामकर्म कहते है।

५२७) पर्याप्त नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करे, उसे पर्याप्त नामकर्म कहते है।

५२८) प्रत्येक नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से प्रत्येक जीव को भिन्न-भिन्न शरीर की प्राप्ति हो, उसे प्रत्येक नामकर्म कहते है ।

५२९) स्थिर नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को शरीर में हड्डियाँ, दांत आदि स्थिर मिले, उसे स्थिर नामकर्म कहते है ।

५३०) शुभ नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को नाभि के उपर के अवयव शुभ, सुंदर प्राप्त हो, उसे शुभ नामकर्म कहते है ।

५३१) सौभाग्य नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव दूसरों पर उपकार न करने पर भी उन्हें प्रिय लगे, उसे सौभाग्य नामकर्म कहते है ।

५३२) सुस्वर नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव की आवाज कोयल की तरह मधुर हो, उसे सुस्वर नामकर्म कहते है ।

५३३) आदेय नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव का वचन अयुक्तियुक्त तथा तर्क रहित होने पर भी ग्राह्य तथा मान्य हो, उसे आदेय नामकर्म कहते है ।

५३४) यश नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव लोक में प्रशंसा का पात्र बने, उसका गुणगान हो, उसे यश नामकर्म कहते है ।

५३५) आयुष्य कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से संबंधित भव में जीव अपने नियत काल तक जकडा हुआ रहे, उसे आयुष्य कर्म कहते है ।

५३६) आयुष्य कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : आयुष्य कर्म के ४ भेद है : १. नरक आयुष्य, २. तिर्यंच आयुष्य, ३. मनुष्य आयुष्य, ४. देव आयुष्य ।

५३७) तीर्थंकर नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव तीन जगत का पूज्य बनकर तीर्थंकरत्व को प्राप्त करता है, अष्ट महाप्रातिहार्यादि से युक्त बनकर धर्मसंघ की स्थापना करता है, उसे तीर्थंकर नामकर्म कहते है ।

५३८) नरकगति में पुण्य के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : नरकगति में पुण्य प्रकृति के २० भेद होते है -

१. शाता वेदनीय, २. पंचेन्द्रिय जाति, ३. वैक्रिय शरीर, ४. तैजस शरीर, ५. कार्मण शरीर, ६. वैक्रिय अंगोपांग, ७-१०. शुभवर्ण चतुष्क, ११. पराघात, १२. उच्छ्वास, १३. अगुरुलघु, १४. निर्माण, १५. त्रस, १६. बादर, १७. पर्याप्त, १८. प्रत्येक, १९. स्थिर, २०. शुभ ।

५३९) तिर्यंच गति में पुण्य प्रकृति के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : तिर्यंच गति में पुण्य प्रकृति के ३२ भेद होते हैं —

१. शाता वेदनीय, २. तिर्यंच आयुष्य, ३. पंचेन्द्रिय जाति, ४-७. औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कार्मण शरीर, ८-९. औदारिक तथा वैक्रिय अंगोपांग, १०. वज्रऋषभनाराच संघयण, ११. समचतुरस्र संस्थान, १२-१५. शुभवर्ण चतुष्क, १६. शुभ विहायोगति, १७. पराघात, १८. उच्छ्वास, १९. आतप, २०. उद्योत, २१. अगुरुलघु, २२. निर्माण, २३. त्रस, २४. बादर, २५. पर्याप्त, २६. प्रत्येक, २७. स्थिर, २८. शुभ, २९. सुभग, ३०. सुस्वर, ३१. आदेय, ३२. यश ।

५४०) मनुष्य गति में पुण्य प्रकृतियों के कितने भेद संभवित है ?

उत्तर : मनुष्य गति में पुण्य प्रकृतियों के ३७ भेद संभवित है ।

१. शातावेदनीय, २. उच्चगोत्र, ३. पंचेन्द्रिय जाति, ४-६. मनुष्यत्रिक (मनुष्य-गति-आनुपूर्वी-आयुष्य), ७-११. औदारिक आदि ५ शरीर, १२-१४. ३ अंगोपांग, १५. वज्रऋषभनाराच संघयण, १६. समचतुरस्र संस्थान, १७-२०. शुभवर्ण चतुष्क, २१. शुभविहायोमति, २२. पराघात, २३. उच्छ्वास, २४. उद्योत, २५. अगुरुलघु, २६. जिननाम, २७. निर्माण, २८-३७. त्रसदशक।

५४१) देवगति में कितनी पुण्य प्रकृतियाँ होती हैं ?

उत्तर : देवगति में ३० अथवा ३१ पुण्य प्रकृतियाँ होती है :

१. शातावेदनीय, २. उच्चगोत्र, ३. पंचेन्द्रिय जाति, ४-६. देवत्रिक, ७. वैक्रिय शरीर, ८. तैजस शरीर, ९. कार्मण शरीर, १०. वैक्रिय अंगोपांग, ११. समचतुरस्र संस्थान, १२-१५. शुभवर्णचतुष्क, १६. शुभविहायोगति, १७. पराघात, १८. उच्छ्वास, १९. अगुरुलघु, २०. निर्माण, २१. त्रस, २२. बादर, २३. पर्याप्त, २४. प्रत्येक, २५. स्थिर, २६. शुभ, २७. सुभग, २८. सुस्वर, २९. आदेय, ३०. यश और उद्योत साथ में गिनने पर ३१ प्रकृतियाँ होती हैं।

५४२) एकेन्द्रिय जाति में पुण्य के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : एकेन्द्रिय जाति में पुण्य के २२ भेद होते हैं :

१. शाता वेदनीय, २. तिर्यंच आयुष्य, ३. औदारिक शरीर, ४. वैक्रिय शरीर, ५. तैजस शरीर, ६. कार्मण शरीर, ७. पराघात, ८. उच्छ्वास, ९. आतप, १०. उद्योत, ११. अगुरुलघु, १२. निर्माण, १३. बादर, १४. पर्याप्त, १५. प्रत्येक, १६. स्थिर, १७. शुभ, १८. यश, १९-२२. शुभ वर्णचतुष्क।

५४३) बेइन्द्रिय जाति में पुण्य के कितने भेद होते है ?

उत्तर : एकेन्द्रिय की भाँति द्वीन्द्रिय में आतप रहित उपरोक्त २१ भेद होते हैं। तथा वैक्रिय शरीर के स्थान पर उन्हें औदारिक अंगोपांग भेद होता है।

५४४) तेइन्द्रिय जाति में पुण्य के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : बेइन्द्रियवत् २१ भेद होते हैं।

५४५) चतुरिन्द्रिय जाति में पुण्य के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : चतुरिन्द्रिय जाति में उपरोक्तवत् २१ भेद ही होते हैं।

५४६) पंचेन्द्रिय जाति में पुण्य के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : पुण्य तत्व के ४१ भेद पंचेन्द्रिय जाति में होते हैं। केवल आतप नामकर्म का उदय नही होता। शेष सभी पुण्य प्रकृतियाँ पंचेन्द्रिय जाति में संभव है।

५४७) पुण्य तत्त्व को जानने का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर : पुण्य तत्त्व के भेदों को जानने के बाद विचार आता है कि सभी पुण्य

कर्मजन्य है। नाव और नाविक की तरह आत्मा का पुण्य से संबंध होता है परंतु गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के बाद उस नाविक रूपी आत्मा को नावरूपी पुम्य को छोड़ना ही पड़ता है तभी वह गन्तव्य तक पहुंचता है। आज पुण्य तत्त्व संसार में रहने के कारण उपादेय है क्योंकि संसार की विषमताओं से उबारने के लिए ही यह नाव रूप है परंतु जब संसार छूट जायेगा तब पुण्य तत्त्व की भी कोई आवश्यकता नहीं होगी। परंतु सर्व जीवों के प्रति मैत्रीवत् दृष्टि से देखने के लिए देव-गुरु और धर्म की रक्षा करने के लिए पुण्य तत्त्व का उपयोग करना चाहिए। अतः पुण्य तत्त्व को जानने का उद्देश्य जैन दर्शन की प्राप्ति कर स्व-पर कल्याण करना ही हो।

पाप तत्त्व का विवेचन

५४८) पाप किसे कहते है ?

उत्तर : जो आत्मा को मलिन करे, जो बांधते समय सुखकारी किंतु भोगते समय दुःखकारी हो, उसे पाप कहते है।

५४९) पाप बंध के कितने कारण हैं ?

उत्तर : पाप बंध के १८ कारण हैं - १. प्राणातिपात, २. मृषावाद, ३. अदत्तादान, ४. मैथुन, ५. परिग्रह, ६. क्रोध, ७. मान, ८. माया, ९. लोभ, १०. राग, ११. द्वेष, १२. कलह, १३. अभ्याख्यान, १४. पैशुन्य, १५. रति-अरति, १६. परपरिवाद, १७. मायामृषावाद, १८. मिथ्यात्व शल्य।

५५०) प्राणातिपात किसे कहते है ?

उत्तर : जीव के प्राणों को नष्ट करना, प्राणातिपात कहलाता है।

५५१) मृषावाद किसे कहते है ?

उत्तर : असत्य या झूठ बोलना, मृषावाद कहलाता है।

५५२) अदत्तादान किसे कहते है ?

उत्तर : ग्राम, नगर, खेत आदि में रही हुई सचित्त या अचित्त वस्तु को मालिक की आज्ञा के बिना ग्रहण करना, चोरी करना, अदत्तादान कहलाता है।

५५३) मैथुन किसे कहते है ?

उत्तर : अब्रह्म का सेवन करना, मैथुन कहलाता है।

५५४) परिग्रह किसे कहते है ?

उत्तर : आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह करना तथा उन पर ममत्व रखना, परिग्रह है।

५५५) क्रोध किसे कहते है ?

उत्तर : जीव या अजीव पर गुस्सा करने को क्रोध कहते है।

५५६) मान किसे कहते है ?

उत्तर : घमंड या अहंकार करने को मान कहते है।

५५७) माया किसे कहते है ?

उत्तर : कपट या प्रपंच करना माया है।

५५८) लोभ किसे कहते है ?

उत्तर : लालच या तृष्णा रखने को लोभ कहते है।

५५९) राग किसे कहते है ?

उत्तर : माया तथा लोभ जिसमें अप्रकट रूप से विद्यमान हो, ऐसा आसक्ति रूप जीव का परिणाम राग कहलाता है।

५६०) द्वेष किसे कहते है ?

उत्तर : क्रोध तथा मान जिसमें अप्रकट रूप से विद्यमान हो, ऐसा अप्रीति रूप जीव का परिणाम द्वेष कहलाता है।

५६१) कलह किसे कहते है ?

उत्तर : लडाई-झगडा या क्लेश करने को कलह कहते है।

५६२) अभ्याख्यान किसे कहते है ?

उत्तर : दोषारोपण करना या झूठा कलंक लगाने को अभ्याख्यान कहते है।

५६३) पैशुन्य किसे कहते है ?

उत्तर : पीठ पीछे किसी के दोष (उसमें हो या न हो) प्रकट करना या चुगली करना, पैशुन्य कहलाता है।

५६४) रति-अरति किसे कहते है ?

उत्तर : इन्द्रियों के अनुकूल विषय प्राप्त होने पर राग करना रति है। प्रतिकूल

विषयों के प्रति अरूचि, उद्वेग करना, अरति है ।

५६५) परपरिवाद किसे कहते है ?

उत्तर : दूसरों की निन्दा करना, विकथा करना, उसे परपरिवाद कहते है ।

५६६) मायामृषावाद किसे कहते है ?

उत्तर : माया (कपट) पूर्वक झूठ बोलना ।

५६७) मिथ्यात्वशल्य किसे कहते है ?

उत्तर : कुदेव-कुगुरु-कुधर्म पर श्रद्धा होना ।

५६८) उपरोक्त १८ पापस्थानकों से बांधा हुआ पाप कितने प्रकार से भोगा जाता है ?

उत्तर : उपरोक्त १८ पापस्थानकों से बांधा हुआ पाप ८२ प्रकार से भोगा जाता है ।

पाप तत्त्व की बयासी प्रकृतियाँ

५६९) पाप तत्त्व की ८२ प्रकृतियाँ कौन-सी है ?

उत्तर : पाप तत्व की ८२ प्रकृतियाँ वे इस प्रकार हैं –

१-५. ज्ञानावरणीय कर्म की - ५ : मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्यवज्ञानावरणीय, केवलज्ञानावरणीय

६-१०. अंतराय कर्म की - ५ : दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय

११-१९. दर्शनावरणीय कर्म की - ९ : चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, केवलदर्शनावरणीय, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि

२०. गोत्र कर्म की - १ : नीच गोत्र

२१. वेदनीय कर्म की - १ : अशातावेदनीय

२२-४७. मोहनीय कर्म की - २६ : मिथ्यात्व मोहनीय

१६ कषाय :

अनंतानुबंधी - क्रोध-मान-माया-लोभ

अप्रत्याख्यानीय - क्रोध-मान-माया-लोभ

प्रत्याख्यानीय - क्रोध-मान-माया-लोभ

संज्वलन - क्रोध-मान-माया-लोभ

९ नो-कषाय :

हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद

४८. आयुष्य कर्म की - १ : नरकायुष्य

४९-८२. नाम कर्म की - ३४ :

तिर्यंचद्विक : तिर्यंच गति, तिर्यंचानुपूर्वी

नरकद्विक : नरक गति, नरकानुपूर्वी

जाति चतुष्क : एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति,

अशुभ विहायोगति, उपघात

५ संघयण : ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त

५ संस्थान : न्यग्रोध परिमंडल, सादि, कुब्ज, वामन, हुंडक

वर्णचतुष्क-४ वर्ण-गंध-रस-स्पर्श,

स्थावर दशक-१० - स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अपयश

५७०) ज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करे, उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते है ।

५७१) दर्शनावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जो आत्मा के दर्शन गुण को आच्छादित करे, उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते है ।

५७२) वेदनीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के द्वारा आत्मा को सांसारिक, इन्द्रियजन्य सुख-दुःख का अनुभव हो, उसे वेदनीय कर्म कहते है ।

५७३) मोहनीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्व तथा चारित्र गुण का घात करे, जो जीव को विषयों में आसक्त करें, उसे मोहनीय कर्म कहते है ।

५७४) आयुष्य कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के अस्तित्व से जीव जीता है तथा क्षय होने पर मरता है, उसे आयुष्य कर्म कहते है ।

५७५) नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव विविध गति, जाति, शरीर, संस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि प्राप्त करता है, उसे नामकर्म कहते है ।

५७६) गोत्र कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म से जीव उच्च अथवा नीच कुल, वंश, जाति में जन्म लेता है, उसे गोत्र कर्म कहते है ।

५७७) अंतराय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जो कर्म आत्मा के दान, लाभ, भोग, उपभोग, तथा, वीर्य रूप शक्तियों का घात करता है, उसे अंतराय कर्म कहते है ।

५७८) मतिज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : इन्द्रिय तथा मन से होने वाले ज्ञान को जो कर्म आवृत्त करता है, उसे मतिज्ञानावरणीय कर्म कहते है ।

५७९) श्रुतज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : शास्त्रों के पठन-पाठन से होने वाले ज्ञान को जो कर्म आच्छादित करता है, उसे श्रुतज्ञानावरणीय कर्म कहते है ।

५८०) अवधिज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : मन तथा इन्द्रियों की सहायता के बिना रूपी द्रव्यों का प्रत्यक्ष ज्ञान कराने वाले अवधिज्ञान को जो आवृत्त करें, उसे अवधिज्ञानावरणीय कर्म कहते है ।

५८१) मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : अढी द्वीप में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानने वाले ज्ञान को जो आवृत्त करता है, उसे मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म कहते है।

५८२) केवलज्ञानावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : लोक-अलोक के समस्त रूपी, अरूपी पदार्थों का सर्वकालिक समस्त पर्यायों सहित होने वाले आत्मा के ज्ञान को जो कर्म आवृत्त करता है, उसे केवलज्ञानावरणीय कर्म कहते है ।

५८३) चक्षुदर्शनावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : नेत्र द्वारा होने वाले पदार्थ के सामान्य ज्ञान को आवृत्त करने वाला चक्षुदर्शनावरणीय कर्म है ।

५८४) अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : चक्षु के अतिरिक्त चार इन्द्रिय तथा मन से होने वाले पदार्थ के सामान्य ज्ञान पर आवरण करने वाला कर्म अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म है ।

५८५) अवधिदर्शनावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : मन तथा इन्द्रियों की सहायता के बिना आत्मा में होने वाले रूपी पदार्थों के सामान्य ज्ञान को जो आवृत्त करता है, उसे अवधिदर्शनावरणीय कर्म कहते है ।

५८६) केवलदर्शनावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : रूपी, अरूपी समस्त द्रव्यों के होने वाले सामान्य धर्म के अवबोध को जो कर्म रोकता है, उसे केवलदर्शनावरणीय कर्म कहते है ।

५८७) निद्रादर्शनावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : अल्पनिद्रा, जिसमें व्यक्ति हल्की सी पदचाप से ही जग जाय या बिना कष्ट के ही जो नींद जग जाय, उसे निद्रा दर्शनावरणीय कर्म कहते है।

५८८) निद्रा-निद्रा दर्शनावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : गाढ निद्रा-जिसमें से जागने में थोडा कष्ट हो, उसे निद्रा-निद्रादर्शनावरणीय कर्म कहते है ।

५८९) प्रचलादर्शनावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के कारण बैठे-बैठे या खडे-खडे ही नींद आती है, उसे प्रचलादर्शनावरणीय कर्म है ।

५९०) प्रचला-प्रचलादर्शनावरणीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के कारण चलते-चलते नींद आती है, उसे प्रचला-

प्रचलादर्शनावरणीय कर्म कहते है ।

५९१) स्त्यानर्द्धि निद्रा किसे कहते है ?

उत्तर : जिस निद्रा में प्राणी बडे-बडे बलसाध्य कार्य सम्पन्न कर देता है तथा जागृत दशा की अपेक्षा जिस निद्रा में अनेक गुणा अधिक बल आ जाता है, वह स्त्यानर्द्धि निद्रा है । इस निद्रा में वज्रऋषभनाराचसंघयण वाले जीव में अर्धचक्री अर्थात् वासुदेव का आधाबल आ जाता है । सामान्य व्यक्ति का बल सात-आठ गुणा हो जाता है । इस निद्रावाला जीव मरकर नरक में जाता है ।

५९२) अशातावेदनीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को अशाता या दुःख का वेदन होता है, उसे अशातावेदनीय कर्म कहते है ।

५९३) मोहनीय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : मोहनीय कर्म के दो भेद हैं - १. दर्शन मोहनीय, २. चारित्र मोहनीय।

५९४) दर्शन मोहनीय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं - १. सम्यक्त्व मोहनीय, २. मिश्र मोहनीय, ३. मिथ्यात्व मोहनीय ।

५९५) चारित्र मोहनीय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चारित्र मोहनीय के दो भेद हैं - कषाय चारित्र मोहनीय व नोकषाय चारित्र मोहनीय ।

५९६) कषाय व नोकषाय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : कषाय के सोलह व नोकषाय के ९ भेद हैं ।

५९७) दर्शन मोहनीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जो पदार्थ जैसा है, उसे वैसा ही समझना दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन है। आत्मा के सम्यग्दर्शन की शुद्धता का हरण करने वाले अथवा कलुषित करने वाले कर्म को दर्शन मोहनीय कर्म कहते है ।

५९८) सम्यक्त्व मोहनीय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिसका उदय तात्विक रुचि का निमित्त होकर भी औपशमिक या

क्षायिक भाव वाली तत्व रुचि का प्रतिबन्ध करता है, उसे सम्यक्त्व मोहनीय कहते है। यद्यपि यह कर्म शुद्ध होने के कारण सम्यक्त्व में व्याघात नहीं पहुँचाता है तथापि उसे मलिन अथवा चंचल कर देता है।

५९९) मिश्र मोहनीय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से धर्म के प्रति न रुचि हो, न अरुचि हो, उसे मिश्र मोहनीय कहते है।

६००) मिथ्यात्व मोहनीय किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप की रुचि ही न हो बल्कि विपरीत दृष्टि में मोहित हो, उसे मिथ्यात्व मोहनीय कहते है। पाप तत्व में केवल मिथ्यात्व मोहनीय प्रकृति ही अपेक्षित है। अन्य दो नहीं।

६०१) सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से आत्मा को जीव-अजीवादि नौ तत्त्वों पर श्रद्धा होती है अथवा सुदेव-सुगुरु-सुधर्म पर श्रद्धा होती है, उसे सम्यक्त्व कहते है।

६०२) चारित्र मोहनीय किसे कहते है ?

उत्तर : आत्मा के स्वभाव में रमण करना चारित्र है। जो कर्म इस चारित्र गुण का घात करता है, उसे चारित्र मोहनीय कहते है।

६०३) कषाय चारित्र मोहनीय किसे कहते है ?

उत्तर : कष् - संसार, आय-वृद्धि। जिससे संसार की वृद्धि हो अथवा जो आत्मा के गुणों को कषे (नष्ट करे), उसे कषाय चारित्र मोहनीय कहते है।

६०४) नोकषाय चारित्र मोहनीय किसे कहते है ?

उत्तर : जो कषाय न हो परंतु कषाय के उदय के साथ जिनका उदय हो अथवा कषायों के उद्दीपन में जो सहायक हो, उसे नोकषाय चारित्र मोहनीय कहते है।

६०५) कषाय चारित्रमोहनीय के मुख्य भेद स्पष्ट करो ।

उत्तर : कषाय चारित्रमोहनीय के मुख्य ४ भेद हैं –

१. अनन्तानुबंधी कषाय,

२. अप्रत्याख्यानीय कषाय,

३. प्रत्याख्यानीय कषाय,

४. संज्वलन कषाय ।

इन चारों के क्रोध-मान-माया-लोभ ये चार-चार भेद होने से कुल १६ भेद हैं ।

६०६) अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क की व्याख्या करो ।

उत्तर : जो कषाय आत्मा को अनंतकाल तक संसार में परिभ्रमण करावे, अनुबंध करावे, उसे अनन्तानुबंधी कषाय कहते है :

१. अनन्तानुबंधी क्रोध : पर्वत में पडी हुई दरार जिस प्रकार कभी नहीं मिटती, इसी प्रकार यह क्रोध परिश्रम तथा उपाय करने पर भी शान्त नहीं होता ।

२. अनन्तानुबन्धी मान : यह पत्थर के स्तंभ के समान है, जो कभी नहीं झुकता । इसी प्रकार अनन्तानुबंधी मानवाला आत्मा अपने जीवन में कभी नम्र नहीं बनता है ।

३. अनन्तानुबन्धी माया : यह बांस की जड़ों के समान है, जो कभी सीधी या सरल नहीं होती है । इसी प्रकार इस कषाय से युक्त जीव सरल नहीं बनता है ।

४. अनन्तानुबन्धी लोभ : जिस प्रकार मजीठ का रंग कभी नहीं मिटता, उसी प्रकार अनन्तानुबंधी लोभ वाली आत्मा का लालच कभी नहीं मिटता है ।

इस कषाय वाला आत्मा मरकर नरक अथवा तिर्यञ्चादि गति में जाता है ।

६०७) अप्रत्याख्यानीय कषाय चतुष्क की व्याख्या भेद सहित करो ।

उत्तर : जिसका उदय चार महिने से लेकर वर्षभर के अंदर-अंदर खत्म हो जाता है, जो देशविरति चारित्र (श्रावकत्व) का घात करता है, उसे

अप्रत्याख्यानीय कषाय कहते है ।

इस कषाय के उदय से जीव को किसी प्रकार के व्रत, प्रत्याख्यान, नियम आदि धारण करने की इच्छा नहीं होती है । अप्रत्याख्यानीय कषायी आत्मा देव आयुष्य या मनुष्य आयुष्य का बंध करती है ।

१. अप्रत्याख्यानीय क्रोध : पृथ्वी में आई हुई दरार जिस प्रकार पानी के संयोग से फिर भर जाती है, उसी प्रकार अप्रत्याख्यानीय क्रोध की आग विशेष परिश्रम तथा उपाय के द्वारा मिट जाती है ।

२. अप्रत्याख्यानीय मान : जिस प्रकार हड्डी को नमाने के लिये कठिन परिश्रम करना पडता है, ठीक उसी प्रकार यह मान अत्यंत मेहनत व पुरुषार्थ से दूर होता है ।

३. अप्रत्याख्यानीय माया : भेड के सींग की वक्रता महाप्रयत्न से दूर होती है, उसी प्रकार इस प्रकार की माया वाली आत्मा अति परिश्रम से सरल परिणाम को प्राप्त होती है ।

४. अप्रत्याख्यानीय लोभ : गाडी के पहिये के कीचड के समान यह लोभ अति कठिनता से दूर होता है ।

६०८) प्रत्याख्यानीय कषाय चतुष्क का वर्णन कीजिए ।

उत्तर : जिसके उदय से जीव को सर्वविरति चारित्र की प्राप्ति नहीं होती, उसे प्रत्याख्यानीय कषाय कहते है । इस कषाय का काल एक पक्ष से चार माह तक का है । प्रत्याख्यानीय कषाय वाली आत्मा केवल देवआयुष्य का ही बंध करती है ।

१. प्रत्याख्यानीय क्रोध : यह क्रोध रेत या बालु में पडी हुई रेखा के समान है, जो हवा के चलने पर कुछ समय में मिट जाती है । यह क्रोध भी कुछ समय में शांत हो जाता है ।

२. प्रत्याख्यानीय मान : जैसे लकडी को नमाने के लिये तैल मालिश आदि करना पडता है, उसी प्रकार यह मान थोडे परिश्रम से नम्रता में परिणत हो जाता है ।

३. प्रत्याख्यानीय माया : गोमूत्रिका के समान यह माया कुटिल परिणामवाली होती है, जो कुछ श्रम से दूर होती है ।

४. प्रत्याख्यानीय लोभ : काजल के रंग के समान यह लोभ कुछ प्रयत्न से दूर होता है ।

६०९) संज्वलन चतुष्क का विवेचन करो ।

उत्तर : जिस कषाय के उदय से हिंसा आदि पापों का पूर्ण त्याग करने पर भी वीतराग भावों की अर्थात् यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति नहीं होती है, उसे संज्वलन कषाय कहते है । इस कषाय की काल मर्यादा एक दिन से पक्ष पर्यंत है । इस कषाय के उदय में जीव देवगति का ही बंध करता है ।

१. संज्वलन क्रोध : पानी में खिंची गयी रेखा जिस प्रकार आगे-आगे चलने से पीछे-पीछे नष्ट हो जाती है, वैसे ही यह क्रोध जल्दी शांत हो जाता है ।

२. संज्वलन मान : इस मान वाला जीव सामान्य परिश्रम से नमाये जाने वाले बेंत के समान होता है, जो शीघ्र ही अपने आग्रह को छोड़ देता है ।

३. संज्वलन माया : बांस के छिलके में रहने वाला टेढापन बिना श्रम के ही सीधा हो जाता है, उसी प्रकार यह माया सरलता से दूर हो जाती है ।

४. संज्वलन लोभ : हल्दी के रंग के समान जो शीघ्रता से मिट जाता हैं, उसे संज्वलन लोभ कहते है ।

६१०) नो-कषाय मोहनीय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : नो-कषाय मोहनीय के ९ भेद हैं –

१. हास्य - जिस कर्म के उदय से जीव को अकारण या सकारण हंसना आए ।

२. रति - जिस कर्म के उदय से अनुकूलता में प्रीतिभाव हो ।

३. शोक - जिससे चित्त में शोक उत्पन्न हो ।

४. अरति - जिसके कारण प्रतिकूलता में अप्रीति हो ।

५. भय - जिसके कारण चित्त में भय उत्पन्न हो ।

६. जुगुप्सा - जिसके कारण अमनोज्ञ पदार्थों के प्रति घृणा उत्पन्न हो।

७. स्त्रीवेद - पुरुष के संसर्ग-सुख की अभिलाषा स्त्रीवेद है।

८. पुरुषवेद - स्त्री के संसर्ग-सुख की अभिलाषा पुरुषवेद है।

९. नपुंसकवेद - स्त्री-पुरुष, दोनों के संसर्ग-सुख की अभिलाषा नपुंसकवेद है।

६११) नरक त्रिक किसे कहते है ?

उत्तर : नरकगति, नरकानुपूर्वी तथा नरकायुष्य को नरक त्रिक कहते है।

६१२) तिर्यंचद्विक किसे कहते है ?

उत्तर : तिर्यंच गति तथा तिर्यंचानुपूर्वी को तिर्यंचद्विक कहते है।

६१३) जातिचतुष्क किसे कहते है ?

उत्तर : एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जाति को जातिचतुष्क कहते है।

६१४) अशुभविहायोगति नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव की चाल ऊँट या गधे जैसी अशुभ होती है, उसे अशुभ विहायोगति नामकर्म कहते है।

६१५) उपघात नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से स्वयं को बाधा करने वाले अवयव शरीर में मिलते हैं, उसे उपघात नाम कर्म कहते है। जैसे प्रतिजिह्वा, छट्ठी अंगुली आदि।

६१६) ऋषभनाराच संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से दोनों तरफ हड्डी का मर्कटबंध हो, उस पर हड्डी का पट्टा हो परंतु कील न हो, उसे ऋषभनाराच संघयण कहते है।

६१७) नाराचय संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से दोनों तरफ मर्कटबंध हो पर वेष्टन व कील न लगी हो, उसे नाराचसंघयण कहते है।

६१८) अर्ध नाराच संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : जिस शरीर में एक तरफ मर्कट बंध हो व दूसरी तरफ कील हो, उसे

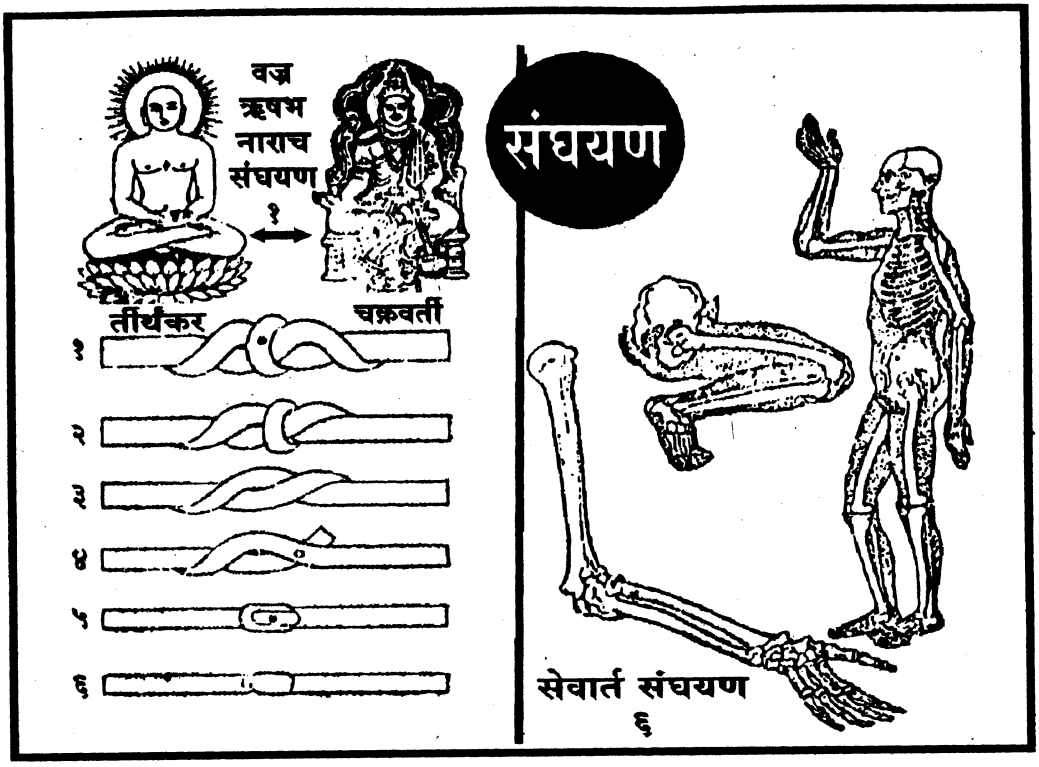

चित्र : छह प्रकार के संघयण

अर्धनाराच संघयण कहते है।

६१९) कीलिका संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : मर्कटबंध, पट्टी रहित मात्र कील से हड्डियाँ जुडी हुई हो, वह कीलिका संघयण है।

६२०) सेवार्त संघयण किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में मर्कटबंध, वेष्टन, कील आदि न होकर योंहि हड्डियाँ आपस में स्पर्श की हुई हो, उसे सेवार्त संघयण कहते है।

६२१) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति न्यग्रोध (वटवृक्ष) के समान हो अर्थात् शरीर में नाभि से उपर के अवयव लक्षणयुक्त, पुष्ट, भरे-भरे हो तथा नाभि से नीचे के अवयव हीन हो, उसे न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहते है।

६२२) सादि संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से नाभि के उपर के अवयव हीन, दुबले-पतले तथा नीचे के अवयव प्रमाणोक्त, सुन्दर व पूर्ण होते हैं, उसे सादि संस्थान कहते है।

६२३) कुब्ज संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से शरीर कुबडा हो, उसे कुब्ज संस्थान कहते है।

६२४) वामन संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से शरीर बौना हो, उसे वामन संस्थान कहते है।

६२५) हुंडक संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से शरीर के सभी अवयव बेडौल हो, यथायोग्य प्रमाणयुक्त न हो, उसे हुंडक संस्थान कहते है।

६२६) अशुभ वर्ण नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को कृष्ण, नील वर्ण प्राप्त हो, उसे अशुभवर्ण नामकर्म कहते है।

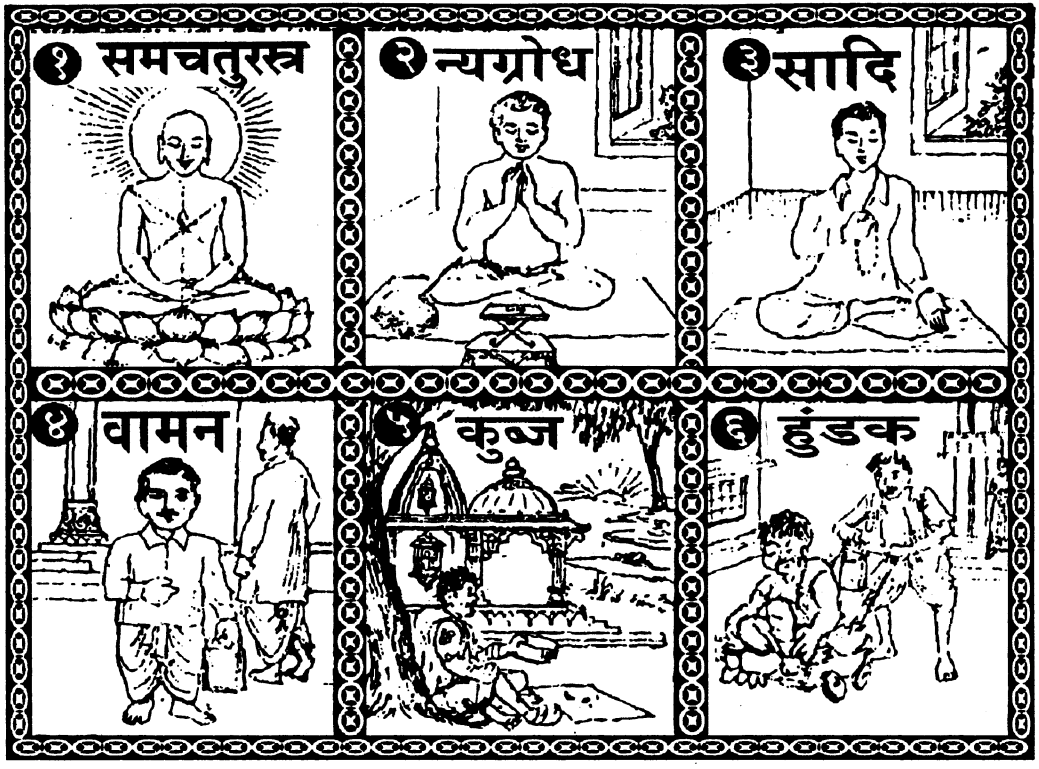

चित्र : छह प्रकार के संस्थान

६२७) अशुभ गंध नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में से लहसुन जैसी दुर्गंध आये, उसे अशुभ गंध नामकर्म कहते है ।

६२८) अशुभ रस नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में तीखा तथा कडवा रस हो, उसे अशुभ रस नामकर्म कहते है ।

६२९) अशुभ स्पर्श नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर का स्पर्श भारी, खुरदरा, रुक्ष तथा शीत हो, उसे अशुभ स्पर्श नामकर्म कहते है ।

६३०) स्थावर नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव स्वेच्छा से गमनागमन नहीं कर सके, स्थिर ही रहे, उसे स्थावर नामकर्म कहते है ।

६३१) सूक्ष्मनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर इन्द्रिय अथवा यंत्रगोचर न हो, उसे सूक्ष्मनामकर्म कहते है ।

६३२) अपर्याप्त नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्मोदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण न कर सके, उसे अपर्याप्त नामकर्म कहते है ।

६३३) साधारण नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से अनन्त जीवों के एक शरीर की प्राप्ति होती है, उसे साधारण नामकर्म कहते है ।

६३४) अस्थिर नाम कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव के भ्रू, जिह्वा आदि अस्थिर अवयवों की प्राप्ति हो, उसे अस्थिर नामकर्म कहते है ।

६३५) अशुभ नाम कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से नाभि से नीचे के अंग अशुभ हो, उसे अशुभ नामकर्म कहते है ।

६३६) दौर्भाग्य नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्मोदय से जीव को देखते ही उद्वेग पैदा हो, उपकार करने पर भी वह रुचिकर न लगे, उसे दौर्भाग्य नामकर्म कहते है ।

६३७) दु:स्वर नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्मोदय से जीव को कौएं जैसा अशुभ स्वर मिले, वह दु:स्वर नाम कर्म है ।

६३८) अनादेय नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिससे युक्तियुक्त वचन भी अमान्य और अनादरणीय हो जाते हैं, वह अनादेय नामकर्म है ।

६३९) अपयश नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से अपयश व अपकीर्ति होती है, उसे अपयश नामकर्म कहते है ।

६४०) नीचगोत्र किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव को नीच कुल, वंश या जाति में जन्म लेना पडे, उसे नीच गोत्र कहते है ।

६४१) दानान्तराय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : स्वयं के पास देने योग्य दान हो, दान के फल को भी जानता हो, लेने वाला सुपात्र भी उपलब्ध हो, फिर भी दान न दिया जा सके, उसे दानान्तराय कर्म कहते है ।

६४२) लाभान्तराय किसे कहते है ?

उत्तर : दातार मिला हो, योग्य वस्तु भी सुलभ हो, विनयपूर्वक याचना की हो, तो भी वस्तु की प्राप्ति न हो, उसे लाभान्तराय कर्म कहते है ।

६४३) भोगान्तराय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : भोग्य सामग्री उपलब्ध हो फिर भी भोगी न जा सके, उसे भोगान्तराय कर्म कहते है ।

६४४) उपभोगान्तराय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय उपभोग्य सामग्री होने पर भी उसका उपभोग न

हो सके, उसे उपभोगान्तराय कर्म कहते है।

६४५) वीर्यान्तराय कर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव शक्ति के होने पर भी, उसका उपयोग नही कर पाता है, धर्मानुष्ठान में अपनी शक्ति का सदुपयोग नहीं हो पाता है, उसे वीर्यान्तराय कर्म कहते है।

६४६) भोग तथा उपभोग में क्या अंतर है ?

उत्तर : एक बार भोगने योग्य पदार्थ भोग्य कहलाते है-जैसे–भोजन, पानी आदि। बार-बार भोगने योग्य पदार्थ उपभोग्य कहलाते है, जैसे-वस्त्र, पात्र, आभूषण, गृह आदि।

६४७) आठों कर्मों की बंध योग्य प्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उत्तर : आठों कर्मों की बंध योग्य प्रकृतियाँ १२० हैं।

६४८) पापतत्त्व के ८२ तथा पुण्य तत्त्व के ४२, ये कुल १२४ भेद होते है, तो ४ प्रकृतियाँ कौन सी अतिरिक्त है ?

उत्तर : पाप तथा पुण्य दोनों में ही वर्ण चतुष्क को गिना गया है। पुण्य में शुभ वर्ण चतुष्क तथा पाप में अशुभ वर्णचतुष्क गिनने से ४ प्रकृति अतिरिक्त है। ४ को बाद करने पर १२० प्रकृतियों का बंध दोनों तत्त्वों में संग्रहित है।

६४९) पाप प्रकृति को जानने का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर : पाप तत्त्व भी कर्मजन्य है। इसके द्वारा जीव को दु:ख की प्राप्ति होती है। पाप अशुभ कर्म स्वरूप है, लेकिन स्वस्वरूप नहीं है। यह तत्त्व आत्मा को अपने स्वरूप से विचलित करने वाला है। पाप प्रकृति के ८२ भेदों को जानकर उनके बंध के कारण ऐसे १८ पापस्थानकों का त्याग कर हम अपने स्व-स्वरूप की प्राप्ति कर सके। इसलिए इस हेय ऐसे पापतत्त्व को छोड़कर पर से हटकर और स्व में बसकर अपना व अन्य जीवात्माओं का कल्याण करना, यही पाप तत्त्व को जानने का उद्देश्य है।

आश्रव तत्त्व का विवेचन

६५०) आश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : जीव की शुभाशुभ प्रवृत्ति से आकृष्ट होकर कर्मवर्गणा का आत्मा में आना आश्रव कहलाता है ।

६५१) आश्रव के कितने भेद हैं ?

उत्तर : आश्रव के दो भेद हैं - १. शुभाश्रव, २. अशुभाश्रव ।

६५२) शुभाश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : शुभयोग अथवा शुभप्रवृत्ति से जिस कर्म का आत्मा में आगमन होता है, उसे पुण्य या शुभाश्रव कहते है ।

६५३) अशुभाश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : अशुभ योग तथा अशुभ प्रवृत्ति से अशुभ कर्म का आत्मा में आगमन होता है, उसे अशुभाश्रव (पाप) कहते है ।

६५४) आश्रव के अन्य अपेक्षा से कितने भेद हैं ?

उत्तर : २० भेद हैं -

(१) मिथ्यात्व - मिथ्यात्व का सेवन करना ।
(२) अव्रत - प्रत्याख्यान नहीं करना ।
(३) प्रमाद - ५ प्रकार के प्रमाद का सेवन करना ।
(४) कषाय - २५ कषायों का सेवन करना ।
(५) अशुभयोग - मन-वचन-काया को अशुभ में प्रवृत्ति ।
(६) प्राणातिपात - हिंसा करना ।
(७) मृषावाद - झूठ बोलना ।
(८) अदत्तादान - चोरी करना ।
(९) मैथुन - अब्रह्म का सेवन करना ।
(१०) परिग्रह - परिग्रह रखना ।
(११) श्रोत्रेन्द्रिय - कान को वश में न रखना ।
(१२) चक्षुरिन्द्रिय - आँख को वश में न रखना ।
(१३) घ्राणेन्द्रिय - नाक को वश में न रखना ।

(१४) रसनेन्द्रिय - जिह्वा को वश में न रखना ।

(१५) स्पर्शेन्द्रिय - शरीर को वश में न रखना ।

(१६) मन - मन को वश में न रखना ।

(१७) वचन - वचन को वश में न रखना ।

(१८) काया - काया को वश में न रखना ।

(१९) भंडोपकरणाश्रव - वस्त्र, पात्र आदि की जयणा न करना ।

(२०) कुसंगाश्रव - कुसंगति करना ।

६५५) आश्रव द्वार कितने हैं ?

उत्तर : आश्रव द्वार पांच है - १. मिथ्यात्व, २. अविरति, ३. प्रमाद, ४. कषाय, ५. योग ।

६५६) मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : जीव को तत्त्व व जिनमार्ग पर अश्रद्धा तथा विपरीत मार्ग पर श्रद्धा होना मिथ्यात्व है ।

६५७) मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ?

उत्तर : स्थानांग सूत्र में मिथ्यात्व के १० भेद प्रतिपादित हैं –

१. धर्म को अधर्म कहना ।

२. अधर्म को धर्म कहना ।

३. कुमार्ग को सन्मार्ग कहना ।

४. सन्मार्ग को कुमार्ग कहना ।

५. अजीव को जीव कहना ।

६. जीव को अजीव कहना ।

७. असाधु को साधु कहना ।

८. साधु को असाधु कहना ।

९. अमुक्त को मुक्त कहना ।

१०. मुक्त को अमुक्त कहना ।

जो जैसा है, उसे वैसा न कहकर विपरीत कहना या मानना मिथ्यात्व का लक्षण है ।

६५८) मिथ्यात्व के अन्य भेद कौन से हैं ?

उत्तर : मिथ्यात्व के अन्य ५ भेद हैं – १. आभिग्रहिक मिथ्यात्व, २. अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व, ३. आभिनिवेशिक मिथ्यात्व, ४. सांशयिक मिथ्यात्व, ५. अनाभोगिक मिथ्यात्व ।

६५९) आभिग्रहिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : तत्त्व या सत्य की परीक्षा किये बिना ही पक्षपातपूर्वक किसी तत्त्व को पकडे रहना तथा अन्य पक्ष का खंडन करना, आभिग्रहिक मिथ्यात्व है ।

६६०) अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : गुण-दोष की परीक्षा किये बिना ही सभी पक्षों को समान कहना, अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व है ।

६६१) आभिनिवेशिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : अपने पक्ष को असत्य समझते हुए भी दुराग्रहपूर्वक उसकी स्थापना, समर्थन करना, आभिनिवेशिक मिथ्यात्व है ।

६६२) सांशयिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : देव, गुरु तथा धर्म के विषय या स्वरूप में संदेहशील होना, सांशयिक मिथ्यात्व है ।

६६३) अनाभोगिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर : विचार-शून्यता, मोहमूढता । एकेन्द्रियादि असंज्ञी तथा ज्ञानविकल जीवों को अनाभोगिक मिथ्यात्व होता है ।

६६४) अविरति किसे कहते है ?

उत्तर : प्राणातिपात आदि पापों से निवृत्त न होना, व्रत, प्रत्याख्यान आदि स्वीकार न करना अविरति है ।

६६५) प्रमाद किसे कहते है ?

उत्तर : शुभ कार्य या धर्मानुष्ठान में उद्यम न करना, आलस करना प्रमाद कहलाता है ।

६६६) पांच प्रमाद कौन-से हैं ?

उत्तर : १) मद्य, २) विषय, ३) कषाय, ४) निद्रा, ५) विकथा ।

६६७) कषाय किसे कहते है ?

उत्तर : जो आत्मा का संसार बढाये, उसे कषाय कहते है। इसका विस्तृत वर्णन पाप तत्त्व में किया जा चुका है ।

६६८) योग किसे कहते है ?

उत्तर : मन, वचन तथा काया के शुभाशुभ व्यापार को योग कहते है ।

६६९) शुभ योग किसे कहते है ?

उत्तर : मन-वचन-काया का शुभ कार्य में प्रवृत्त होना शुभयोग है ।

६७०) अशुभ योग किसे कहते है ?

उत्तर : मन-वचन-काया का अशुभ कार्य में प्रवृत्त होना अशुभ योग है ।

६७१) किन-किन कारणों से आत्मा में आश्रव होता है तथा आश्रव के भेद कितने हैं ?

उत्तर : आश्रव के ४२ भेद है। इन ४२ द्वारों से आत्मा में कर्म का आगमन होता है –

इन्द्रियाँ - ५, कषाय - १६, अव्रत - ५, योग - ३, क्रियाएं - २५

६७२) इन्द्रियाश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : ५ इन्द्रियों के २३ विषय आत्मा के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होने पर सुख-दुःख का अनुभव होता है, उससे आत्मा में कर्म का जो आश्रव होता है, उसे इन्द्रियाश्रव कहते है। २३ विषयों का वर्णन अजीव तत्त्व में देखे ।

६७३) कषायाश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : क्रोधादि ४ कषायों के अनंतानुबन्धी क्रोधादि आदि १६ भेदों से आत्मा में जो कर्म का आगमन होता है, उसे कषायाश्रव कहते है ।

६७४) अव्रताश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन तथा परिग्रह, इन पांच व्रतों का देशतः या सर्वतः अनियम या अत्याग अव्रताश्रव कहलाता है ।

६७५) प्राणातिपात अव्रताश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : प्रमाद से जीव के द्रव्य प्राणों का विनाश करना या जीव-हिंसा करना प्राणातिपात अव्रताश्रव है ।

६७६) मृषावाद अव्रताश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : स्वार्थ की सिद्धि के लिये अथवा अहित के लिये जो सत्य अथवा असत्य बोला जाता है, उसे मृषावाद अव्रताश्रव कहते है ।

६७७) अदत्तादान अव्रताश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : अदत्त-नहीं दी हुई (वस्तु का), आदान-ग्रहण करना अदत्तादान है । निषेध की गई वस्तु अथवा बिना पूछे वस्तु को लेना, चोरी करना, अदत्तादान अव्रताश्रव कहलाता है ।

६७८) अदत्तादान कितने प्रकार का है ?

उत्तर : अदत्तादान ४ प्रकार का है -

१. स्वामी अदत्त -स्वामी (मालिक) को पूछे बिना ली गयी वस्तु ।

२. जीव अदत्त - जीव को पूछे बिना ली गयी वस्तु ।

३. तीर्थंकर अदत्त - तीर्थंकरों के द्वारा निषिद्ध की गयी वस्तु ।

४. गुरु अदत्त - गुरु आज्ञा प्राप्त किये बिना ली गयी वस्तु ।

६७९) अब्रह्म अव्रताश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : अनाचार का सेवन करना अब्रह्म आश्रव है ।

६८०) परिग्रह अव्रताश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : पदार्थों का संग्रह करना, उन पर ममत्व बुद्धि रखना परिग्रह आश्रव है।

६८१) योगाश्रव किसे कहते है ?

उत्तर : मन, वचन, काया के व्यापार से जो कर्म का आत्मा में आगमन होता है, उसे योगाश्रव कहते है ।

६८२) योगाश्रव के तीनों भेद स्पष्ट करो ।

उत्तर : १. मनोयोग आश्रव : मन के द्वारा शुभ विचार करने पर शुभ मनोयोगाश्रव तथा अप्रशस्त विचार करने पर अशुभ मनोयोगाश्रव होता है ।

२. वचनयोगाश्रव : वचन से सत्य, मधुर तथा हितकारी वचन बोलने

पर शुभ वचन योगाश्रव तथा असत्य, कटु व हिंसक वचन बोलने पर अशुभ वचनयोगाश्रव होता है।

३. काययोगाश्रव : काया से शुभ प्रवृत्ति करने पर शुभकाय योगाश्रव तथा अशुभ प्रवृत्ति करने पर अशुभ काययोगाश्रव होता है।

६८३) क्रिया किसे कहते है ? इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : आत्मा जिस व्यापार के द्वारा शुभाशुभ कर्म को ग्रहण करती है, उसे क्रिया कहते है। इसके पच्चीस भेद हैं।

६८४) कायिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : अविरति, अजयणा या प्रमादपूर्वक शरीर के हलन-चलन की क्रिया कायिकी क्रिया कहलाती है।

६८५) कायिकी क्रिया के कितने भेद होते हैं ? नाम सहित परिभाषा लिखो।

उत्तर : कायिकी क्रिया के दो भेद होते हैं –

(१) अनुपरत कायिकी क्रिया - विरति रहित जीवों की सावधक्रिया।

(२) दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया - मन-वचन-काया की अशुभ क्रिया।

६८६) अधिकरणिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : अधिकरण अर्थात् तलवार, चाकू, छूरी, बंदूक, आदि। इन शस्त्रों (अधिकरण) से आत्मा पाप करके नरक का अधिकारी बनता है, इन शस्त्रों से होने वाली क्रिया को अधिकरणिकी क्रिया कहते है।

६८७) अधिकरणिकी क्रिया के भेद लिखो।

उत्तर : अधिकरणिकी क्रिया के दो भेद -

(१) संयोजनाधिकरणिकी क्रिया - शस्त्रादि के अवयवों को परस्पर जोडना।

(२) निर्वर्तनाधिकरणिकी क्रिया - नये शस्त्रादि का निर्माण करना।

६८८) प्राद्वेषिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : जीव या अजीव पर द्वेष करने से लगने वाली क्रिया प्राद्वेषिकी क्रिया है।

६८९) प्राद्वेषिकी क्रिया के भेद लिखो।

उत्तर : प्राद्वेषिकी क्रिया के दो भेद है –

(१) जीव प्राद्वेषिकी क्रिया - जीव पर द्वेष भाव रखना ।

(२) अजीव प्राद्वेषिकी क्रिया - हानि पहुँचाने वाले अजीव पर द्वेषभाव रखना ।

६९०) पारितापनिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : दूसरे जीवों को पीडा पहुँचाने से तथा अपने ही हाथ से अपना सिर छाती आदि पीटने से लगने वाली क्रिया पारितापनिकी क्रिया है ।

६९१) पारितापनिकी क्रिया के भेद लिखो ।

उत्तर : पारितापनिकी क्रिया के दो भेद है –

(१) स्वहस्त पारितापनिकी क्रिया - स्वजनादि के वियोग से अपने हाथों से सिर कूटना, छाती पीटना आदि ।

(२) परहस्त पारितापनिकी क्रिया - दूसरों के हाथों से परिताप करवाना।

६९२) प्राणातिपातिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : दूसरे प्राणियों के प्राणों का विनाश करने से तथा स्त्री आदि के वियोग में आत्मघात करने से लगने वाली क्रिया प्राणातिपातिकी है ।

६९३) प्राणातिपातिकी क्रिया के भेद लिखो ।

उत्तर : प्राणातिपातिकी क्रिया के दो भेद हैं –

(१) स्वहस्तिकी प्राणातिपातिकी क्रिया - स्वहस्त से जानबूझ कर जीवों का अतिपात-नाश करना ।

(२) परहस्तिकी प्राणातिपातिकी क्रिया - परहस्त से जीवों का अतिपात-नाश करवाना ।

६९४) आरंभिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : आरंभ (खेती, घर आदि के कार्य में हल, कुदाल आदि चलाने) से लगने वाली क्रिया आरंभिकी क्रिया है । इसमें उद्देश्यपूर्वक जीव का हनन नहीं किया जाता ।

६९५) आरंभिकी क्रिया के भेद लिखो ।

उत्तर : आरंभिकी क्रिया के दो भेद हैं –

(१) जीव आरंभिकी क्रिया – जीवित जीव के अतिपात की हनन की प्रवृत्ति करना ।

(२) अजीव आरंभकी क्रिया - स्थापना जीव को हनन करने की प्रवृत्ति करना । जैसे - पत्थर की मूर्ति, चित्रित चित्र आदि ।

६९६) पारिग्रहिकी क्रिया किसे कहते है ? इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : परिग्रह से लगने वाली क्रिया पारिग्राहिकी हैं । इसके दो भेद हैं –

(१) जीव पारिग्रहिकी क्रिया - पति-पत्नी, दास-दासी, पशु आदि जीवों पर ममत्व रखना ।

(२) अजीव पारिग्रहिकी क्रिया - धन-धान्य, आभूषण, घर आदि अजीव पदार्थों का संग्रह करना तथा उस पर ममत्व बुद्धि रखना अजीव पारिग्रहिकी क्रिया है ।

६९७) माया प्रत्ययिकी क्रिया किसे कहते है ? इसके भेद लिखो ।

उत्तर : छल-प्रपंच करके दूसरों को ठगना माया प्रत्ययिकी क्रिया है । स्वयं में कपट होते हुए भी शुद्ध भाव दिखाना स्वभाव वंचन तथा झूठी साक्षी, झूठा लेख लिखना परभाव वंचन माया प्रत्ययिकी क्रिया है ।

६९८) मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : जिनेश्वर प्ररूपित तत्त्व के प्रति अश्रद्धान तथा विपरीत मार्ग के प्रति श्रद्धान करनें से लगने वाली मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया है ।

६९९) मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया के भेद लिखो ।

उत्तर : मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया के दो भेद हैं –

(१) न्यूनातिरिक्त मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी – सर्वज्ञकथित तत्त्व के स्वरूप को न्यूनाधिक मानना ।

(२) तद्व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी – सर्वज्ञकथित तत्त्व के स्वरूप को सर्वथा न मानना ।

७००) अप्रत्याख्यानिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : हेय वस्तु का त्याग प्रत्याख्यान नहीं करने से लगने वाली क्रिया अप्रत्याख्यानिकी है । यह दो प्रकार की है - अजीव तथा सजीव

प्रत्याख्यानिकी ।

जो पदार्थ कभी उपयोग में नहीं आते, उन पदार्थों का भी यदि प्रत्याख्यान न हो तो तत्सम्बन्धी कर्म का आश्रव अवश्य होता है। जैसे पूर्वभव में छोडे हुए शस्त्रों से होने वाली हिंसा तथा पूर्वभव में संग्रहित परिग्रह के ममत्व का जीव को कर्मबंध इस भव में भी आता है। अतः मृत्यु के समय समस्त सांसारिक साधनों का त्याग कर देना चाहिए।

७०१) दृष्टिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : जीव तथा अजीव को रागादि से देखना दृष्टिकी क्रिया है ।

७०२) स्पृष्टिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : जीव तथा अजीव को रागादि से स्पर्श करना स्पृष्टिकी क्रिया है अथवा रागादि भाव से प्रश्न करना प्राश्निकी क्रिया है ।

७०३) प्रातित्यकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : जीव तथा अजीव वस्तु (बाह्य वस्तु) के निमित्त से राग-द्वेष करने पर जो क्रिया लगती है, उसे प्रातित्यकी क्रिया कहते है ।

७०४) प्रातित्यकी क्रिया के दो भेद लिखो ।

उत्तर : प्रातित्यकी क्रिया के दो भेद हैं -

(१) जीव प्रातित्यकी क्रिया : दूसरों के नौकरों आदि तथा हाथी, घोडे आदि की संख्या देखकर राग-द्वेष करना ।

(२) अजीव प्रातित्यकी क्रिया : दूसरों के आभूषणादि देखकर राग-द्वेष करना ।

७०५) सामंतोपनिपातिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : अपने वैभव, ऐश्वर्य आदि की लोगों द्वारा की जाती प्रशंसा को सुनकर प्रसन्न होना अथवा घी, तेल आदि के पात्र खुले रहने पर उसमें संपातिम जीवों का गिरकर विनाश होना, सामंतोपनिपातिकी क्रिया है ।

७०६) सामंतोपनिपातिकी क्रिया के दो भेद लिखो ।

उत्तर : सामंतोपनिपातिकी क्रिया के दो भेद हैं -

(१) जीव सामंतोपनिपातिकी क्रिया : घोडे हाथी आदि लाने पर अन्य

मुख से प्रशंसा या बुराई सुनकर प्रसन्न होना अथवा द्वेष करना।

(२) अजीव सामंतोपनिपातिकी क्रिया : अच्छे आभूषणादि लाने पर अन्य मुख से प्रशंसा या बुराई सुनकर राग अथवा द्वेष करना।

७०७) नैशस्त्रिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : राजा आदि की आज्ञा से यंत्रों द्वारा कुँए, तालाब आदि का पानी निकाल कर बाहर फेंकने से, फव्वारा चलाने से, धनुष से बाण फैंकने से, स्वार्थवश योग्य शिष्य या पुत्र को बाहर निकाल देने से, शुद्ध एषणीय भिक्षा होने पर भी निष्कारण परठ देने से जो तथा राजादि की आज्ञा से शस्त्रादि बनवाने पर जो क्रिया लगती है, उसे नैशस्त्रिकी क्रिया कहते है।

७०८) नैशस्त्रिकी क्रिया के दो भेद लिखो।

उत्तर : नैशस्त्रिकी क्रिया के दो भेद है -

(१) जीव नैशस्त्रिकी क्रिया : यंत्रादि द्वारा कुँए आदि से पानी निकालकर कुँए आदि को खाली करना या सुपात्र शिष्य को निकाल देना।

(२) अजीव नैशस्त्रिकी क्रिया : धनुष्य से बाण छोड़ना या शुद्ध आहारादि को परठना।

७०९) स्वहस्तिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : किसी भी जीव को अपने हाथ में लेकर फेंकने, पटकने, ताडना करने या मारने से जो क्रिया लगती है, उसे स्वहस्तिकी क्रिया कहते है।

७१०) स्वहस्तिकी क्रिया के दो भेद लिखो।

उत्तर : स्वहस्तिकी क्रिया के दो भेद है -

(१) जीव स्वहस्तिकी क्रिया : अपने हाथों के द्वारा या अन्य किसी पदार्थ द्वारा अन्य जीव की हत्या करना।

(२) अजीव स्वहस्तिकी क्रिया : अजीव वस्तु को स्वहस्त से तोड़ने-फोड़ने की क्रिया करना।

७११) आज्ञापनिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : जीव को आज्ञा करके उससे जीव (व्यक्ति)-अजीव (वस्तु) मंगवाना आज्ञापनिकी क्रिया है ।

७१२) वैदारणिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : जीव तथा अजीव का विदारण (चीरना-फाडना) करने से या वितारण (वंचना-ठगाई) करने से लगने वाली क्रिया वैदारणिकी है ।

७१३) अनाभोगिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : अनुपयोग (अजयणा-अविवेक) पूर्वक चलने-फिरने से तथा चीजों को रखने-उठाने से लगने वाली क्रिया अनाभोगिकी है ।

७१४) अनाभोगिकी क्रिया के दो भेद लिखो ।

उत्तर : अनाभोगिकी क्रिया के दो भेद हैं -

(१) अनायुक्तदान अनाभोगिकी क्रिया - बिना उपयोग अप्रमार्जित वस्तु का लेन-देन करना ।

(२) अनायुक्त प्रमार्जना अनाभोगिकी क्रिया : बिना उपयोग अप्रमार्जित वस्तु को रखना या उठाना ।

७१५) अनवकांक्षप्रत्ययिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : स्व-पर के हिताहित का विचार नहीं करते हुए तथा इस लोक व परलोक की परवाह न करते हुए जो क्रिया की जाती है, उसे अनवकांक्षप्रत्ययिकी क्रिया कहते है ।

७१६) प्रायोगिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : मन-वचन-काया के अशुभ-सावद्य व्यापार से लगने वाली क्रिया को प्रायोगिकी क्रिया कहते है ।

७१७) सामुदानिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : जिस पाप कर्म के द्वारा समुदाय रूप में आठों कर्मों का बंध हो तथा सामूहिक रूप से अनेक जीवों के एक साथ कर्मबंध हो, उसे सामुदानिकी क्रिया कहते है ।

७१८) प्रैमिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : स्वयं प्रेम या राग करना अथवा दूसरे को प्रेम पैदा हो ऐसा बोलना,

प्रैमिकी क्रिया है।

७१९) द्वैषिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : स्वयं द्वेष करना तथा दूसरे को द्वेष पैदा हो ऐसी क्रिया करना, द्वैषिकी क्रिया है।

७२०) ईर्यापथिकी क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर : कर्मबंध के ५ हेतुओं में से केवल योग रूप एक ही हेतु द्वारा बन्ध होता है, वह ईर्यापथिकी क्रिया है। यह ११वें, १२वें, १३वें गुणस्थानक में रहे हुए वीतरागी आत्मा की ही होती है।

७२१) कौन-सी क्रिया कौन-से गुणस्थानक तक होती है ?

उत्तर :

(१) कायिकी क्रिया	१ से ६ गुणस्थान तक
(२) अधिकरणिकी क्रिया	१ से ९ गुणस्थान तक
(३) प्राद्वैषिकी क्रिया	१ से ९ गुणस्थान तक
(४) पारितापनिकी क्रिया	१ से ९ गुणस्थान तक
(५) प्राणातिपातिकी क्रिया	१ से ५ गुणस्थान तक
(६) आरंभिकी क्रिया	१ से ६ गुणस्थान तक
(७) पारिग्रहिकी क्रिया	१ से ५ गुणस्थान तक
(८) माया प्रत्ययिकी क्रिया	१ से ७ गुणस्थान तक
(९) मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया	१ और ३ रें गुणस्थान में
(१०) अप्रत्याख्यानिकी क्रिया	१ से ४ गुणस्थान तक
(११) दृष्टिकी क्रिया	१ से १० गुणस्थान तक
(१२) स्पृष्टिकी क्रिया	१ से १० गुणस्थान तक
(१३) प्रातित्यकी क्रिया	१ से ५ गुणस्थान तक
(१४) सामन्तोपनिपातकी क्रिया	१ से ५ गुणस्थान तक (तत्त्वार्थ वृत्ति में ६ गुण तक)
(१५) नैशस्त्रिकी क्रिया	१ से ६ गुणस्थान तक
(१६) स्वहस्तिकी क्रिया	१ से ५ गुणस्थान तक
(१७) आज्ञापनिकी क्रिया	१ से ५ गुणस्थान तक

(१८) वैदारणिकी क्रिया १ से ९ गुणस्थान तक
(१९) अनाभोगिकी क्रिया १ से १० गुणस्थान तक
(२०) अनवकांक्ष प्रत्ययिकी क्रिया १ से ९ गुणस्थान तक
(२१) प्रायोगिकी क्रिया १ से ५ गुणस्थान तक
(२२) सामुदानिकी क्रिया १ से १० गुणस्थान तक
(२३) प्रैमिकी क्रिया १ से १० गुणस्थान तक
(२४) द्वैषिकी क्रिया १ से ९ गुणस्थान तक
(२५) ईर्यापथिकी क्रिया ११ से १३ गुणस्थान तक

७२२) आश्रव तत्त्व जानने का उद्देश्य लिखो ।

उत्तर : आश्रव यानि कर्मों का आना । आश्रव के ४२ भेदों का ज्ञान कर स्व-स्वभाव में आने के लिए इनका त्याग करें, परंतु गृहस्थावस्था में पुण्याश्रव भव-अटवी से पार उतारने में सहायभूत हो सकता है, अतः इस का उपयोगपूर्वक स्वीकार कर आत्मस्वरुप की प्राप्ति करना, इस तत्त्व को जानने का उद्देश्य है ।

संवर तत्त्व का विवेचन

७२३) संवर किसे कहते है ?

उत्तर : आश्रव का निरोध ही संवर है । अर्थात् जिन क्रियाओं से आते हुए कर्म रूक बंद हो जाये, वह क्रिया संवर कहलाती है ।

७२४) संवर के २० भेद कौन-से हैं ?

उत्तर : (१) सम्यक्त्व संवर - सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर श्रद्धा रखना ।
(२) व्रत संवर - पच्चक्खाण करना ।
(३) अप्रमाद संवर - ५ प्रकार का प्रमाद नहीं करना ।
(४) अकषाय संवर - २५ कषायों का सेवन नहीं करना ।
(५) योग संवर - मन, वचन, काया की शुभप्रवृत्ति ।
(६) दया संवर - जीवों की हिंसा नहीं करना ।
(७) सत्य संवर - झूठ नहीं बोलना ।
(८) अचौर्य संवर - चोरी नहीं करना ।

(९) शील संवर - ब्रह्मचर्य का सेवन करना ।

(१०) अपरिग्रह संवर - परिग्रह नहीं करना ।

(११) श्रोत्रेन्द्रिय संवर - कान को वश में रखना ।

(१२) चक्षुरिन्द्रिय संवर - आँख को वश में रखना ।

(१३) घ्राणेन्द्रिय संवर - नाक को वश में रखना ।

(१४) रसनेन्द्रिय संवर - जीभ को वश में रखना ।

(१५) स्पर्शेन्द्रिय संवर - शरीर को वश में रखना ।

(१६) मन संवर - मन को वश में रखना ।

(१७) वचन संवर - वचन को वश में रखना ।

(१८) काय संवर - काया को वश में रखना ।

(१९) भंडोपकरण संवर - वस्त्र-पात्र आदि उपकरण जयणा से रखना ।

(२०) सुसंग संवर - खराब संगति से दूर रहना ।

७२५) आगमों में संवर का वर्णन कहाँ आया है ?

उत्तर : स्थानांग सूत्र के पांचवें और दसवें स्थान में, प्रश्नव्याकरण सूत्र के संवर द्वार में तथा समवायांग सूत्र के पांचवें समवाय में संवर का वर्णन आया है ।

७२६) सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर आस्था रखने से कौनसा संवर होता है ?

उत्तर : सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धा रखने से सम्यक्त्व (समकित) संवर की आराधना होती है ।

७२७) व्रत, नियम, त्याग, प्रत्याख्यान ग्रहण करना कौनसा संवर है ?

उत्तर : व्रत, नियम, त्याग, प्रत्याख्यान ग्रहण करना दूसरा व्रत संवर है ।

७२८) क्रोध नहीं करने से क्या होता है ?

उत्तर : क्रोध नहीं करने से अकषाय रूप संवर की आराधना होती है ।

७२९) मन पसंद मिष्टान्न का त्याग, स्वाद के लिए ऊपर से नमक लेने का त्याग करने से कौनसे संवर की आराधना होती है ?

उत्तर : उपरोक्तानुसार त्याग करने से रसनेन्द्रिय को वश में रखने रुप संवर की आराधना होती है ।

७३०) पुस्तक, आसन आदि वस्तुओं को यतना पूर्वक लेने और रखने से कौनसे संवर की आराधना होती है ?

उत्तर : पुस्तक, आसन आदि कोई भी वस्तु यतनापूर्वक लेने और रखने में संवर के उन्नीसवें भेद की आराधना होती है ।

७३१) संवर के मुख्य कितने भेद हैं ?

उत्तर : पांच - (१) सम्यक्त्व, (२) विरति, (३) अप्रमाद, (४) अकषाय, (५) शुभयोग ।

७३२) सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : सुदेव-सुगुरु-सुधर्म पर या जीवादि नव तत्त्वों पर दृढ श्रद्धान सम्यक्त्व है ।

७३३) सम्यक्त्व कैसे जाना जाता है ?

उत्तर : पांच लिंगों अथवा लक्षणों से सम्यक्त्व जाना जाता है ।

७३४) सम्यक्त्व के ५ लक्षण कौन से हैं ?

उत्तर : (१) शम, (२) संवेग, (३) निर्वेद, (४) अनुकम्पा, (५) आस्तिक्य ।

७३५) शम किसे कहते हैं ?

उत्तर : मिथ्यात्व का शमन करना, शत्रु-मित्र पर समभाव रखना, शम है ।

७३६) संवेग किसे कहते हैं ?

उत्तर : धर्म में रुचि, वैराग्यभाव व मोक्ष की अभिलाषा संवेग है ।

७३७) निर्वेद किसे कहते हैं ?

उत्तर : भोग व संसार में अरुचि रखना, संसार को कैदखाना समझना, आरंभ परिग्रह से निवृत्त होना, निर्वेद है ।

७३८) अनुकंपा किसे कहते हैं ?

उत्तर : दु:खी जीवों पर दया करना, उनके दु:ख को दूर करने का प्रयास करना अनुकंपा है ।

७३९) आस्तिक्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : धर्म, पुण्य, पाप, आत्मा, लोक, परलोक, स्वर्ग-नरक में आस्था रखना अर्थात् उनके अस्तित्व को स्वीकारना, आस्तिक्य है ।

७४०) विरति किसे कहते हैं ?

उत्तर : प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, रात्रिभोजन आदि पाप क्रियाओं का देशतः या सर्वतः त्याग करना, विरति कहलाता है ।

७४१) विरति के कितने भेद है ?

उत्तर : दो - (१) देशविरति (२) सर्वविरति ।

७४२) देशविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर : अपनी शक्ति के अनुसार व्रत पच्चक्खाण करना, अथवा देशतः (आंशिक) अशुभाश्रवों का त्याग करना, देशविरति कहलाता है ।

७४३) सर्वविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर : सभी पापों का सर्वथा त्याग करना सर्वविरति कहलाता है ।

७४४) अप्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर : पांचो प्रमाद छोडना अप्रमाद है । अप्रमाद से प्रमादरुप आश्रव द्वार बंद हो जाते है ।

७४५) अकषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर : कषायों का शमन करना, समभाव रखना अकषाय है ।

७४६) नवतत्त्व में संवर के कितने भेदों का उल्लेख हैं ?

उत्तर : नवतत्त्व में संवर के ५७ भेद इस प्रकार उल्लिखित हैं -
समिति - ५, गुप्ति - ३, परीषह - २२, यतिधर्म - १०, भावना - १२, चारित्र - ५ ।

७४७) समिति किसे कहते है ?

उत्तर : आवश्यक कार्य के लिये यतनापूर्वक सम्यक् चेष्टा या प्रवृत्ति को समिति कहते हैं ।

७४८) समिति के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पांच - (१) ईर्या समिति, (२) भाषा समिति, (३) एषणा समिति, (४) आदान समिति, (५) पारिष्ठापनिका समिति ।

७४९) ईर्या समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर : ईर्या अर्थात् मार्ग में उपयोग पूर्वक चलना । ज्ञान, दर्शन, चारित्र के

निमित्त से मार्ग में युगमात्र (३ १/२ हाथ) भूमि को एकाग्र चित्त से देखते हुए और सजीव मार्ग का त्याग करते हुए यतनापूर्वक गमनागमन करना, ईर्या समिति है ।

७५०) भाषा समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर : आवश्यकता होने पर सत्य, हित, मित, प्रिय, निर्दोष और असंदिग्ध भाषा बोलना, भाषा समिति हैं ।

७५१) एषणा समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर : सिद्धान्त में कही गयी विधि के अनुसार दोष रहित आहार-पानी आदि ग्रहण करना एषणा समिति है । यह समिति मुख्य रूप से साधु के तथा गौण रुप से पौषधव्रतधारी श्रावक के होती है ।

७५२) एषणा समिति के कितने भेद हैं ?

उत्तर : तीन - (१) गवेषणा, (२) ग्रहणैषणा, (३) परिभोगैषणा ।

७५३) गवेषणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : गवेषणा का अर्थ है - खोजना, ढूंढना । श्रमण वृत्ति के अनुसार १६ उद्‌गम तथा १६ उत्पादन दोषों से रहित निर्दोष आहार खोजना, गवेषणा कहलाता है ।

७५४) आहार के कितने दोष हैं ?

उत्तर : सैंतालीस - १६ उद्‌गम (गृहस्थ के द्वारा लगने वाले दोष), १६ उत्पादना - (साधु से लगने वाले दोष) १० एषणा (साधु तथा दाता दोनों की ओर से लगने वाले दोष), ५ मांडली (आहार करते समय) ।

७५५) उद्‌गम के १६ दोष कौनसे हैं ?

उत्तर : (१) आधाकर्म - साधु के लिये बना हुआ आहार लेना ।

(२) औद्देशिक - स्वयं के लिये बना हुआ आहार लेना ।

(३) पूतिकर्म - निर्दोष आहार में सदोष आहार मिला हो, वह आहार लेना ।

(४) मिश्र आहार - साधु तथा गृहस्थ दोनों के लिये बना आहार लेना ।

(५) स्थापना आहार - साधु के लिये रखा आहार लेना ।

(६) प्राभृतिक आहार - साधु आये, जानकर बना विशेष आहार लेना।

(७) प्रादुष्करण आहार - अंधेरे से उजाले में अथवा अंधेरे में प्रकाश करके आहार लेना।

(८) क्रीत आहार - साधु के लिये खरीदा हुआ आहार लेना।

(९) प्रामृत्य आहार - साधु के लिये उधार लाया हुआ आहार लेना।

(१०) परावृत्य आहार - साधु के निमित्त पडौसी अथवा अन्य को अपनी वस्तु देकर दूसरी वस्तु लाकर देना।

(११) अभ्याहृत आहार - सामने से लाया हुआ आहार लेना।

(१२) उद्भिन्न आहार - लेप, पेक आदि खोलकर लाया आहार लेना।

(१३) मालोपहृत आहार - उपर से निसरणी, छींके आदि से उतारकर या भूमिगृह से निकालकर लाया आहार लेना।

(१४) अछिद्य आहार - बलात्। छिनकर लाया हुआ आहार लेना।

(१५) अनिसृष्ट आहार - भागीदारी की चीज को उसकी इच्छा या आज्ञा के बिना देना।

(१६) अध्वपूरक आहार - साधु के आने पर अधिक बनाया आहार लेना।

७५६) उत्पादना के १६ दोष कौनसे हैं ?

उत्तर : (१) धात्री दोष - गृहस्थ के बालकों को स्नेह देकर या खाना देकर आहार लेना।

(२) दूती पिंड दोष - परस्पर समाचार बताकर आहार लेना।

(३) निमित्त पिंड दोष - ज्योतिष की बातें बताकर आहार लेना।

(४) आजीव दोष - अपने कुल आदि का परिचय देकर आहार लेना।

(५) वनीपक पिंडदोष - भिखारी की तरह दीन-वचन कहकर आहार लेना।

(६) चिकित्सा दोष - रोगापहार करके आहार लेना।

(७) क्रोध दोष - शाप आदि का भय बताकर या क्रोधपूर्वक आहार लेना।

(८) मान दोष - अभिमान से अपने को लब्धिधारी बताकर आहार लेना।

(९) माया दोष - वेष बदलकर आहार लेना।

(१०) लोभ दोष - स्वादिष्ट भोजन मिले, वहाँ बार बार जाना।

(११) संस्तव दोष - गुणों की प्रशंसा करके आहार लेना।

(१२) विद्या दोष - चमत्कारिक विद्या प्रयोग सिखाकर आहार लेना।

(१३) मंत्र दोष - मंत्र प्रयोग से आहार लेना।

(१४) चूर्ण दोष - अंजन आदि के प्रयोग से अदृश्य होकर गौचरी लेना।

(१५) योग दोष - योग साधना से आकृष्ट करके या राजवशीकरण की सिद्धि बताकर आहार लेना।

(१६) मूलकर्म दोष - गर्भाधान, गर्भपात, गर्भस्तंभन आदि के उपाय बताकर आहार लेना।

७५७) ग्रहणैषणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : आहार - १० दोष रहित ग्रहण करना ग्रहणैषणा है।

७५८) ग्रहणैषणा के १० दोष कौन-से हैं ?

उत्तर : (१) शंकितदोष - अशुद्ध होने की शंका होने पर भी आहार लेना।

(२) म्रक्षित दोष - सचित्त से लिप्त हाथ, भाजन से आहार लेना।

(३) निक्षिप्त दोष - सचित्त वस्तु से स्पृष्ट आहार लेना।

(४) पिहित दोष - सचित्त से ढंकी वस्तु लेना।

(५) साहृत दोष - सचित्त बर्तन से पदार्थ निकालकर उसी में अचित्त पदार्थ डालकर दे, वह आहार लेना।

(६) दायक दोष - दान देने में अयोग्य व्यक्ति-अन्ध, गर्भवती से आहार लेना।

(७) उन्मिश्र दोष - सचित्त-अचित्त मिश्रित वस्तु लेना।

(८) अपरिणत दोष - अचित्त हुए बिना वस्तु लेना।

(९) लिप्त दोष - दूध-दही आदि लेपकृत द्रव्य लेना।

(१०) छर्दित दोष - बहराते हुए नीचे गिरने पर भी आहार लेना।

७५९) परिभोगेषणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : विधिपूर्वक ग्रहण किये या लाये हुए आहारादि का विधिपूर्वक परिभोग करना। यहाँ विधि से अभिप्राय आहार की निंदा-स्तुति से हैं। आहार को ५ मांडली के दोष टालकर ग्रहण करना चाहिए। इसका दूसरा नाम ग्रासैषणा भी है।

७६०) मांडली-गासैषणा के ५ दोष कौन-से हैं ?

उत्तर : (१) संयोजिका दोष - स्वाद के लिये चीनी, नमक आदि मिलाना।
(२) प्रमाणातिक्रम दोष - अपरिमित आहार ग्रहण करना।
(३) अंगार दोष - वस्तु के स्वाद, रुप आदि की प्रशंसा करना।
(४) धूम्र दोष - अस्वादिष्ट वस्तु की निंदा करना।
(५) कारणाभाव - कारण बिना आहार लेना और कारण बिना छोडना।

७६१) किस कारण से आहार ग्रहण किया जाता है ?

उत्तर : साधु छह कारणों से आहार ग्रहण करता है -
(१) वेदना - क्षुधा शान्त करने के लिये।
(२) वैयावृत्य - सेवा करने के लिये।
(३) ईर्यार्थ - इर्यासमिति के शोधन के लिये।
(४) संयमार्थ - संयम की रक्षा के लिये।
(५) प्राणी प्रत्यय - प्राणियों की रक्षा के लिये।
(६) धर्म-चिन्ता - धर्म चिन्तन के लिये।

७६२) साधु किन कारणों से आहार का त्याग करता है ?

उत्तर : (१) आतंक - ज्वर आदि रोग की उपशान्ति के लिये।
(२) उपसर्ग - राजा या स्वजनों द्वारा उपसर्ग पर।
(३) तितिक्षा - सहिष्णु बनने के लिये।
(४) ब्रह्मचर्य - शील रक्षा के लिये।
(५) प्राणीदया - प्राणियों की रक्षा के लिये।
(६) शरीर व्यवच्छेदनार्थ - शरीर के त्याग के लिये।

७६३) आदान समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर : वस्त्र, पात्र, आसन, शय्या, संस्तारक आदि संयम के उपकरण तथा ज्ञानोपकरणों को उपयोगपूर्वक प्रमार्जना करके उठाना और रखना आदान समिति है। इसका अपर नाम आदान-भंड-मत्त-निक्षेपणा समिति है। आदान अर्थात् ग्रहण करना। भंड-मत्त - पात्र-मात्रक आदि को जयणापूर्वक। निक्षेपणा - रखना।

७६४) पारिष्ठापनिका समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर : परिष्ठापना (त्याग करना) के १० दोषों का त्याग करते हुए लघुनीति, बडीनीति, थूंक, कफ, अशुद्ध आहार, निरुपयोगी उपकरणों का विधि तथा जयणापूर्वक त्याग करना पारिष्ठापनिका समिति है। इसका दूसरा नाम उच्चार प्रस्त्रवण खेल जल्ल सिंघाण पारिष्ठापनिका समिति हैं।

उच्चार - बडीनीत (मल)

प्रस्त्रवण - मूत्र

खेल - श्लेष्म (कफ)

जल्ल - शरीर का मैल

सिंघाण - नाक का मैल

पारिष्ठापनिका - परठना, उत्सर्ग करना या त्याग करना।

७६५) परिष्ठापना के १० नियम/सिद्धान्त कौन-से हैं ?

उत्तर : (१) जहाँ कोई आता हो, देखता हो, वहाँ न परठे।

(२) जहाँ आत्म विराधना या पर विराधना हो, वहाँ न परठे।

(३) ऊंची-नीची भूमि हो, वहाँ न परठे अर्थात् समतल भूमि पर परठें।

(४) पोली भूमि, घास, धान्य, पत्ते तथा किसी वस्तु के ढेर पर न परठे।

(५) अचित्त / प्राणी रहित भूमि पर परठें।

(६) विस्तृत अचित्त भूमि पर परठे, जिससे पदार्थ सचित्त भूमि पर न जाय।

(७) चार अंगुल प्रमाण गहरी भूमि पर परठें।

(८) ग्राम आदि (दृष्टिगोचर स्थान) के पास न परठें।

(९) चूहे आदि के बिलों पर न परठें।

(१०) त्रस प्राणी, बीज-हरितकायादि पर न परठें।

७६६) गुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : 'गुप्यते रक्ष्यते त्रायते वा गुप्तिः', गोपन या रक्षण करे, वह गुप्ति है। संसार में संसरण करते प्राणी की जो रक्षा करे, वह गुप्ति है। अथवा मन, वाणी तथा शरीर को हिंसा आदि सर्व अशुभ प्रवृत्तियों से निग्रह (वश) करके रखना, सम्यक् प्रकार से उपयोग पूर्वक निवृत्ति रखना गुप्ति है।

७६७) मनोगुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, संरम्भ, समारंभ तथा आरंभ संबंधी संकल्प न करना, शुभाशुभ योगों को रोककर योगनिरोध अवस्था को प्राप्त करना मनोगुप्ति है।

७६८) मनोगुप्ति के कितने भेद हैं ?

उत्तर : तीन भेद हैं - (१) असत् कल्पना वियोगिनी - आर्त्त तथा रौद्रध्यान सम्बन्धी अशुभ कल्पनाओं का त्याग करना। (२) समताभाविनी - प्राण, भूत, जीव तथा सत्त्वों पर समताभाव रखना। (३) योगनिरोध - केवलज्ञान प्राप्त होने पर मनोयोग का सर्वथा निरोध हो जाता है, उससे जो अवस्था प्राप्त होती है, वह योग निरोध रूप मनोगुप्ति है।

७६९) वचनगुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : वचन के अशुभ व्यापार अर्थात् संरभ-समारंभ तथा आरंभ संबंधी वचन का त्याग करना, विकथा नहीं करना, मौन रहना वचन गुप्ति है।

७७०) वचनगुप्ति के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) मौनावलंबिनी - पाप प्रवृत्ति से सर्वथा मौन धारण करना। (२) वाङ्नियमिनी - बोलते समय मुख के आगे मुखवस्त्रिका रखना।

७७१) संरंभ, समारंभ तथा आरंभ से क्या आशय है ?

उत्तर : संरंभ - मन में हिंसादि का संकल्प विचार संरंभ है।
समारंभ - हिंसादि कार्य के लिये साधन जुटाना समारंभ है।
आरंभ - मन में संकल्प किये हुए कार्य को शरीर द्वारा क्रियान्वित करना

आरंभ हैं ।

७७२) भाषा समिति और वचनगुप्ति में क्या अन्तर है ?

उत्तर : भाषा समिति निरवद्य वचन बोलने रूप एक ही प्रकार की है जबकि वचनगुप्ति सर्वथा वचन निरोध व निरवद्य (निर्दोष) वचन बोलने रुप दो प्रकार की है ।

७७३) कायगुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : खडा होना, उठना, बैठना, सोना आदि कायिक प्रवृत्ति न करना अर्थात् काया को सावद्य प्रवृत्ति से रोकना तथा निरवद्य प्रवृत्ति में जोडना कायगुप्ति है ।

७७४) कायगुप्ति के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) चेष्टानिवृत्ति - कायोत्सर्ग - ध्यानावस्था में अनेक प्रकार के उपद्रव उपस्थित होने पर भी काया को स्थिर रखना तथा योग निरोध अवस्था में काय-चेष्टा का सर्वथा स्थिरिकरण चेष्टा निवृत्ति कायगुप्ति है ।

(२) यथासूत्रचेष्टा निवृत्ति - श्रमणाचार की विधि के अनुसार गमन-आगमन आदि में शरीर की जो मर्यादित प्रवृत्ति होती है, वह यथासूत्रचेष्टा निवृत्ति है ।

७७५) समिति तथा गुप्ति में क्या अंतर है ?

उत्तर : समिति में सत्क्रिया का प्रवर्तन मुख्य है और गुप्ति में असत्क्रिया का निषेध मुख्य है ।

७७६) अष्टप्रवचनमाता किसे और क्यों कहा गया है ?

उत्तर : ५ समिति तथा ३ गुप्ति, ये आठ अष्टप्रवचन माता कही जाती है । इन आठों से ही संवर धर्म रुपी पुत्र का पालनपोषण होता है । इसलिये इन्हें प्रवचनमाता कहा गया है ।

बावीस परीषहों का विवेचन

७७७) परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : 'परीषह' शब्द परि+सह के संयोग से बना है । अर्थात् परिसमन्तात् -

सब तरफ से, सम्यक् प्रकार से, सह-सहना, समभावपूर्वक सहन करना। संयम मार्ग में आती हुई विकट बाधाओं को समभाव पूर्वक सहन करना परीषह कहलाता है।

७७८) परीषह कितने व कौन कौन-से हैं ?

उत्तर : परीषह बाईस हैं - (१) क्षुधा, (२) पिपासा, (३) शीत, (४) उष्ण, (५) दंश, (६) अचेल, (७) अरति, (८) स्त्री, (९) चर्या, (१०) निषद्या, (११) शय्या, (१२) आक्रोश, (१३) वध, (१४) याचना, (१५) अलाभ, (१६) रोग, (१७) तृण-स्पर्श, (१८) मल, (१९) सत्कार, (२०) प्रज्ञा, (२१) अज्ञान, (२२) सम्यक्त्व।

७७९) क्षुधा परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : संयम की मर्यादा के अनुसार भिक्षा न मिलने पर भूख को समभावपूर्वक सहन करना परंतु सावद्य या अशुद्ध आहार ग्रहण न करना व आर्त्तध्यान भी नहीं करना, क्षुधा परीषह कहलाता है।

७८०) पिपासा परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : जब तक निर्दोष - अचित्त जल न मिले तब तक प्यास सहन करना पर सचित्त अथवा सचित्त - अचित्त-मिश्रित जल नहीं पीना, पिपासा परीषह कहलाता है।

७८१) शीत परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : अतिशय ठंड पडने से अंगोपांग अकड जाने पर भी अपने पास जो मर्यादित एवं परिमित वस्त्र हो, उन्हीं से निर्वाह करना एवं आग आदि से ताप न लेना, शीत परीषह है।

७८२) उष्ण परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : गर्मी के मौसम में तपी हुई शिला, रेत आदि पर पदत्राण के बिना चलना, भीषण गर्मी में भी स्नान-विलेपन की इच्छा न करना, मरणान्त कष्ट आने पर भी छत्र-छत्री की छाया, वस्त्रादि अथवा पंखे की हवा न लेना, उष्ण परीषह है।

७८३) दंश परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : वर्षाकाल में डांस, मच्छर, खटमल आदि का उपद्रव होने पर भी धुएँ, औषध आदि का प्रयोग न करना, न उन जीवों पर द्वेष करना बल्कि उनके डंक की वेदना को समभावपूर्वक सहन करना, दंश परीषह कहलाता है ।

७८४) अचेल परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : अपने पास रहे हुए अल्प तथा जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों में संयम निर्वाह करना, बहुमूल्य वस्त्रादि लेने की इच्छा न करना, अत्यल्प मिले तो भी दीनता का विचार न करना, अचेल परीषह है ।

७८५) अरति परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : मन के अनुकूल साधनों के न मिलने पर आकुल-व्याकुल न होना, उदास न होना, संयम पालन में अरुचि पैदा न होना, धर्मक्रिया को करते हुए उल्लासभाव रहना, अरति परीषह है ।

७८६) स्त्री परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्त्रियों को संयम मार्ग में विघ्न का कारण समझकर सराग दृष्टि से न देखना, उनके अंग-उपांग, कटाक्ष, हाव-भाव पर ध्यान न देना, विकार भरी दृष्टि से न देखना, ब्रह्मचर्य में दृढ रहना, स्त्री परीषह है ।

७८७) चर्या परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : चर्या अर्थात् चलना, विहार करना । चलने में जो श्रान्ति - थकावट होती है तथा विहार के समस्त कष्टों को समभावपूर्वक सहन करना तथा मासकल्प की मर्यादानुसार विहार करना, चर्या परीषह है ।

७८८) निषद्या परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : श्मशान, शून्य गृह, गुफा आदि में ध्यान अवस्था में मनुष्य - पशु-देव द्वारा किसी भी प्रकार का अनुकूल अथवा प्रतिकूल उपसर्ग आने पर उससे बचने के लिये उस स्थान को छोडकर न जाना बल्कि उन उपसर्गों को दृढतापूर्वक सहन करना, निषद्या परीषह है ।

७८९) शय्या परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : सोने के लिये उंची-नीची, कठोर जमीन मिलने पर भी मन में किसी

प्रकार का द्वेष भाव न लाकर सहजतापूर्वक स्वीकार कर लेना, शय्या परीषह है।

७९०) आक्रोश परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : कोई अज्ञानी गाली दे, कटुवचन कहे, तिरस्कार या अपमान करें तब भी उससे द्वेष न करना, आक्रोश परीषह है।

७९१) वध परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : कोई अज्ञानी पुरुष साधु को डंडे से, लाठी या चाबुक से मारे-पीटे अथवा हत्या भी कर दे तब भी मन में किञ्चित रोष न लाना, वध परीषह है।

७९२) याचना परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : साधु कोई भी वस्तु मांगे बिना ग्रहण नहीं करता। उसकी प्राप्ति के लिये 'मैं राजा हूँ, धनाढ्य हूँ' इत्यादि मान एवं अहं का त्याग करके घर-घर से भिक्षा मांगकर लाना, याचना करते समय अपमान व लज्जा आदि को जीतना, याचना परीषह है।

७९३) अलाभ परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : मान तथा लज्जा का त्याग कर घर घर भिक्षा मांगने पर भी न मिले तो लाभान्तराय कर्म का उदय जानकर शान्त रहना, दुःखी अथवा उत्तेजित न होना, अलाभ परीषह है।

७९४) रोग परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : शरीर में ज्वर आदि रोग आने पर 'शरीर व्याधियों का घर है' ऐसा मानकर चिकित्सा न कराना, रोगावस्था में भी मन को शान्त तथा स्वस्थ रखना रोग परीषह है।

७९५) तृण स्पर्श परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : दर्भ, घास आदि पर सोने से घास के तृणों के कठोर स्पर्श के चुभने से अथवा खुजली आदि होने पर भी उद्विग्न न होना, तृणस्पर्श परीषह है।

७९६) मल परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : साधु के लिये स्नान श्रृंगार का कारण है और श्रृंगार विषय का कारण रूप है, अतः शरीर पर स्वेद-पसीने के कारण मैलादि जमने पर दुर्गंध आती हो तब भी उसे दूर करने के लिये स्नानादि की इच्छा न करना, मल परीषह है।

७९७) सत्कार परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय सत्कार सम्मान प्राप्त होने पर भी मन में हर्ष तथा गर्व न करना, सत्कार परीषह है।

७९८) प्रज्ञा परीषह किसे कहते हैं?

उत्तर : बहुश्रुत गीतार्थ होने पर बहुत से लोग प्रश्न पूछते हैं, तो कोई विवाद भी करते हैं। इससे खिन्न होकर ज्ञान को दुःखदायक और अज्ञान को सुखदायक नहीं मानकर समभाव से लोगों की शंका व जिज्ञासाओं को समाहित करना, प्रज्ञा परीषह है।

७९९) अज्ञान परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : ज्ञान प्राप्ति के लिये अथक प्रयास, तपस्या तथा ज्ञानाभ्यास करने पर भी ज्ञान की प्राप्ति न होने पर अपने आप को पुण्यहीन, निर्भाग मानकर खिन्न न होना अपितु ज्ञानावरणीय कर्म का उदय समझकर चित्त को शांत रखना, अज्ञान परीषह है।

८००) सम्यक्त्व परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : नाना प्रकार के प्रलोभन अथवा अनेक कष्ट व उपसर्ग आने पर भी अन्य पाषंडियों के आडम्बर पर मोहित न होकर सर्वज्ञ प्रणीत धर्म-तत्त्व पर अटल श्रद्धा रखना, शास्त्रीय सूक्ष्म अर्थ समझ में न आने पर उदासीन होकर विपरीत भाव न लाना, सम्यक्त्व परीषह है।

८०१) समकाल में एक जीव को उत्कृष्ट व जघन्य से कितने परीषह संभवित हैं ?

उत्तर : शीत और उष्ण तथा चर्या और निषद्या, इन चार परीषहों में से समकाल में दो अविरोधी परीषह होते हैं। अतः एक जीव को उत्कृष्ट से २०

परीषह होते हैं। जघन्य से पूर्वोक्त चार में से अविरोधी दो परीषह होते हैं। तत्त्वार्थ सूत्रकार ने उत्कृष्ट से एक जीव में एकसाथ एक से लेकर १९ परीषहों का उदय कहा है। वह इस अपेक्षा से कि शीत व उष्ण तथा चर्या, शय्या तथा निषद्या इनमें पहले दो व पिछले तीन एक साथ संभव नहीं है। शीत होगा तब उष्ण नहीं होगा और उष्ण होगा, तब शीत संभव नहीं है। इसी तरह चर्या, शय्या और निषद्या, इन तीनों में से भी एक समय में एक ही हो सकता है। अतः उक्त पांचो में से एक समय में किन्हीं दो का संभव तथा तीन का असंभव मानकर एक आत्मा में एक साथ अधिक से अधिक १९ परीषह ही संभव है।

८०२) अनुकूल परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिससे आत्मा को सुख का अनुभव हो, वे अनुकूल परीषह कहलाते हैं। स्त्री, प्रज्ञा तथा सत्कार ये तीन अनुकूल परीषह है।

८०३) प्रतिकूल परीषह किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिससे आत्मा को दुःख या कष्ट का अनुभव हो, वे प्रतिकूल परीषह है। अनुकूल तीन परीषहों को छोडकर शेष १९ परीषह प्रतिकूल है।

८०४) परीषहों के उदय में कितने व कौन कौन से कर्म कारण रुप हैं ?

उत्तर : परीषहों के उदय में ४ कर्म कारण रूप हैं - (१) ज्ञानावरणीय, (२) वेदनीय, (३) मोहनीय, (४) अंतराय।

८०५) किस गुण स्थान में कौन-कौन से परीषह होते हैं ?

उत्तर : ६ठे से ९वे गुणस्थान तक में २२ परीषह होते है, १० वें, ११वें तथा १२वें में क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंश, चर्या, प्रज्ञा, अज्ञान, अलाभ, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श, मल, ये १४ परीषह होते हैं। शेष मोहजन्य ८ परीषह नहीं होते। १३वे तथा १४ वे में अशातावेदनीय से होनेवाले ११ परीषह ही होते हैं। इसे कोष्टक में देखें।

८०६) किस कर्म के उदय से किस गुणस्थानक में कितने व कौन से परीषह उदय में आते हैं, स्पष्ट करें ?

उत्तर :

किस कर्म के उदय से	किस गुणस्थान में	किस परीषह का उदय
ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से	१ से १२ तक	प्रज्ञा परीषह-१
ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से	१ से १२ तक	अज्ञान परीषह-१
अशातावेदनीय कर्म के उदय से	१ से १३ तक	क्षुधा-पिपासा, शीत, उष्ण, दंश, चर्या, शय्या, मल, वध, रोग, तृणस्पर्श, - ११
दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से	१ से ९ तक	सम्यक्त्व परीषह-१
चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से	१ से ९ तक	अचेल, अरति, स्त्री, निषद्या, शय्या, आक्रोश, याचना, सत्कार, - ७
लाभांतराय कर्म के उदय से	१ से १२ तक	अलाभ परीषह-१

दस प्रकार के यति धर्मों का विवेचन

८०७) यतिधर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : यति अर्थात् साधु। साधु के द्वारा पालन किया जानेवाला धर्म यतिधर्म है अथवा मोक्ष मार्ग में जो यत्न करे, वह यति है। उसका धर्म यति धर्म है।

८०८) यति धर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दस – (१) क्षमा, (२) मार्दव, (३) आर्जव, (४) मुक्ति, (५) तप, (६) संयम, (७) सत्य, (८) शौच, (९) आकिंचन्य, (१०) ब्रह्मचर्य।

८०९) क्षमाधर्म से क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर : प्राणीमात्र के प्रति मैत्री भाव का सम्बन्ध रखते हुए किसी पर क्रोध

न करना, शक्ति के होने पर भी उसका उपयोग न करना क्षमाधर्म हैं।

८१०) क्षमाधर्म के कितने प्रकार है ?

उत्तर : पांच प्रकार है -

(१) उपकार क्षमा - किसी ने हमारा नुकसान किया है, तो भी "इसने अमुक समय पर मुझ पर उपकार भी तो किया था' ऐसा जानकर सहनशीलता रखना, उपकार क्षमा है।

(२) अपकारक्षमा - यदि में क्रोध करुंगा तो वह हानि पहुँचायेगा, ऐसा सोचकर क्षमा करना अपकार क्षमा है।

(३) विपाकक्षमा - यदि क्रोध करुंगा तो कर्म बन्ध होगा, ऐसा सोचकर क्षमा रखना विपाक क्षमा है।

(४) वचन क्षमा - शास्त्र में क्षमा रखने के लिये कहा है, ऐसा सोचकर क्षमा रखना वचन क्षमा है।

(५) धर्मक्षमा - आत्मा का धर्म क्षमा ही है, ऐसा सोचकर क्षमा रखना धर्मक्षमा है।

८११) मार्दव धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : नम्रता रखना अथवा मान का त्याग करना। जाति, कुल, रुप, ऐश्वर्य, तप, ज्ञान, लाभ और बल, इन आठों मद में से किसी भी प्रकार का मद न करना, मार्दव धर्म कहलाता है।

८१२) आर्जव धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : आर्जव अर्थात् सरलता। कपट रहित होना, या माया, दम्भ, ठगी आदि का सर्वथा त्याग करना, आर्जव धर्म है।

८१३) मुक्ति धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : निर्लोभता। लोभ को जीतना व पौद्गलिक पदार्थो पर आसक्ति न रखना मुक्ति धर्म है।

८१४) तप धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : इच्छाओं का रोध (रोकना) करना ही तप है। तप को संवर तथा निर्जरा, दोनों तत्त्वों के भेद में गिना गया है, क्योंकि इससे संवर तथा निर्जरा,

दोनों होते हैं।

८१५) संयम धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : हिंसादि अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर सं-सम्यक् प्रकार से, यम-पंच महाव्रतों या अणुव्रतों का पालन करना, संयम धर्म है। मुनि का संयम धर्म ५ महाव्रत, ५ इन्द्रिय निग्रह, चार कषाय जय तथा मन-वचन-काया के अशुभ व्यापार रुप तीन दंड की निवृत्ति, इस प्रकार १७ प्रकार का है।

८१६) सत्य धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : सत्य, हित, मित, निर्दोष, मधुर वचन बोलना सत्यधर्म है।

८१७) शौचधर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : शौच अर्थात् पवित्रता। मन, वचन, काया तथा आत्मा की पवित्रता। मुनिराज बाह्य उपाधि रहित होने से मन से पवित्र होते है। अष्टप्रवचन माता का सम्यक्पालन करने से, सत्यवचन बोलने से वचन से पवित्र होते है। आभ्यंतर तथा बाह्यतप करने से शारीरिक मल जल जाने से काया से पवित्र होते हैं। राग-द्वेष के त्याग का लक्ष्य होने से आत्मा से भी पवित्र होते हैं। इस प्रकार द्रव्य तथा भाव से पवित्र रहना शौचधर्म है।

८१८) आकिंचन्य धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : अ अर्थात् नहीं, किंचन - कोई भी। किसी भी प्रकार का परिग्रह या ममत्व न रखना, अकिंचन धर्म है।

८१९) ब्रह्मचर्य धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : नववाड सहित मन, वचन, काया से पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना ब्रह्मचर्य धर्म है।

८२०) ब्रह्मचर्य की नववाड कौनसी है ?

उत्तर : वाड से जैसे क्षेत्र का रक्षण होता है, उसी प्रकार नववाड से ब्रह्मचर्य का रक्षण होता है। उसके नौ प्रकार है –

(१) संसक्त वसतित्याग - जहाँ पर स्त्री, पशु व नपुंसक रहते हो, ऐसे

स्थान का त्याग करना ।

(२) स्त्रीकथा त्याग - स्त्री के रुप, लावण्य की चर्चा न करना ।

(३) निषद्या त्याग - जिस स्थान या आसन पर स्त्री बैठी हो, उस पर ४८ मिनट तक न बैठना ।

(४) अंगोपांग निरीक्षण त्याग - स्त्री के अंगोपांग न देखना ।

(५) संलग्न दीवार त्याग - संलग्न दीवार में जहाँ दम्पति रहते हो, ऐसे स्थान का त्याग करना ।

(६) पूर्वक्रीडित भोगों का विस्मरण - पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों को याद न करना ।

(७) प्रणीत आहार त्याग - गरिष्ठ-मादक, घी से झरते हुआ आहार न करना ।

(८) अति आहार त्याग - प्रमाण से अधिक भोजन न करना ।

(९) विभूषा त्याग - स्नान, इत्र, तैल आदि से मालिश आदि शरीर की शोभा बढानेवाली प्रवृत्तियों का त्याग करना ।

८२१) क्या यतिधर्म केवल साधु द्वारा ही आचरणीय है ?

उत्तर : यद्यपि इसका नाम श्रमणधर्म है तथापि श्रावक भी देशविरतिरुप चारित्र धर्म का पालन करता है, अतः उसके लिये एवं सभी के लिये दशविध धर्म आचरणीय है ।

बारह प्रकार की भावनाओं का विवेचन

८२२) भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : चित्त को स्थिर करने के लिये किसी तत्त्व पर पुनः पुनः चिंतन करना भावना है। अथवा भावना का सामान्य अर्थ तो मन के विचार, आत्मा के शुभाशुभ परिणाम है। इसका दूसरा नाम अनुप्रेक्षा भी है। मोक्षमार्ग के प्रति भाव की वृद्धि हो, ऐसा चिंतन करना भावना है ।

८२३) भावनाएँ कितनी व कौन कौन-सी हैं ?

उत्तर : भावनाएँ बारह हैं - (१) अनित्य, (२) अशरण, (३) संसार, (४)

एकत्व, (५) अन्यत्व, (६) अशुचित्व, (७) आश्रव, (८) संवर, (९) निर्जरा, (१०) लोकस्वभाव, (११) बोधिदुर्लभ, (१२) धर्मसाधक अरिहंत दुर्लभ।

८२४) अनित्य भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : तन, धन, यौवन, कुटुंब आदि सांसारिक पदार्थ अनित्य व अशाश्वत है। केवल एक आत्मा ही नित्य है, इस प्रकार का विचार करना, अनित्य भावना है।

८२५) अशरण भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : बलिष्ठ के पंजे में फंस जाने पर निर्बल का कोई रक्षक नहीं होता, उसी प्रकार आधि-व्याधि, जरा-मरण के घिर आने पर माता-पिता-धन-परिवार कोई रक्षक नहीं होता। केवल जिनधर्म ही रक्षक होता है, ऐसा चिन्तन करना अशरण भावना है।

८२६) संसार भावना से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर : चतुर्गति रूप इस संसार में जन्म-जरा-मृत्यु के भीषण दुःख जीव भोगता है। स्व कर्मानुसार नरक, तिर्यञ्च, देव, मनुष्यादि गतियों में अपार दुःख झेलता है। जो जीव यहाँ माता के रूप में सम्बन्ध रखता है, वही किसी अन्य जन्म में पत्नी, पुत्री, बहिन आदि के रूप में परिवर्तित हो जाता है। निश्चय ही यह संसार विलक्षण, नश्वर तथा परिवर्तनशील है, इस प्रकार की अनुप्रेक्षा करना, संसार भावना है।

८२७) एकत्व भावना से क्या आशय है ?

उत्तर : जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा। शुभाशुभ कर्मों का फल भी अकेला ही भोगेगा। दुःख के काल में उसका कोई मित्र-बंधु-बांधव सहयोग नहीं देगा, इसप्रकार अकेलेपन का अनुभव करना एकत्व भावना है।

८२८) अन्यत्व भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : मैं चैतन्यमय आत्मा हूँ। माता-पिता आदि परिवार मुझसे भिन्न है। यह शरीर भी मुझसे अन्य है। इस प्रकार की विचारणा करना, अन्यत्व

भावना है।

८२९) अशुचित्व भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : यह शरीर औदारिक शरीर है, जिसका निर्माण रज और वीर्य के संयोग से हुआ है। इसमें से सदा अशुचि बहती रहती है। सुगंधित व स्वादिष्ट पदार्थ भी इसके संग से दुर्गंधित मलरुप हो जाता है। उपर से सुन्दर दिखाई देनेवाला यह शरीर केवल मांस पिंड है। किन्तु हे जीव ! तू शुद्ध एवं पवित्र है। इस प्रकार की अनुप्रेक्षा अशुचि भावना है।

८३०) आश्रव भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : आत्मा में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा अशुभ योग रुप आश्रव द्वारों से निरन्तर नूतन कर्मों का आगमन होता रहता है। इसी कर्मबन्ध के कारण आत्मा के जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है, इस प्रकार का चिन्तन करना, आश्रव भावना है।

८३१) संवर भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : आश्रव मार्ग को रोकना ही संवर है अर्थात् संवृत आत्मा अशुभ कर्मों से संतप्त नहीं होता। संवर क्रियाओं का आचरण करता हुआ जीव सिद्ध पद का अधिकारी होता है, इस प्रकार का चिंतन करना संवर भावना है।

८३२) निर्जरा भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : आत्मप्रदेशों से कर्माणुओं के एक-एक भाग का पृथक् होना, कर्मों का जीर्ण होकर निर्जरण हो जाना, निर्जरा है। बिना निर्जरा के जीव कर्म सम्बन्ध से मुक्त नहीं होता। निर्जरा ही विशिष्ट ज्ञान एवं आत्मशुद्धि का मुख्य साधन है, ऐसा चिन्तन करना निर्जरा भावना है।

८३३) लोक स्वभाव भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : लोक क्या है ? उसकी आकृति कैसी है ? आदि विचार करना लोकस्वभाव भावना है। दोनों हाथ कमर पर रखकर तथा दोनों पाँव फैलाकर खडे हुए पुरुष की आकृति जैसा लोक है। इसमें जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल तथा काल द्रव्य अवस्थित है। यह लोक द्रव्य

से शाश्वत तथा पर्याय से अशाश्वत है। इस प्रकार षड्द्रव्यात्मक लोक की विचारणा लोकस्वभाव भावना है।

८३४) बोधि दुर्लभ भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : अनादिकाल से जीव इस संसारचक्र में परिभ्रमण कर रहा है। इसने आर्य देश, मनुष्यभव, उत्तमकुल, दीर्घायु, स्वस्थ इन्द्रियाँ एवं ऐश्वर्य आदि वस्तुएँ प्राप्त की परंतु बोधि (सम्यक्त्व) को प्राप्त नहीं किया। ऋद्धिसंपन्न पदवियाँ भी प्राप्त हुई पर सम्यग्दर्शन प्राप्त न हुआ। इस प्रकार इस संसार में सबकुछ प्राप्त करना सरल है पर सम्यक्त्व बोधि को प्राप्त करना महादुर्लभ है, ऐसी विचारणा बोधिदुर्लभ भावना है।

८३५) धर्मसाधक अरिहंत दुर्लभ (धर्म स्वाख्यात) भावना किसे कहते हैं ?

उत्तर : इस संसार में प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति सुलभ है परंतु धर्म के साधक-स्थापक-उपदेशक अरिहंत प्रभु की प्राप्ति महादुर्लभ है। ऋद्धि-समृद्धि भवांतर में भी प्राप्त हो सकती है परंतु मोक्ष के साधनभूत श्रुत-चारित्र रुप धर्म के संस्थापक अरिहंत की प्राप्ति अत्यंत दुष्कर है। ऐसा चिन्तन करना धर्मसाधक अरिहंत दुर्लभ भावना है।

८३६) किसे कौन सी भावना भाते हुए किसे केवलज्ञान हुआ ?

उत्तर : (१) अनित्यभावना भाते हुए - भरत चक्रवर्ती को।
(२) अशरण भावना भाते हुए - अनाथी मुनि को।
(३) संसार भावना भाते हुए - जाली कुमार को।
(४) एकत्व भावना भाते हुए - नमि राजर्षि को।
(५) अन्यत्व भावना भाते हुए - मृगापुत्र को।
(६) अशुचि भावना भाते हुए - सनत्कुमार चक्रवर्ती को।
(७) आश्रव भावना भाते हुए - समुद्रपाल मुनि को।
(८) संवर भावना भाते हुए - हरिकेशी मुनि को।
(९) निर्जरा भावना भाते हुए - अर्जुनमाली को।
(१०) लोकस्वभाव भावना भाते हुए - शिव राजर्षि को।
(११) बोधिदुर्लभ भावना भाते हुए - ऋषभदेव के ९८ पुत्रों को।

(१२) धर्म स्वाख्यात भावना भाते हुए - धर्मरुचि अणगार को।

पांच प्रकार के चारित्रों का विवेचन

८३७) चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : चय यानि आठ कर्म का संचय-संग्रह, उसे रित्त अर्थात् रिक्त करे, उसे चारित्र कहते हैं। आत्मिक शुद्ध दशा में स्थिर रहने का प्रयत्न करना ही चारित्र है।

८३८) चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पांच - (१) सामायिक चारित्र, (२) छेदोपस्थापनीय चारित्र, (३) परिहार विशुद्धि चारित्र, (४) सूक्ष्म संपराय चारित्र, (५) यथाख्यात चारित्र।

८३९) सामायिक चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : सम् - समता भावों का, आय - लाभ हो जिसमें, वह सामायिक है। समभाव में स्थित रहने के लिये संपूर्ण अशुद्ध या सावद्य प्रवृत्तियों का त्याग करना सामायिक चारित्र है। इसके २ भेद हैं - (१) इत्वरकथिक, (२) यावत्कथिक।

८४०) इत्वरकथिक सामायिक चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : इत्वर कथिक अर्थात् अल्पकालीन। जिसमें भविष्य में दुबारा करने का व्यपदेश हो, उसे इत्वरकथिक सामायिक चारित्र कहते हैं। श्रावक के ४८ मिनट (२ घडी) तथा दिन व रात पौषध में, प्रथम व अंतिम तीर्थंकर के शासन में छोटी दीक्षा से बडी दीक्षा तक का चारित्र इत्वरकथिक है। यह जघन्य ७ दिन, मध्यम ४ मास तथा उत्कृष्ट छह मास का होता है। यह चारित्र केवल भरत तथा ऐरावत क्षेत्र के प्रथम व चरम तीर्थंकरों के शासन में ही दिया जाता है।

८४१) यावत्कथिक सामायिक चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : यावज्जीवन की सामायिक यावत्कथिक सामायिक चारित्र कहलाती है। प्रथम व अंतिम तीर्थंकर को छोडकर बीच के २२ तीर्थंकरों के साधुओं एवं महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों के साधुओं के दीक्षा के प्रारंभ से जीवन

के अंतिम समय तक का चारित्र यावत्कथिक सामायिक कहलाता है।

८४२) छेदोपस्थापनीय चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : पूर्व चारित्र पर्याय का छेद करके पुनः महाव्रतों का आरोपण जिसमें किया जाता है, उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।

८४३) छेदोपस्थापनीय चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो (१) निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र, (२) सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र।

८४४) निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : छोटी दीक्षावाले मुनि को एवं एक तीर्थंकर के शासन से दूसरे तीर्थंकर के शासन में जानेवाले साधुओं में जो महाव्रतों का उपस्थान किया जाता है, उसे निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।

८४५) सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : मूल गुणों का घात करनेवाले साधु के पूर्व पर्याय का छेद कर जो पुनः महाव्रतों का आरोपण कराया जाता है, उसे सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।

८४६) परिहार विशुद्धि चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : परिहार - त्याग या तपश्चर्या विशेष। जिस चारित्र में तप विशेष से कर्म निर्जरा रुप शुद्धि होती है, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं।

८४७) परिहार विशुद्धि चारित्र का स्वरुप क्या है ?

उत्तर : स्थविरकल्पी मुनियों के गच्छ में से गुरु की आज्ञा लेकर ९ साधु गच्छ से अलग होकर केवली भगवान, गणधरादि अथवा जिन्होंने पूर्व में परिहार कल्प अंगीकार किया हो, उनके पास जाकर यह चारित्र स्वीकार करते है। नौ साधुओं के समूह में ४ निर्विश्यमानक - उपवास करनेवाले, ४ अनुचारक - सेवा करनेवाले, १ वाचनाचार्य - आज्ञा देनेवाले होते हैं। तपस्वी उपवास के पारणे में आयंबिल करते हैं। वैयावच्च करनेवाले व वाचनाचार्य हररोज आयंबिल करते हैं। इसप्रकार ६ माह बीतने पर सेवा करने वाले तप करते हैं व तप करने वाले सेवा

करते हैं। पुनः ६ माह बीतने पर वाचनाचार्य ६ माह तप करते हैं व जघन्य से एक व उत्कृष्ट से ७ साधु उनकी सेवा करते हैं व एक वाचनाचार्य होते हैं। इस प्रकार कुल १८ माह में यह तप पूर्ण होता है। पश्चात् वह साधु जिनकल्प अथवा स्थविरकल्प को स्वीकार करता है। भरत तथा ऐरवत क्षेत्र में ही यह चारित्र होता है। स्त्री को यह चारित्र नहीं होता। प्रथम संघयण वाले पूर्वधर लब्धिवाले को ही यह चारित्र होता है।

८४८) परिहार विशुद्धि चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) निर्विश्यमान, (२) निर्विष्टकायिक।

८४९) निर्विश्यमान परिहार विशुद्धि चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : तप करनेवाले पारिहारिक साधु निर्विश्यमान कहलाते हैं तथा उनका चारित्र निर्विश्यमान परिहार विशुद्धि चारित्र कहलाता है।

८५०) निर्विष्टकायिक परिहार विशुद्धि चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : तप करके वैयावच्च करनेवाले तथा तप करके गुरु पद पर रहा हुआ साधु निर्विष्टकायिक कहलाते हैं तथा उनका चारित्र निर्विष्टकायिक परिहार विशुद्धि चारित्र कहलाता है।

८५१) परिहार विशुद्धि चारित्र की तपविधि क्या है ?

उत्तर :

काल	जघन्य तप	मध्यम तप	उत्कृष्ट तप
ग्रीष्मकाल	१ उपवास	२ उपवास	३ उपवास
शीतकाल	२ उपवास	३ उपवास	४ उपवास
वर्षाकाल	३ उपवास	४ उपवास	५ उपवास

८५२) सूक्ष्म संपराय चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : सूक्ष्म अर्थात् किट्टि रूप (चूर्णरूप) अति जघन्य संपराय - बादर लोभ कषाय के क्षयवाला जो चारित्र है, वह सूक्ष्म संपराय चारित्र कहलाता है।

८५३) सूक्ष्म संपराय चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) विशुद्धयमान (२) संक्लिश्यमान ।

८५४) विशुद्धयमान सूक्ष्म संपराय चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : क्षपक श्रेणी अथवा उपशम श्रेणी पर चढनेवाले जीव को १०वे गुणस्थानक में विशुद्ध चढती दशा के अध्यवसाय होने से उनका सूक्ष्म संपराय चारित्र विशुद्धयमान कहलाता है ।

८५५) संक्लिश्यमान सूक्ष्म संपराय चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपशम श्रेणी से गिरते हुए जीव के परिणाम संक्लेश युक्त होने से उनका चारित्र संक्लिश्यमान सूक्ष्म संपराय चारित्र कहलाता है ।

८५६) यथाख्यात चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : कषाय उदय का सर्वथा अभाव होने से अतिचार रहित एवं पारमार्थिक रुप से विशुद्ध एवं प्रसिद्ध चारित्र यथाख्यात चारित्र है ।

८५७) यथाख्यात चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) छद्मस्थ यथाख्यात (२) केवली यथाख्यात ।

८५८) छद्मस्थ यथाख्यात चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) उपशांत मोह यथाख्यात । (२) क्षीण मोह यथाख्यात ।

८५९) उपशांत मोह यथाख्यात चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : ग्यारहवें गुणस्थानक में मोहनीय कर्म के उदय का सर्वथा अभाव हो जाता है और यह कर्म सत्ता में होता है, उस समय का चारित्र उपशांत मोह यथाख्यात चारित्र कहलाता है ।

८६०) क्षीण मोह यथाख्यात चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : १२वें, १३वें, १४वें गुणस्थानक में मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाने के कारण उनका चारित्र क्षीण मोह यथाख्यात चारित्र कहलाता है ।

८६१) छद्मस्थ यथाख्यात चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर : ११ वें, १२ वें गुणस्थानक में उपरोक्त दोनों प्रकार का चारित्र छद्मस्थ यथाख्यात चारित्र कहलाता है ।

८६२) केवली यथाख्यात चारित्र किसे कहते है ?

उत्तर : केवलज्ञानी के चारित्र को केवली यथाख्यात चारित्र कहते हैं ।

८६३) केवली यथाख्यात चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) सयोगी केवली - १३ वें गुणस्थानक में रहे हुए केवली का चारित्र सयोगी केवली यथाख्यात चारित्र है। (२) अयोगी केवली - १४ वें गुणस्थानक में रहे हुए केवली का चारित्र अयोगी केवली यथाख्यात चारित्र है।

८६४) संवर तत्त्व को जानने का उद्देश्य लिखो।

उत्तर : संवर के ५७ भेदों का स्वरूप जानकर विचार करें कि जिस कर्म के संबंध से जीव संसार मे परिभ्रमण कर रहा है, उस कर्म के बंध को रोकना, यही संवर है, अतः यह स्व-स्वरूप की प्राप्ति का कारणभूत होने से उपादेय है, ऐसा विचार कर अविरति-देशविरति को तथा देशविरति-सर्वविरति को प्राप्त करे। यही कर्मों को रोकने का एक उत्तम साधनरूप है, यदि यह नहीं होता तो जीव कर्मों को रोक नहीं पाता और उसका उद्धार नहीं होता। इस प्रकार अलग अलग क्रिया द्वारा अपनी आत्मा में लगे कर्मरूपी चुंबक से अन्य कर्मों के खींचकर आनेवाले आश्रव को रोककर अन्ततः स्वस्वरूप की प्राप्ति कर मोक्ष को प्राप्त करे। यही संवर तत्त्व को जानने का मुख्य उद्देश्य है।

निर्जरा तत्त्व का विवेचन

८६५) निर्जरा किसे कहते है ?

उत्तर : आत्मा पर लगे हुए कर्मरुपी मल का देशतः दूर होना निर्जरा है। अथवा जीव रुपी कपडे पर लगे हुए कर्म रुपी मेल को ज्ञान रुपी पानी, तप-संयम रुपी साबुन से धोकर दूर करना भी निर्जरा कहलाता है।

८६६) निर्जरा के २ भेद कौन से हैं ?

उत्तर : (१) अकाम निर्जरा, (२) सकाम निर्जरा।

८६७) अकाम निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर : बिना इच्छा एवं बिना सोच-समझ व विवेक के भूख, प्यास आदि दुःखों को सहन करने से जो आंशिक कर्मक्षय होता है, उसे अकाम निर्जरा कहते हैं।

८६८) सकाम निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर : 'कर्म का क्षय हो' इस विचार से आत्म शुद्धि के लक्ष्य से किये जाने वाले तप से जो कर्मक्षय होता है, उसे सकाम निर्जरा कहते हैं ।

८६९) निर्जरा तत्त्व का वर्णन कौन-से सूत्र में आया है ?

उत्तर : भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक ७ और उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन ३० में निर्जरा तत्त्व का वर्णन है ।

८७०) निर्जरा के सामान्यतः कितने भेद हैं ?

उत्तर : बारह भेद हैं - (१) छह बाह्य तप तथा (२) छह आभ्यंतर तप ।

८७१) बाह्यतप किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस तप को मिथ्यादृष्टि भी करते है, जिस तपश्चर्या को करते देख लोग उन्हें तपस्वी कहते हैं, जो दिखने में आता है, शरीर को तपाता है, उसे बाह्य तप कहते हैं ।

छह प्रकार के बाह्य तप का विवेचन

८७२) छह बाह्य तप कौन कौन-से हैं ?

उत्तर : (१) अनशन, (२) ऊनोदरी, (३) वृत्तिसंक्षेप, (४) रसपरित्याग, (५) कायक्लेश, (६) प्रतिसंलीनता ।

८७३) अनशन किसे कहते हैं ?

उत्तर : अशन (अन्न), पान (पानी), खादिम (फल, मेवा आदि), स्वादिम (मुखवास), इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करना अथवा पानी के सिवाय तीन आहार का त्याग करना अनशन कहलाता है ।

८७४) अनशन के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) इत्वरिक अनशन (२) यावत्कथिक अनशन ।

८७५) इत्वरिक अनशन किसे कहते हैं ?

उत्तर : अल्पकाल के लिये किये जानेवाले अनशन को इत्वरिक अनशन कहते हैं ।

८७६) इत्वरिक अनशन के कितने भेद हैं ?

उत्तर : छह - (१) श्रेणीतप, (२) प्रतरतप, (३) घनतप, (४) वर्गतप, (५) वर्गावर्ग तप, (६) प्रकीर्णक तप ।

८७७) श्रेणी किसे कहते हैं ?

उत्तर : पंक्ति बद्ध वस्तु को श्रेणी कहते हैं । जैसे १-२-३-४ की संख्या में वस्तु ।

८७८) प्रतर किसे कहते हैं ?

उत्तर : श्रेणी को श्रेणी से गुणा करने पर प्रतर होता है । जैसे 2 x 2 = 4

८७९) घन किसे कहते हैं ?

उत्तर : प्रतर को श्रेणी से गुणा करने पर घन होता है । अथवा समान जाति को तीन बार गुणा करने पर जो अंक आता है (2x2x2 = 8) उसे घन कहते हैं ।

८८०) वर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर : घन को घन से गुणा करने पर वर्ग होता है । (8 x 8 = 64)

८८१) वर्गावर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर : वर्ग को वर्ग से गुणा करने पर वर्गावर्ग होता है । (64 x 64 = 4096)

८८२) प्रकीर्णक किसे कहते हैं ?

उत्तर : श्रेणी एवं अनुक्रम के बिना ही फुटकर रीति से किया जाने वाला तप प्रकीर्णक हैं ।

८८३) श्रेणीतप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चौदह - (१) चतुर्थ भक्त (उपवास), (२) षष्ठ भक्त (बेला), (३) अष्टम भक्त (तेला), (४) दशमभक्त (चोला), (५) द्वादश भक्त (पंचोला), (६) चतुर्दशभक्त (छेला), (७) षोडशभक्त (सतोला), (८) अर्द्धमासिक, (९) मासिक, (१०) द्विमासिक, (११) त्रैमासिक, (१२) चातुर्मासिक, (१३) पंचमासिक, (१४) षण्मासिक

८८४) प्रतर तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : सोलह - (१) व्रत (उपवास), (२) बेला, (३) तेला, (४) चौला, (५) बेला, (६) तेला, (७) चौला, (८) व्रत, (९) तेला, (१०) चौला,

(११) व्रत, (१२) बेला, (१३) चौला, (१४) व्रत, (१५) बेला, (१६) तेला ।

८८५) घन तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : १६ उपवास, १६ बेले, १६ तेले, १६ चौले = ६४

८८६) वर्ग तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार हजार छियानवे - (१) एक हजार चौबीस उपवास, (२) एक हजार चौबीस बेले, (३) एक हजार चौबीस तेले, (४) एक हजार चौबीस चौले (1024 x 4 = 4096)

८८७) वर्गावर्ग तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : एक क्रोड सतसठ लाख सित्तत्तर हजार दो सौ सोलह (१,६७,७७,२१६) भेद हैं - ४१ लाख ९४ वें हजार ३०४ व्रत, ४१ लाख ९४ वें हजार ३०४ बेले, ४१ लाख ९४ वें हजार ३०४ तेले, ४१ लाख ९४ वें हजार ३०४ चौले । वर्ग एवं वर्गावर्ग तप चौथे आरे में किया जाता है । पंचम काल में आयु, संहनन आदि की निर्बलता के कारण ये तप करना संभव नहीं है ।

८८८) प्रकीर्णक तप किसे कहते हैं ?

उत्तर : प्रकीर्णक तप के १० भेद हैं - (१) नवकारसी, (२) पोरसी, (३) साड्ढ पोरसी, (४) एकासना, (५) एगलठाणा, (६) आयम्बिल, (७) चरम, (८) अभिग्रह, (९) विगई ।

८८९) यावत्कथिक अनशन किसे कहते हैं ?

उत्तर : यावज्जीवन के लिये किया जाने वाला अनशन यावत्कथिक है ।

८९०) यावत्कथिक अनशन के कितने भेद हैं ?

उत्तर : तीन - (१) पादपोपगमन, (२) भक्त प्रत्याख्यान, (३) इंगित मरण । इन तीनों के निर्हारिम तथा अनिर्हारिम ऐसे दो-दो भेद है ।

८९१) पादपोपगमन किसे कहते हैं ?

उत्तर : चारों आहार का त्याग करके अपने शरीर के किसी भी अंग को किंचित् मात्र भी न हिलाते हुए, वृक्ष की टूटकर भूमि पर पडी हुई डाल के

समान निश्चल रुप से संथारा करना, पादपोपगमन कहलाता है।

८९२) पादपोपगमन के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) व्याघातिम, (२) निर्व्याघातिम।

८९३) व्याघातिम पादपोपगमन संथारा किसे कहते हैं ?

उत्तर : सिंह, सर्प, अग्नि आदि का उपद्रव होने पर जो संथारा (अनशन) किया जाता है, उसे व्याघातिम पादपोपगमन संथारा कहते हैं।

८९४) निर्व्याघातिम पादपोपगमन संथारा किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो किसी भी प्रकार के उपद्रव के बिना स्वेच्छा से किया जाता है, वह निर्व्याघातिम पादपोपगमन संथारा कहलाता है।

८९५) भक्त प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : यावज्जीवन तीन या चारों आहार का त्याग करके संथारा करना, भक्त प्रत्याख्यान अनशन है।

८९६) इंगित मरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : यावज्जीवन चारों आहार का त्याग करके निश्चित स्थान में हिलने-डुलने का आगार रखकर किया जाने वाला संथारा इंगित मरण कहलाता है।

८९७) निर्हारिम किसे कहते हैं ?

उत्तर : अनशन अंगीकार करने के बाद शरीर को नियत स्थान से बाहर निकालना, यह निर्हारिम है।

८९८) अनिर्हारिम किसे कहते हैं ?

उत्तर : अनशन अंगीकार करने के बाद उसी स्थान में रहना अनिर्हारिम है।

८९९) ऊणोदरी किसे कहते हैं ?

उत्तर : भोजन आदि के परिमाण को थोडा कम करना अर्थात् जितनी इच्छा हो, उससे कुछ कम खाना ऊणोदरी है। ऊन - कम (न्यून), उदरी उदरपूर्ति करना, ऊणोदरी कहलाता है।

९००) ऊणोदरी के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) द्रव्य ऊणोदरी, (२) भाव ऊणोदरी।

९०१) द्रव्य ऊणोदरी किसे कहते हैं ?

उत्तर : भण्ड-उपकरण, आहार-पानी आदि का शास्त्र में जो परिमाण बताया गया है, उसमें भी कमी करना तथा अति सरस, स्वादिष्ट व पौष्टिक आहार का त्याग करना, द्रव्य ऊणोदरी है ।

१०२) द्रव्य ऊणोदरी के कितने भेद हैं ?

उत्तर : तीन - (१) आहार (भक्तपान) ऊणोदरी, (२) उपधि ऊणोदरी, (३) शय्या ऊणोदरी ।

१०३) आहार ऊणोदरी किसे कहते हैं ?

उत्तर : अल्प आहार करना आहार ऊणोदरी है ।

१०४) भक्तपान ऊणोदरी के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पांच - (१) एक कवल से आठ कवल खाने पर अल्पाहार ऊणोदरी है ।

(२) आठ से बारह कवल तक खाने पर अपार्द्ध ऊणोदरी है ।

(३) तेरह से सोलह कवल तक खाने पर अर्द्ध ऊणोदरी है ।

(४) सतरह से चौबीस कवल तक खाने पर पौन ऊणोदरी है ।

(५) पच्चीस से एकतीस कवल तक खाने पर किंचित् ऊणोदरी है । तथा पूरे बत्तीस कवल परिमाण आहार करना प्रमाणोपेत आहार कहलाता है ।

१०५) उपधि ऊणोदरी किसे कहते हैं ?

उत्तर : सीमित वस्त्र, पात्र रखना उपधि ऊणोदरी है ।

१०६) शय्या ऊणोदरी किसे कहते हैं ?

उत्तर : शय्या संकोचकरण अर्थात् शयन-आसन-गमन आदि कम करना शय्या ऊणोदरी है ।

१०७) भाव ऊणोदरी किसे कहते हैं ?

उत्तर : क्रोधादि कषायों में कमी करना, अल्प बोलना, भाव ऊणोदरी है ।

१०८) भाव ऊणोदरी के कितने भेद हैं ?

उत्तर : छह - (१) अल्प क्रोध, (२) अल्प मान, (३) अल्प माया, (४) अल्प लोभ, (५) अल्प शब्द, (६) अल्प संज्ञा ।

१०९) वृत्तिसंक्षेप किसे कहते हैं ?

उत्तर : द्रव्यादि चार भेदों से मनोवृत्ति का संक्षेप अर्थात् द्रव्य-क्षेत्र-काल तथा भाव से भिक्षा का अभिग्रह करना वृत्ति संक्षेप है। अभिग्रहपूर्वक भिक्षा लेने से वृत्ति का संकोच होता है। इसका अपर नाम भिक्षाचरी भी है।

११०) द्रव्य भिक्षाचरी के कितने भेद हैं ?

उत्तर : २६ भेद हैं - (१) उक्खित्त चरए, (२) निक्खित्त चरए, (३) उक्खित्त निक्खित्त चरए, (४) निक्खित्त उक्खित्त चरए, (५) वट्टिज्जमाण चरए, (६) साहरिज्जमाण चरए, (७) उवणीअ चरए, (८) अवणीअ चरए, (९) उवणीअ अवणीअ चरए, (१०) अवणीअ उवणीअ चरए, (११) संसट्ठ चरए, (१२) असंसट्ठ चरए, (१३) तज्जाइ संसट्ठ चरए, (१४) अन्नाय चरए, (१५) मोण चरए, (१६) दिट्ठ लाभए, (१७) अदिट्ठ लाभए, (१८) पुट्ठ लाभए, (१९) अपुट्ठ लाभए, (२०) भिक्ख लाभए, (२१) अभिक्ख लाभए, (२२) अन्नगिलाए, (२३) उवणिहिए, (२४) परिमित पिंडवत्तिए, (२५) सुद्धेसणिए, (२६) संखादत्तीए (औप. स्था.)

१११) क्षेत्र भिक्षाचरी के कितने भेद हैं ?

उत्तर : आठ। इन आठ को गोचराग्र गोचरी प्रधान कहा है। गो-गाय की तरह, चर्या, इधर-उधर भ्रमण कर कम-कम मात्रा में सभी जगह से प्रासुक कल्पनीय आहार लेना।

(१) पेटिए - चारों कोणों के घरों से आहार लेना।

(२) अद्ध पेटिए - दो कोणों के घरों से आहार लेना।

(३) गोमुत्ते - गोमूत्र की तरह टेढे-मेढे पंक्तिबद्ध घरों से आहार लेना।

(४) पतंगिए - पतंग उडने के समान फुटकल घरों से आहार लेना।

(५) अब्भितर संखावत्त - शंख आवर्त्त-चक्र, घेरे की भांति नीचे के घर से फिर ऊपर के घर से आहार लेना।

(६) बाहिर संखावत्त - पहले ऊपर के घर से फिर नीचे के घर से आहार लेना।

(७) गमणे - जाते हुए आहार लेना ।

(८) आगमणे - आते हुए आहार लेना ।

११२) काल भिक्षाचरी के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार - (१) तीसरे प्रहर के प्रथम भाग में आहार लाना व प्रथम भाग में ही भोगना । शेष तीन का त्याग ।

(२) दूसरे भाग में आहार लाना, दूसरे भाग में भोगना । शेष तीन का त्याग ।

(३) तीसरे भाग में आहार लाना, तीसरे भाग में भोगना । शेष तीन का त्याग ।

(४) चोथे भाग में आहार लाना, चोथे भाग में भोगना । शेष तीन का त्याग ।

११३) भाव भिक्षाचरी के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पन्द्रह - तीन आयु की स्त्री - (१) बाल, (२) युवा, (३) वृद्ध । तीन आयु का पुरुष - (१) बाल, (२) युवा, (३) वृद्ध ।

(७) अमुक वर्ण, (८) संस्थान, (९) अमुक वस्त्र, (१०) बैठा हो, (११) खडा हो, (१२) सिर खुला हो, (१३) सिर ढ़का हुआ हो, (१४) आभरण सहित हो, (१५) आभरण रहित हो ।

(अमुक बाल, अमुक वर्ण, आयु, आकृति तथा अमुक वर्ण के वस्त्रों में खडा / बैठा हो तो ही उसके हाथ से आहार लेना, अन्यथा नहीं)

११४) रस त्याग किसे कहते हैं ?

उत्तर : विकार वर्धक दूध, दहीं, घी आदि विगई तथा प्रणीत रस, गरिष्ठ आहार का त्याग करना, रसनेन्द्रिय का निग्रह करना, रस-लोलुपता का त्याग करना, रस परित्याग है ।

११५) रस त्याग के कितने भेद हैं ?

उत्तर : नौ भेद हैं - (१) विगई त्याग - घृत, तेल, दूध-दही आदि विकार वर्धक वस्तुओं का त्याग करना ।

(२) प्रणीत रस त्याग - जिसमें घी, दूध आदि की बूंदे टपक रही

हो, ऐसे आहार का त्याग करना ।

(३) आयंबिल - लूखी रोटी, उबला धान्य तथा भूने चने आदि का आहार करना ।

(४) आयाम सिक्थभोजी - चावल आदि के पानी (ओसामन) में पडे हुए धान्य आदि का आहार करना ।

(५) अरसाहार - नमक, मिर्च आदि मसालों के बिना रस रहित आहार करना ।

(६) विरसाहार - जिनका रस चला गया हो, ऐसे पुराने धान्य या भात आदि का आहार करना ।

(७) अन्ताहार - जघन्य अर्थात् हलका, जिसे गरीब लोग खाते हैं, ऐसा आहार लेना ।

(८) प्रान्ताहार - बचा हुआ आहार लेना ।

(९) रुक्षाहार - रूखा-सूखा, जीभ को अप्रिय लगनेवाला आहार करना ।

९१६) विगई किसे कहते हैं ?

उत्तर : विगई अर्थात् विकृति । जिससे मन में विकार बढे, उस आहार को विगई कहते हैं ।

९१७) विगई के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) लघु विगई, (२) महा विगई ।

९१८) लघु विगई से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : दूध-दही, घी-तेल, गुड-कडाई (तली हुई वस्तु) इन छह को लघु विगई कहते हैं । इनका यथायोग्य त्याग करना चाहिए ।

९१९) महाविगई किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो सर्वथा त्याज्य हो, उसे महाविगई कहते हैं । मदिरा, माँस, शहद, मक्खन, ये चार महाविगई है ।

९२०) कायक्लेश किसे कहते हैं ?

उत्तर : काया को क्लेश / कष्ट पहुँचाना कायक्लेश है । शरीर से कठोर साधना करना, वीरासन, पद्मासन आदि में बैठना, लोच करना, कायक्लेश तप

कहलाता है ।

९२१) कायक्लेश तप के भेद किस सूत्र में कहे गये हैं ?

उत्तर : कायक्लेश तप के भेद स्थानांग तथा औपपातिक सूत्र में कहे गये हैं ।

९२२) कायक्लेश तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : १६ भेद हैं - (१) ठाणाट्ठितिए - कायोत्सर्ग करके खडे रहना । (२) ठाणाइए - एक स्थान पर बैठे रहना । (३) उक्कुडुयासणिए - उत्कटिासन करना । उक्कडु बैठना - दोनों घुटनों में सिर झुकाकर कायोत्सर्ग करना । (४) पडिमट्ठाई - प्रतिमा की भाँति स्थिर रहना, पद्मासन लगाना । (५) वीरासणिए - वीरासन करना । सिंहासन या कुर्सी पर बैठे व्यक्ति के नीचे से कुर्सी निकाल देने पर जो मुद्रा बनती है, वह वीरासन है । (६) नेसज्जिए - दोनों कुल्हों के बल भूमि पर बैठना अथवा भूमि पर किसी भी आसन में बैठना निषद्या है । (७) दण्डायए - दण्डासन करना । लम्बे दण्ड की तरह लेटकर कायोत्सर्ग करना । (८) लगंडसाइ - टेढी लकडी की तरह कायोत्सर्ग करना । लकडासन / लंगुष्ठशायी आसन करना । (९) आयावए - आतापक / धूप आदि की आतापना लेना । (१०) अवाउडए - अप्रावृतक - वस्त्ररहित होकर शीत आदि की वेदना सहना अथवा खुले मैदान या स्थल पर बैठकर धूप / शीत आदि की वेदना सहना । (११) अकंडाए- अकुंडयन - कायोत्सर्ग में खुजली न खुजलाना । (१२) अणिट्ठुहए - अनिष्ठुवत - कायोत्सर्ग में थूंक न थूकना । (१३) सव्वगयपरिकम्म - शरीर के अंगोपांगों पर ममत्व न रखना । (१४) विभूषविप्पमुक्के - विभूषा / श्रृंगार का त्याग करना । (१५) लोयईपरिसह - केशलुंचन करना । (१६) चरिया - चर्या / विहार करना ।

९२३) प्रतिसंलीनता तप किसे कहते हैं ?

उत्तर : प्रतिसंलीनता - संकोचन या गोपन करना । अशुभ मार्ग में प्रवर्तन करती हुई इन्द्रियों का योग आदि के द्वारा संवरण करना प्रतिसंलीनता तप कहलाता है ।

९२४) प्रतिसंलीनता तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार - (१) इन्द्रिय प्रतिसंलीनता, (२) कषाय प्रतिसंलीनता, (३) योग प्रतिसंलीनता, (४) विविक्त प्रतिसंलीनता ।

९२५) इन्द्रिय प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ?

उत्तर : इन्द्रियों को अपने विषयों की ओर जाने से रोकना तथा इन्द्रियों द्वारा गृहित विषयों में रागद्वेष न करना । इसके पांच भेद हैं - (१) श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीनता, (२) चक्षुरिन्द्रिय प्रतिसंलीनता, (३) घ्राणेन्द्रिय प्रतिसंलीनता, (४) रसनेन्द्रिय प्रतिसंलीनता, (५) स्पर्शनेन्द्रिय प्रतिसंलीनता ।

९२६) कषाय प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ?

उत्तर : क्रोध, मान, माया, लोभ का उदय न होने देना तथा उदय में आये हुए कषाय को निष्फल बना देना । इसके क्रोधादि चार भेद हैं ।

९२७) योग प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ?

उत्तर : मन, वचन तथा काया, इन तीनों योगों की अशुभ, अकुशल प्रवृत्तियों को रोकना तथा शुभ व कुशल प्रवृत्तियों को संपादित करना, योग प्रतिसंलीनता है ।

९२८) विविक्त प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्त्री, पुरुष, नपुंसक, पशु के संसर्गवाले स्थान को छोडकर निर्दोष तथा संयम के अनुकूल स्थान में रहना, विविक्त प्रतिसंलीनता है ।

९२९) आभ्यंतर तप किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस तप का सम्बन्ध आत्मभाव से हो, जिससे बाह्य शरीर नहीं तपता परन्तु आत्मा तथा मन तपते हैं, जो अंतरंग प्रवृत्तिवाला है, उसे आभ्यंतर तप कहते हैं ।

छह प्रकार के आभ्यन्तर तप का विवेचन

९३०) आभ्यंतर तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : छह - (१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान, (६) कायोत्सर्ग ।

९३१) प्रायश्चित्त तप किसे कहते हैं ?

उत्तर : किये हुए अपराध की शुद्धि करना प्रायश्चित्त तप कहलाता है ।

९३२) प्रायश्चित्त तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : प्रायश्चित तप के दस भेद हैं -

(१) आलोचना - किये हुए पाप को गुरु आदि के समक्ष प्रकट करना।

(२) प्रतिक्रमण - किये हुए पाप की पुनरावृत्ति नहीं करने के लिये मिच्छामि दुक्कडं देना ।

(३) मिश्र - किया हुआ पाप गुरु के समक्ष कहना और मिथ्या दुष्कृत भी देना ।

(४) विवेक - अकल्पनीय अन्न-पानी आदि का विधिपूर्वक त्याग करना ।

(५) कायोत्सर्ग - काया का व्यापार बन्द करना ।

(६) तप - किये हुए पाप के दंड रुप नीवी, आयंबिल आदि तप करना ।

(७) छेद - महाव्रत का घात होने पर अमुक प्रमाण में दीक्षा काल का छेद करना, घटाना ।

(८) मूल - महा अपराध होने पर पुनः व्रतों का आरोपण करना ।

(९) अनवस्थाप्य - किये हुए अपराध का प्रायश्चित्त न करे, तब तक महाव्रत न देना ।

(१०) पारांचित - साध्वी का शील भंग करने अथवा दूसरा कोई महाउपघातक अपराध होने पर १२ वर्ष तक गच्छ से निष्काषित कर देने पर साधु वेश का त्याग करके शासन की महान प्रभावना करके पुनः महाव्रत स्वीकार करके गच्छ में सम्मिलित होना । इसे पारांचित तप कहते हैं ।

९३३) विनय तप किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके द्वारा आत्मा से कर्म रूपी मल को हटाया जा सके, अथवा गुणवान की भक्ति-बहुमान करना, आशातना न करना विनय तप

कहलाता है ।

९३४) विनय तप के मुख्य कितने भेद हैं ?

उत्तर : विनय तप के ७ भेद हैं - (१) ज्ञान विनय, (२) दर्शन विनय, (३) चारित्र विनय, (४) मन विनय, (५) वचन विनय, (६) काय विनय उपचार विनय ।

९३५) विनय तप के कुल कितने भेद हैं ?

उत्तर : कुल १३४ भेद हैं - (१) ज्ञानविनय - ५, (२) दर्शनविनय - ५५, (३) चारित्रविनय-५, (४) योगविनय - मनविनय-२४, वचनविनय-२४, कायविनय-१४, (५) उपचार विनय-७ ।

९३६) ज्ञानविनय किसे कहते हैं ?

उत्तर : ज्ञान तथा ज्ञानी का विनय, बहुमान तथा वैयावृत्य करना ज्ञान विनय है।

९३७) ज्ञान विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पांच - (१) भक्ति विनय : ज्ञान व ज्ञानी की सेवा - वेयावच्च करना।

(२) बहुमान विनय : ज्ञान व ज्ञानी के प्रति आंतरिक प्रीति धारण करना।

(३) भावना विनय : ज्ञान द्वारा ज्ञेय पदार्थों का चिंतन करना ।

(४) विधि ग्रहण विनय : विधिपूर्वक शास्त्र पढ़ना ।

(५) अभ्यास विनय : ज्ञान की पुनरावृत्ति करना ।

९३८) दर्शन विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) शुश्रूषा विनय (२) अनाशातना विनय ।

९३९) शुश्रूषा विनय किसे कहते हैं ?

उत्तर : देव-गुरु की उचित सेवा शुश्रूषा करना शुश्रूषा विनय है । इसके १० भेद हैं -

(१) अब्भुट्ठाणे - गुरुजनों के आने पर खडे होना ।

(२) आसणाभिग्गहे - बैठने की जहाँ इच्छा हो, वहाँ आसन बिछाना।

(३) आसणप्पदाणे - आसन प्रदान करना ।

(४) अंजलिपग्गहे - दो हाथ जोडना ।

(५) कीइकम्मे - गुरु को वन्दना करना ।

(६) सक्कारे - गुरु आवे तब स्तवना - सत्कार करना ।

(७) सम्माणे - गुरु को सम्मान देना ।

(८) एंतस्स अणुगच्छणया - गुरु आवे तब सामने जाना ।

(९) ठियस्स पज्जुवासणया - गुरु ठहरे तब सेवाभक्ति करना ।

(१०) गच्छंतस्स पडिसंसाहमाणा - गुरु जब जावे तब छोडने जाना ।

उत्तराध्ययन के ३० वें अध्ययन में विनय तप की व्याख्या में शुश्रूषा विनय के ५ भेद ही बताये हैं ।

९४०) अनाशातना विनय किसे कहते हैं ?

उत्तर : देव, गुरु की आशातना न करना अनाशातना विनय है । इसके ४५ भेद हैं - (१) अरिहंत, (२) धर्म, (३) आचार्य, (४) उपाध्याय, (५) स्थविर, (६) कुल, (७) गण, (८) संघ, (९) सांभोगिक तथा (१०) साधर्मिक एवं पांच ज्ञान, ये कुल १५ । इन १५ की आशातना का त्याग करना, इन १५ का भक्ति, बहुमान करना, इन १५ का गुणानुवाद, स्तवना करना, यह ४५ प्रकार का अनाशातना विनय है ।

९४१) चारित्र विनय किसे कहते हैं ?

उत्तर : सामायिकादि पांचों चारित्र की सद्दहणा (श्रद्धा), स्पर्शना, आदर, पालन तथा प्ररुपणा करना चारित्र विनय है। पांच चारित्री का उपरोक्त पंचविध विनयरुप इसके पांच भेद हैं ।

९४२) योग विनय किसे कहते हैं ?

उत्तर : दर्शन तथा दर्शनी का मन, वचन व काया, इन तीनों योगों से विनय करना योग विनय है ।

९४३) मनोयोग विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो (१) प्रशस्त मनविनय, (२) अप्रशस्त मनविनय ।

९४४) अप्रशस्त मन विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : १२ भेद हैं ।

(१) सावद्यक मन - मन का पापरुप सावद्य होना ।

(२) सक्रिय मन - मन का कायिकी आदि क्रियारुप होना ।

(३) कर्कश मन - कर्कश भावयुक्त होना ।

(४) कटु मन - दूसरे के लिये मन को अनिष्ट बनाना ।

(५) निष्ठुर मन - निष्ठुर होना ।

(६) परुष मन - स्नेह का अभाव, कठोर होना ।

(७) आश्रवमय मन - अशुभ कर्माश्रवी होना ।

(८) छेदकारी मन - मन से हाथ आदि अंगों को छेदने का विचार करना ।

(९) भेदकारी मन - मन से नासिकादि को भेदने का विचार करना ।

(१०) परितापक मन - प्राणियों को कष्ट देने का मन होना ।

(११) उपद्रवकारी मन - जीवों को मारणांतिक कष्ट देने रुप उपद्रवकारी मन का होना ।

(१२) प्राणीपीडक मन - प्राणियों को पीडा देने का मन होना ।

९४५) प्रशस्त मन विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : प्रशस्त मन विनय के १२ भेद हैं - (१) असावद्यक मन, (२) अक्रिय मन, (३) अकर्कश मन, (४) अकटु (स्नेहिल) मन, (५) अनिष्ठुर मन, (६) अपरुष (कोमल) मन, (७) अनाश्रवी मन, (८) अछेदनकारी मन, (९) अभेदकारी मन, (१०) अपरितापक मन, (११) अनुपद्रवकारी मन, (१२) अप्राणीपीडक मन ।

९४६) अप्रशस्त तथा प्रशस्त वचन विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : अप्रशस्त तथा प्रशस्त मन की भाँति वचन के भी प्रशस्त व अप्रशस्त की अपेक्षा से २४ भेद हैं ।

९४७) प्रशस्त काय विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : सात - (१) उपयोगपूर्वक चलना, (२) उपयोगपूर्वक खडे रहना, (३) उपयोगपूर्वक बैठना, (४) उपयोगपूर्वक सोना, (५) उपयोगपूर्वक किसी वस्तु का उल्लंघन करना, (६) उपयोगपूर्वक ही प्रलंघन करना (बार-बार उस पर से जाना), (७) इन्द्रियों को विषयादि से बचाना ।

९४८) अप्रशस्त काय विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : प्रशस्त भेद के विपरीत लक्षण वाले ७ भेद अप्रशस्त कायविनय के हैं।

९४९) उपचार विनय किसे कहते हैं ?

उत्तर : गुरुजनों के प्रति शिष्ट, श्रेष्ठ तथा योग्य व्यवहार करना उपचार विनय है।

९५०) उपचार विनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : सात - (१) अभ्यासासन - गुरुजनों के निकट रहना। (२) परछंदानुवर्तन - उनकी इच्छानुसार अनुसरण करना। (३) कार्यहेतु - पूर्व उपकार को मानकर कार्य करना। (४) कृतप्रतिकृतिता - ज्ञान आदि के फल की इच्छा से आचार्य आदि का कार्य करना। (५) आर्त्तगवेषणा - दु:खी, रोगादि से पीडित की सेवा का विचार रखना। (६) देशकालज्ञता - देश, काल का ज्ञान रखना। (७) सर्वअर्थानुमति - सर्व अर्थों में अनुकूल रहना।

९५१) वैयावृत्य तप किसे कहते हैं ?

उत्तर : गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा करना वैयावृत्य तप है।

९५२) वैयावृत्यतप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : १० भेद हैं - (१) आचार्य - तीर्थंकर की अनुपस्थिति में जो तीर्थंकर के समान शासन के नायक होते हैं, व्रत तथा आचार ग्रहण कराते हैं व आचारवानों की रक्षा करते हैं, वे ३६ गुणों से युक्त संघनायक आचार्य कहलाते हैं। उनकी वैयावृत्य करना।

(२) उपाध्याय - जो स्व-पर सिद्धान्त के ज्ञाता होते हैं, श्रुत-शास्त्र का अध्ययन करते हैं व वाचना देते हैं, वे २५ गुणों से युक्त उपाध्याय कहलाते हैं। उनकी सेवा करना।

(३) स्थविर - जो ज्ञान में, दीक्षा में, आयु में बडे होते हैं, वे क्रमश: ज्ञान स्थविर, पर्याय स्थविर, वय: स्थविर कहलाते हैं। उनकी सेवा करना।

(४) तपस्वी - उग्र तपाचरण करनेवाले साधु की सेवा करना।

(५) ग्लान - व्याधिग्रस्त, रोगी साधु की सेवा करना ।

(६) शैक्षक - नवदीक्षित होकर शिक्षा प्राप्त करने वाले मुनि की सेवा करना ।

(७) गण - भिन्न-भिन्न आचार्यों के शिष्य यदि परस्पर सहाध्यायी होने से समानवांचना वाले हो तो उनका समुदाय गण कहलाता है । उनकी सेवा करना ।

(८) कुल - एक ही दीक्षाचार्य (गुरु) का शिष्य-परिवार कुल है । उनकी सेवा करना ।

(९) संघ - धर्म का अनुयायी समुदाय संघ है । अर्थात् एक परम्परा की आराधना करने वाले व्यक्तियों का समुदाय संघ है । साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रुप चतुर्विध संघ की वैयावृत्य करना ।

(१०) साधर्मिक - ज्ञान, आचारादि गुणों में जो समान हो, वह साधर्मिक है । उनकी सेवा करना ।

९५३) स्वाध्याय तप किसे कहते हैं ?

उत्तर : अस्वाध्याय काल टालकर मर्यादापूर्वक शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन आदि करना स्वाध्याय तप है ।

९५४) स्वाध्याय तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पांच - (१) वांचना, (२) पृच्छना, (३) परावर्तना, (४) अनुप्रेक्षा, (५) धर्मकथा ।

९५५) वांचना किस कहते हैं ?

उत्तर : सूत्र-अर्थ पढना तथा शिष्य को पढाना वांचना है ।

९५६) पृच्छना किसे कहते हैं ?

उत्तर : वांचना ग्रहण करके उसमे शंका होने पर पुनः प्रश्न पूछकर शंका का समाधान करना पृच्छना है ।

९५७) परावर्तना किसे कहते हैं ?

उत्तर : पढे हुए की पुनरावृत्ति करना, परावर्तना है ।

९५८) अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर : धारण किये हुए अर्थ पर बार बार मनन करना, विचार करना अनुप्रेक्षा है।

१५९) धर्मकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त चारों प्रकार से शास्त्र का अभ्यास करने पर श्रोताओं को धर्मोपदेश देना धर्मकथा है।

१६०) धर्मकथा के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार - (१) आक्षेपणी, (२) विक्षेपणी, (३) संवेगनी, (४) निर्वेदनी।

१६१) आक्षेपणी धर्मकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर : संसार तथा विषयादि की ओर बढते हुए श्रोताओं के मोह को हटाकर धर्म में लगानेवाली कथा आक्षेपणी है।

१६२) विक्षेपणी धर्मकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर : श्रोता को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर लगाने वाली कथा विक्षेपणी है।

१६३) संवेगनी धर्मकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर : श्रोता के संसार की ओर बढे हुए राग को मोडकर धर्म की ओर लगाना, धर्म में प्रेम तथा रुचि जागृत करना, मोक्ष की अभिलाषा पैदा करना, संवेगनी धर्मकथा है।

१६४) निर्वेदनी धर्मकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर : इहलोक भय, परलोक भय, नरकादि के भयंकर त्रास आदि अनिष्ट परिणाम बताकर संसार से विरक्ति पैदा कराना, निर्वेदनी कथा है।

१६५) ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक लक्ष्य पर चित्त को एकाग्र करना ध्यान है।

चार प्रकार के ध्यान का विवेचन

१६६) ध्यान का वर्णन कौन-से आगम में हैं ?

उत्तर : भगवतीसूत्र शतक-२५, उद्देशक ७, स्थानांग सूत्र-स्थान ४, समवायांग सूत्र समवाय-४ तथा औपपातिक सूत्र में ध्यान का वर्णन है।

९६७) ध्यान के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) शुभ ध्यान, (२) अशुभ ध्यान

९६८) शुभ ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो ध्यान आत्मशुद्धि करने में सहायक बने, वह शुभ ध्यान है। इसके २ भेद हैं - (१) धर्मध्यान, (२) शुक्लध्यान। ये दोनों आभ्यंतर तप होने से इनका समावेश निर्जरा तत्त्व में किया गया है।

९६९) अशुभ ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो रौद्र परिणाम वाला हो, संसार वृद्धिकारक हो, वह अशुभ ध्यान है। इसके भी २ भेद हैं - (१) आर्त्तध्यान, (२) रौद्रध्यान। ये दोनों निर्जरा तत्त्व में सम्मिलित नहीं है।

९७०) आर्त्तध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : आर्त्त-दुःख के निमित्त से या भावी दुःख की आशंका से होने वाला ध्यान आर्त्तध्यान है।

९७१) आर्त्तध्यान के कितने लिंग (चिह्न) हैं ?

उत्तर : चार - (१) आक्रन्दन - उंचे स्वर से रोना, चिल्लाना, (२) शोचन - शोकग्रस्त होना, (३) परिवेदन - रोने के साथ मस्तक, छाती, सिर आदि पीटना तथा अनर्थकारी शब्दों का उच्चारण करना। (४) तेपन - टप टप आंसू गिराना।

९७२) आर्त्तध्यान के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार - (१) इष्ट वियोग - इष्ट जन का वियोग होने पर चिन्ता शोक आदि करना। (२) अनिष्ट संयोग - प्रतिकूल वस्तु अथवा व्यक्ति का संयोग होने पर चिन्ता, शोक आदि का होना। (३) रोगचिंता - शरीर में रोग उत्पन्न होने पर जो चिंता होती है। (४) निदान (अग्रशोच) - भविष्य में सुख प्राप्ति की चिंता करते हुए नियाणा करना।

९७३) आर्त्तध्यान में कौन-सा गुणस्थानक संभवित है ?

उत्तर : एक से छह गुणस्थानकों (अविरत - देशविरत तथा प्रमत्त संयत) में यह ध्यान पाया जाता है। प्रमत्त गुणस्थानक में निदान नामक चतुर्थ

भेद के सिवाय तीनों ही भेद संभवित है ।

९७४) आर्त्तध्यान में कौन से आयुष्य का बंध होता है ?

उत्तर : तिर्यंचायुष्य का ।

९७५) रौद्र ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : क्रोध की परिणति या क्रूरता के भाव जिसमें रहे हो, दूसरों को मारने, पीटने, ठगने एवं दुःखी करने की भावना जिसमें हो, वह रौद्र ध्यान है ।

९७६) रौद्र ध्यान के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार - (१) हिंसानुबन्धी - प्राणियों की हिंसा का विचार करना । (२) मृषानुबंधी - झूठ बोलने का चिन्तन करना । (३) स्तेयानुबंधी - चोरी करने का चिन्तन करना । (४) संरक्षणानुबंधी - धनादि परिग्रह के रक्षण के लिये चिंता करना ।

९७७) रौद्र ध्यान के कितने लक्षण हैं ?

उत्तर : चार । (१) ओसन्न दोष - हिंसा आदि दोषों में से किसी एक दोष में अधिक प्रवृत्ति करना । (२) बाहुल्य दोष - हिंसा आदि अनेक दोषों में प्रवृत्ति करना । (३) अज्ञानदोष - अज्ञान से अधर्म स्वरुप हिंसा में धर्मबुद्धि से प्रवृत्ति करना । (४) आमरणान्त दोष - मरणपर्यंत हिंसादि क्रूर कार्यों में प्रवृत्ति करना ।

९७८) रौद्र ध्यान किस गुणस्थानक में होता है ?

उत्तर : प्रथम से पंचम गुणस्थानक पर्यन्त ।

९७९) रौद्र ध्यान में यदि आयुबंध हो तो कौनसा आयुष्य बंध होता है ?

उत्तर : रौद्र परिणाम होने से नरकायुष्य का बंध होता है ।

९८०) धर्मध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : धर्म-जिनेश्वर परमात्मा की आज्ञा तथा पदार्थ के स्वरुप के पर्यालोचन में मन को एकाग्र करना धर्मध्यान है ।

९८१) धर्मध्यान के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार - (१) आज्ञाविचय - वीतराग की आज्ञा को सत्य मानकर उस

पर पूर्ण श्रद्धा रखना। (२) अपायविचय - राग-द्वेष संसार में अपाय-कष्टभूत है, ऐसा विचार करना। (३) विपाक विचय - सुख दुःख पूर्व कर्म का विपाक है, इस पर कर्म विषयक चिंतन करना। (४) संस्थान विचय - षड् द्रव्यात्मक लोक के स्वरुप का चिंतन करना।

१८२) धर्मध्यान के कितने लिंग, लक्षण हैं ?

उत्तर : चार - (१) आज्ञारुचि - आज्ञा-पालन में रुचि रखना। (२) निसर्गरुचि - बिना उपदेश के ही स्वभाव से जिन भाषित तत्त्व पर श्रद्धा होना। (३) उपदेशरुचि - उपदेश श्रवण से धर्म में रुचि हो। (४) सूत्ररुचि - शास्त्र पढने से धर्म में रुचि होना।

१८३) धर्मध्यान के आलंबन कितने हैं ?

उत्तर : चार - (१) वांचना - शास्त्र पढना - पढाना। (२) पृच्छना - पढे हुए ज्ञान की पुनः पुनः आवृत्ति करना। (३) परावर्तना - पढते हुए उत्पन्न शंका का समाधान करना। (४) धर्मकथा - धर्मोपदेश देना।

१८४) धर्मध्यान की कितनी अनुप्रेक्षाएँ हैं ?

उत्तर : चार - (१) अनित्य भावना - समस्त पदार्थ अनित्य है, ऐसा चिन्तन। (२) अशरण भावना - धर्म के सिवाय कोई शरण रुप नहीं है, ऐसा चिन्तन (३) एकत्व भावना - जीव अकेला आया है, अकेला ही जायेगा, ऐसा चिन्तन। (४) संसार भावना - कर्मानुसार ही सब जीव इस संसार में परिभ्रमण करते हैं, ऐसा चिन्तन।

१८५) धर्म ध्यान के चारों भेद किस गुणस्थानक में होते हैं ?

उत्तर : सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थानक से बारहवें क्षीणमोह गुणस्थानक पर्यंत धर्मध्यान के चारों भेद होते हैं।

१८६) धर्मध्यान में किस आयुष्य का बंध होता है ?

उत्तर : धर्मध्यान में यदि जीव आयुष्य बांधे तो देवायुष्य का ही बंध होता है।

१८७) शुक्ल ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : पूर्व विषयक श्रुत के आधार पर घाती कर्मों को नष्ट कर आत्मा को

विशेष रुप से शुक्ल-स्वच्छ-धवल-निर्मल करने वाला ध्यान अथवा मन की अत्यंत स्थिरता और योग का निरोध करने वाला परम ध्यान शुक्लध्यान कहलाता है ।

९८८) शुक्लध्यान के लक्षण कौन कौन-से हैं ?

उत्तर : शुक्लध्यान के ४ लक्षण निम्न हैं - (१) अव्यथ - देवादि के उपसर्ग से चलित नहीं होना । (२) असंमोह - देवादि कृत छलना या गहन विषयों में सम्मोह नहीं होना । (३) विवेक - आत्मा को देह तथा समस्त सांसारिक संयोगों से भिन्न मानना । (४) व्युत्सर्ग - निःसंगता से देह और उपधि का त्याग करना ।

९८९) शुक्ल ध्यान के आलंबन कितने व कौन-से हैं ?

उत्तर : चार - (१) क्षमा, (२) मुक्ति, (३) ऋजुता, (४) मृदुता ।

९९०) शुक्लध्यान की अनुप्रेक्षाएँ कौन कौन सी है ?

उत्तर : (१) अनंतवर्तितानुप्रेक्षा - संसार में अनंत बार परिभ्रमण किया है, ऐसा चिंतन करना ।

(२) विपरिणामानुप्रेक्षा - संसार की प्रत्येक वस्तु परिणमनशील है, ऐसा चिंतन करना ।

(३) अशुभानुप्रेक्षा - कर्म तथा संसार के अशुभ स्वरुप पर विचार करना ।

(४) अपायानुप्रेक्षा - आश्रवों एवं कषायों से जीव को होने वाले दुःख तथा संसार वृद्धि के कारणों का चिंतन करना ।

९९१) शुक्लध्यान के भेद कौन कौन-से हैं ?

उत्तर : चार है - (१) पृथकत्व वितर्क सविचार, (२) एकत्व वितर्क अविचार, (३) सूक्ष्मक्रिया अनिवृत्ति, (४) व्युपरत क्रिया अनिवृत्ति ।

९९२) पृथकत्व वितर्क सविचार शुक्ल ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : पृथकत्व -'भिन्न भिन्न, वितर्क - श्रुतज्ञान, विचार-अर्थ, व्यंजन तथा योग, इन तीनों का परिवर्तन । संक्रमण अर्थात् एक योग से दूसरे योग में, एक अर्थ से दूसरे अर्थ में, एक शब्द से दूसरे शब्द में, अर्थ से शब्द पर, शब्द से अर्थ पर, चिन्तन या विचार-संचार करना ।

जब कोई ध्यान करनेवाला पूर्वधर अपने पूर्वगत श्रुताधार से अथवा पूर्वधर न हो तो यथा संभवित श्रुतज्ञान के आधार से किसी एक द्रव्य के अर्थ से दूसरे द्रव्य के अर्थ पर अथवा एक पर्याय के अर्थ से अन्य पर्याय के अर्थ पर विचार करने के लिये प्रवर्त्तमान हो या एक योग को छोडकर अन्य योग में प्रवर्त्तमान हो, उसको पृथक्त्व वितर्क सविचार शुक्ल ध्यान कहते हैं ।

९९३) एकत्व वितर्क अविचार शुक्लध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त व्याख्या के विपरीत जब कोई ध्यान करने वाला अपने में संभवित श्रुत के आधार पर वायु रहित स्थान में स्थित निश्चल लौ वाले दीपवत् एक ही द्रव्यादि पर चिंतन करता है तथा मन आदि तीनों योगों में से किसी एक योग पर ही अटल रहता है, शब्द, अर्थ के चिन्तन एवं भिन्न-भिन्न योगों में संचार नहीं करता, तब उसका वह ध्यान एकत्व वितर्क अविचार शुक्लध्यान कहलाता है ।

९९४) सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जब केवलज्ञानी भगवंत तेरहवें गुणस्थानक के अंत में मन-वचन का निरोध करने के बाद काययोग को रोकते हैं, उस समय सूक्ष्म काययोगी केवली को सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति शुक्ल ध्यान होता है । अर्थात् सूक्ष्म (काय) योग प्रवृत्ति रुप क्रिया योग निरोध होने पर विनष्ट होने वाली होने से प्रतिपाति है । इसलिये यह सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति शुक्ल ध्यान कहलाता है । (इसमें सूक्ष्म काययोग रुप क्रिया होती है ।)

९९५) व्युपरत क्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यान किसे कहते हैं । ?

उत्तर : शैलेशी अवस्था में १४ वे अयोगी गुणस्थान में केवली को श्वासोच्छ्वास रुप सूक्ष्म काययोग क्रिया का भी विनाश होने से अक्रियपना उत्पन्न होता है, जो सदा काल रहने वाला है, इसलिये यह व्युपरत क्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यान कहलाता है । इस के प्रभाव से शेष सब कर्म क्षीण हो जाने से मोक्ष हो जाता है । यह स्थिति एक बार प्राप्त होने पर फिर कभी नहीं जाती ।

९९६) शुक्लध्यान के चारों भेद कौन-से गुणस्थानक में होते हैं ?

उत्तर : शुक्लध्यान का प्रथम भेद ८ से ११ तक, चार गुणस्थान में होता है। दूसरा भेद १२ वें गुणस्थान में होता है। तीसरा भेद १३ वें गुणस्थानक के अंत में तथा चौथा भेद १४ वें गुणस्थानक में विद्यमान जीवों को होता है।

९९७) शुक्लध्यान के चारों भेद किस जीव में पाये जाते हैं ?

उत्तर : प्रथम दो भेद छद्मस्थ में तथा अन्तिम दो भेद केवली में होते हैं।

९९८) सयोगी व अयोगी केवली को कौन कौन-से ध्यान होते हैं ?

उत्तर : प्रथम तीन भेद सयोगी को व अंतिम एक भेद अयोगी केवली को होता है।

९९९) इन चारों भेदों का काल कितना ?

उत्तर : अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण।

१०००) छाद्मस्थिक ध्यान तथा कैवलिक ध्यान से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : छाद्मस्थिक ध्यान योग की एकाग्रता रुप है तथा कैवलिक ध्यान योग-निरोध रुप है।

१००१) शुक्लध्यान के चारों भेदों में कौन कौन से योग संभवित हैं ?

उत्तर : शुक्लध्यान के प्रथम भेद में तीनों योग पाये जाते हैं। द्वितीय भेद में मन, वचन, काया, इन तीनों योगों में से कोई एक योग ही संभवित है। तृतीय भेद में केवल काययोग ही होता है। ११ चोथे भेद में अयोगी अवस्था होती है।

१००२) जीव क्षपकश्रेणी किस ध्यान से प्राप्त करते हैं ?

उत्तर : जीव क्षपकश्रेणी दो ध्यान से प्राप्त करते हैं - (१) धर्मध्यान से (२) शुक्लध्यान से।

१००३) शुक्लध्यान से कौन सी गति प्राप्त होती है ?

उत्तर : शुक्लध्यान से पंचम सिद्धगति अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है।

१००४) कायोत्सर्ग तप किसे कहते हैं ?

उत्तर : काया के व्यापार का त्याग करना कायोत्सर्ग तप है। इसका अपर नाम

व्युत्सर्ग भी है।

१००५) कायोत्सर्ग तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) द्रव्य कायोत्सर्ग, (२) भाव कायोत्सर्ग।

१००६) द्रव्य कायोत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर : आत्मा से भिन्न सभी द्रव्यों का त्याग करना, द्रव्य कायोत्सर्ग कहलाता है।

१००७) द्रव्य व्युत्सर्ग के कितने भेद हैं ?

उत्तर : (१) शरीर, (२) गण, (३) उपधि, (४) भक्तपान।

१००८) शरीर व्युत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर : शरीर की ममता तथा ममतावर्द्धक साधनों का त्याग करना, शरीर व्युत्सर्ग है।

१००९) गण व्युत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर : अपने गण (गच्छ) का त्याग कर जिनकल्प स्वीकार करना, गण व्युत्सर्ग है।

१०१०) उपधि व्युत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपकरण, आवश्यक साधनों व आवश्यकताओं को सीमित करना, उपधि व्युत्सर्ग है।

१०११) भक्तपान व्युत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर : आहार-पानी तथा उसकी आसक्ति का त्याग करना, भक्तपान व्युत्सर्ग है।

१०१२) भाव व्युत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर : कषाय, संसार तथा कर्म का त्याग करना, भाव व्युत्सर्ग है।

१०१३) निर्जरा तत्त्व को जानने का उद्देश्य लिखो।

उत्तर : अनादिकाल के संचित कर्मों को जलाकर भस्मीभूत करने वाला तप धर्म ही निर्जरा तत्त्व है। अतः निर्जरा तत्त्व आत्मा का स्वरूप है, आत्मधर्म के सन्मुख हुई आत्मा उपवासादि तप धर्म धारण कर षट्रस के रसास्वादन का त्याग कर बाह्य तप तथा विनयादिक छः आभ्यंतर तप कर, इन दोनों प्रकार के तपों से उपादेय स्वरूप अन्ततः मोक्ष तत्त्व

को प्राप्त करे। यही इस निर्जरा तत्त्व का उद्देश्य है।

बंध तत्त्व का विवेचन

१०१४) बंध किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्म पुद्गलों तथा आत्मा का परस्पर नीर-क्षीरवत् सम्बन्ध बन्ध कहलाता है अथवा शुभाशुभ योगों तथा कषाय आदि परिणामों द्वारा कर्मवर्गणाओं का आत्मप्रदेशों से दूध-शक्कर के समान एकमेक हो जाना, बन्ध है।

१०१५) बंध के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार - (१) प्रकृतिबंध, (२) स्थितिबंध, (३) रसबंध (अनुभाग बंध), (४) प्रदेशबंध।

१०१६) प्रकृतिबंध किसे कहते हैं ?

उत्तर : प्रकृति अर्थात् स्वभाव। जीव द्वारा ग्रहण किये गए कर्मपुद्गलों में अच्छे-बुरे विभिन्न स्वभावों का उत्पन्न होना, प्रकृतिबंध है।

१०१७) स्थितिबंध किसे कहतेहैं ?

उत्तर : स्थिति - कालावधि। आत्मप्रदेशों पर आये हुए कर्मों की वहाँ रहने की कालावधि स्थिति बंध है अथवा जीव द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलों का अपने स्वभाव को न छोडते हुए अमुक काल तक जीव के साथ लगे रहने की कालमर्यादा स्थिति बंध है।

१०१८) अनुभाग (रस) बंध किसे कहते हैं ?

उत्तर : जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्मपुद्गलों में फल देने की न्यूनाधिक शक्ति को अनुभाग बन्ध कहते हैं।

१०१९) प्रदेशबंध किसे कहते हैं ?

उत्तर : जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणुवाले कर्म-स्कंधों का सम्बन्ध होना प्रदेश बंध है।

१०२०) आठ कर्मों का बन्ध कितने प्रकार से होता है ?

उत्तर : चारों प्रकार से।

१०२१) बंध के चारों भेदों को मोदक के रुपक से स्पष्ट करो।

उत्तर : **(१) प्रकृतिबंध** - सौंठ, पीपल, कालीमिर्च से बनाया हुआ लड्डू वायुनाशक होता है। जीरे आदि का मोदक पित्त नाशक होता है तथा कफापहारी मोदक कफ का शमन करता है, उसी प्रकार कोई कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को आवृत्त करना है तो कोई दर्शन गुण को। कोई आत्मा के ज्ञान गुण का तो कोई अनंत शक्ति का घात करता है। इसप्रकार बंधकाल में भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रकृतियों का स्वभाव नियत होना प्रकृतिबंध है।

(२) स्थितिबंध - कोई मोदक एक सप्ताह, कोई एक पक्ष तो कोई एक मास तक विकृत नहीं होता। उसके बाद खराब होता है। ठीक उसी प्रकार कोई कर्म ७० कोडाकोडी सागरोपम तो कोई २० कोडाकोडी सागरोपम तक जीव के साथ स्व-स्वरुप में कायम रहता है। उसके बाद फल प्रदान कर उस कर्म का नाश होता है। इस काल मर्यादा को स्थितिबंध कहते है।

(३) अनुभाग बंध - जैसे कोई लड्डू अधिक या कम मीठा होता है, या अल्पाधिक कडवा होता है, वैसे ही कोई कर्मपुद्गलों में शुभ रस अधिक या कम होता है अथवा अशुभ रस हीनाधिक होता है। कर्मबंध के समय शुभाशुभ तथा तीव्र-मंद रस का जो बंध होता है, वह अनुभाग (रस) बन्ध है।

(४) प्रदेशबंध - जैसे कोई लड्डू ५० ग्राम तो कोई १०० ग्राम का अथवा इससे भी अधिक होता है, उसी प्रकार बन्ध के समय किसी कर्म के बहुत अधिक तो किसी के अल्प प्रदेशों का बन्ध होता है।

१०२२) आठों कर्मों का प्रदेश बन्ध समान है या असमान ?

उत्तर : असमान। आयु के सबसे अल्प प्रदेशों का बंध होता है। नाम-गोत्र के उससे विशेष किन्तु परस्पर तुल्य, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय के उससे विशेष किन्तु परस्पर तुल्य, मोहनीय के उससे विशेष तथा वेदनीय के सबसे विशेष प्रदेशों का बन्ध होता है।

१०२३) बन्ध के हेतु (कारण) क्या है ?

उत्तर : प्रकृति तथा प्रदेश बन्ध का हेतु केवल योग है। स्थितिबंध तथा रसबंध का हेतु कषाय है। मिथ्यात्व तथा अविरति, कषाय के अंतर्गत ही आते हैं।

१०२४) जीव कितने परमाणुओं के स्कंध ग्रहण करता है ?

उत्तर : संख्यात-असंख्यात अथवा अनंत परमाणुओं से बने हुए स्कंध को नहीं बल्कि अनंतानन्त परमाणुओं से बने हुए स्कंध को जीव ग्रहण करता है।

१०२५) इस लोक में जीव के ग्रहण योग्य कितनी वर्गणाएँ हैं ?

उत्तर : आठ - (१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस, (५) श्वासोच्छ्वास, (६) भाषा, (७) मन, (८) कार्मण।

१०२६) वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक समान संख्यावाले परमाणुओं के बने हुए अनेक स्कंध वर्गणा कहलाते हैं।

१०२७) जीव एक समय में कितनी वर्गणा ग्रहण करता है ?

उत्तर : अनन्त वर्गणाओं के बने हुए अनन्त स्कंधों को जीव एक समय में ग्रहण करता है।

१०२८) औदारिक वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : औदारिक शरीर रुप में परिणमित होनेवाले पुद्गल समूह को औदारिक वर्गणा करते हैं।

१०२९) वैक्रिय वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : वैक्रिय शरीर रुप बननेवाला पुद्गल समूह वैक्रिय वर्गणा है।

१०३०) आहारक वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो पुद्गल आहारक शरीर रुप में परिणमे, उसे आहारक वर्गणा कहते हैं।

१०३१) तैजस वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : औदारिक तथा वैक्रिय शरीर को कांति देनेवाला और आहार पचानेवाला पुद्गल समूह तैजस वर्गणा कहलाती है।

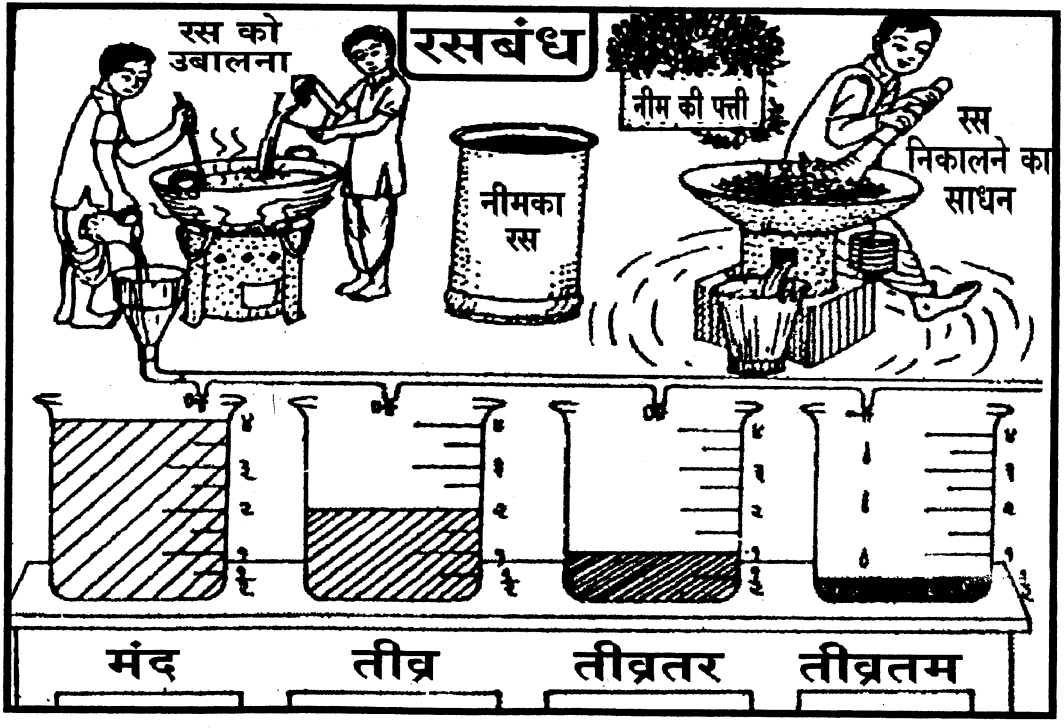

चित्र : रस बंध के चार प्रकार

१०३२) भाषा वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो वर्गणा शब्दरुप में परिणमित हो, उसे भाषा वर्गणा कहते हैं ।

१०३३) श्वासोच्छ्वास, मन तथा कार्मणवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो पुद्गल समूह श्वासोच्छ्वास, मन तथा कर्मरुप में परिणमित होते हैं, उन्हें श्वासोच्छ्वास, मन तथा कार्मण वर्गणा कहते हैं ।

१०३४) इन आठों वर्गणाओं में कितने स्पर्श हैं ?

उत्तर : पहली चार वर्गणाओं में आठों ही स्पर्श होते है तथा ये दृष्टिगोचर होती है, इसलिये बादर परिणामी है। अन्तिम ४ वर्गणाएँ शीत-ऊष्ण-स्निग्ध-रुक्ष, ये चार स्पर्शयुक्त ही है ।

१०३५) इन आठों वर्गणाओं के प्रदेश समान है या असमान ?

उत्तर : ये आठों ही वर्गणाएँ अनुक्रम से अधिक-अधिक सूक्ष्म है तथा अनन्त अनन्त प्रदेशों में अधिक है परन्तु क्षेत्र अवगाहन (एक एक स्कन्ध के रहने का स्थान) अनुक्रम से अल्प अल्प है। जैसे औदारिक का एक स्कन्ध जितने क्षेत्र में समाता है, उसमें से असंख्यातवें भाग जितने (न्यून) क्षेत्र में वैक्रिय वर्गणा का एक स्कन्ध अवगाहन करता है ।

१०३६) रसबन्ध के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार - (१) एक स्थानिक, (२) द्विस्थानिक, (३) त्रिस्थानिक, (४) चतुःस्थानिक ।

१०३७) एकस्थानिक रसबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : गन्ने या नीम के स्वाभाविक रस के समान कर्म का एक स्थानिक रसबन्ध होता है । उसमें फल देने की शक्ति कम होती है ।

१०३८) द्विस्थानिक रसबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : गन्ने या नीम के रस को उबालकर आधा जलाने पर आधा शेष रहता है, उसके समान द्विस्थानिक रसबन्ध होता है। पहले से इसमें ज्यादा फल देने की शक्ति होती है ।

१०३९) त्रिस्थानिक रसबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : गन्ने या नीम के रस को उबालकर २/३ भाग जलाने पर १/३ भाग

शेष रहता है। उसके समान त्रिस्थानिक रसबन्ध होता है। इसमें फल देने की शक्ति दूसरे से ज्यादा होती है।

१०४०) चतु:स्थानिक रसबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : गन्ने या नीम के रस को ३/४ जलाने पर १/४ भाग शेष रहता है। उसके समान चतु:स्थानिक रसबन्ध होता है। उसमें सबसे ज्यादा फल देने की शक्ति होती है।

१०४१) शुभ प्रकृतिओं का रस किसके समान होता है ?

उत्तर : शुभ प्रकृतिओं का रस गन्ने के समान मधुर होने से जीव को आह्लादकारी होता है।

१०४२) अशुभ प्रकृतिओं का रस किसके समान होता है ?

उत्तर : अशुभ प्रकृतिओं का रस नीम के समान कडवा होता है, जो जीव को पीडाकारी होता है।

१०४३) शुभ (पुण्य) प्रकृति का मंद रस कैसे बंधता है ?

उत्तर : संक्लेश के द्वारा।

१०४४) संक्लेश किसे कहते हैं ?

उत्तर : अनुकूल पदार्थों में राग तथा प्रतिकूल पदार्थों में द्वेष के परिणाम स्वरुप जिस तीव्र कषाय का उदय होता है, उसे संक्लेश कहते हैं।

१०४५) शुभ (पुण्य) प्रकृति में तीव्र रस कैसे बंधता है ?

उत्तर : परिणाम की विशुद्धि के द्वारा।

१०४६) पाप प्रकृति का मंद तथा तीव्र रस कैसे बंधता है ?

उत्तर : पाप प्रकृति का मंद रस विशुद्धि के द्वारा तथा तीव्र रस संक्लेश द्वारा बंधता है। इसे इस प्रकार समझ सकते हैं –

पुण्यप्रकृतिका	मंदरस	संक्लेश से	पाप प्रकृतिका	मंदरस	विशुद्धिसे
पुण्यप्रकृतिका	तीव्ररस	विशुद्धि से	पाप प्रकृतिका	तीव्ररस	संक्लेशसे

१०४७) चारों कषाय द्वारा पुण्य तथा पाप प्रकृतिओं का कौन-कौन सा रसबन्ध होता है ?

उत्तर :

किस कषाय द्वारा	पुण्य प्रकृति का	पाप प्रकृति का
१) अनन्तानुबन्धी द्वारा	द्विस्थानिक रसबन्ध	चतुःस्थानिक रसबन्ध
२) अप्रत्याख्यानीय द्वारा	त्रिस्थानिक रसबन्ध	त्रिस्थानिक रसबन्ध
३) प्रत्याख्यानीय द्वारा	चतुः स्थानिक रसबन्ध	द्विस्थानिक रसबन्ध
४) संज्वलन द्वारा	चतुः स्थानिक रसबन्ध	एक स्थानिक रसबन्ध

शुभ प्रकृति का एकस्थानिक रसबन्ध होता ही नहीं है, अशुभ में भी मति आदि ४ ज्ञानावरणीय, ३ दर्शनावरणीय, संज्वलनचतुष्क, पुरुषवेद ५ अंतराय, इन १७ प्रकृतियों का एकस्थानिक रसबन्ध ९वें गुणस्थान में होता है। शेष अशुभ प्रकृतियों का रसबन्ध जघन्य से द्विस्थानिक होता है।

१०४८) जीव (आत्मा) अमूर्त्त है तथा कर्म मूर्त्त है। फिर इन दो विरोधी तत्त्वों का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ?

उत्तर : अमूर्त्त आत्मा के साथ मूर्त्त कर्म का बन्ध असंभव है परंतु संसारी आत्मा कार्मण शरीर के सम्बन्ध से मूर्त्तवत् होती है। वह कार्मण शरीर प्रवाह रुप से अनादि सम्बन्धवाला है। उस कार्मण शरीर की विद्यमानता में ही आत्मा से कर्म पुद्गल चिपकते हैं। जब कार्मण शरीर का नाश हो जाता है, तब आत्मा अमूर्त्त हो जाती है। उस आत्मा से कर्म का सम्बन्ध नहीं होता।

१०४९) जीव तथा कर्म का सम्बन्ध कब से है ?

उत्तर : जीव व कर्म का अनादि काल से सम्बन्ध है। प्रत्येक समय पुराने कर्म अपना फल देकर आत्मा से अलग होते रहते हैं और नवीन कर्म प्रतिसमय बंधते रहते हैं।

१०५०) आत्मा में कर्म किस तरह आकर चिपकते हैं ?

उत्तर : शरीर पर तेल लगाकर कोई धूल में बैठ जाय तब धूल जैसे उसके शरीर पर चिपक जाती है, ठीक उसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग से जीव के प्रदेशों में एक प्रकार का परिस्पंदन (हलचल) होता है, तब जिस आकाश प्रदेश में आत्मा के प्रदेश है,

वहीं के अनन्तानन्त कर्म योग्य पुद्गल जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ बंध (चिपक) जाते हैं।

१०५१) वे आपस में किस तरह मिलते हैं ?

उत्तर : जीव तथा कर्म नीरक्षीरवत्; लोहपिण्डाग्निवत् एकमेक हो जाते हैं।

१०५२) आत्मा का कर्म के साथ सम्बन्ध अनादि है, तब उसका अन्त कैसे संभव है ?

उत्तर : अनादि का अन्त नहीं होता, यह सामुदायिक नियम है, जो जाति से सम्बन्ध रखता है। व्यक्ति विशेष पर यह नियम लागू नहीं भी होता। स्वर्ण-मिट्टी का, घृत-दूधका सम्बन्ध अनादि है, तथापि वे पृथक-पृथक होते हैं। वैसे ही आत्मा और कर्म के अनादि सम्बन्ध का अन्त होता है। यह ज्ञातव्य है कि व्यक्ति रूप से कोई भी कर्म अनादि नहीं है। किसी एक कर्म विशेष का अनादिकाल से आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं है। पूर्वबद्ध कर्म स्थिति पूर्ण होने पर आत्मा से पृथक् होकर निर्जरित हो जाते हैं व नवीन कर्म का बन्धन होता रहता है। इस प्रकार प्रवाह रूप से आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध अनादिकाल से है, न कि व्यक्तिशः।

१०५३) आत्मा और कर्म, इन दोनों में अधिक शक्ति सम्पन्न कौन ?

उत्तर : आत्मा भी बलवान् है और कर्म भी बलवान् है। आत्मा में अनन्त शक्ति है और कर्म में भी अनन्त शक्ति है। कभी जीव, काल आदि लब्धियों की अनुकूलता होने पर कर्मों को पछाड देता है तो कभी कर्मों की बहुलता होने पर जीव उनसे दब जाता है। बहिर्दृष्टि से कर्म बलवान् प्रतीत होते हैं, पर अन्तर्दृष्टि से आत्मा बलवान् है। क्योंकि कर्म का कर्ता आत्मा है। यह मकडी की तरह कर्मों का जाल बिछाकर स्वयं उसमें उलझता है। कर्म चाहे जितने शक्तिशाली हो पर जैसे मुलायम पानी कठोर पत्थर के टुकडे-टुकडे कर देता है, चट्टानों को भी चूर-चूर कर देता है, वैसे ही आत्मा भी तप-जप-साधना के प्रचंड पराक्रम द्वारा कर्मों को नष्ट कर मोक्ष को प्राप्त करता है।

१०५४) कर्म जड है, फिर उनमें सुखदुःख रुप फल देने की शक्ति कैसे संभव है ?

उत्तर : कर्मपुद्‌गल यद्यपि यह नही जानते कि यह काम अमुक आत्मा ने किया है, तो उसे यह फल दिया जाय परन्तु आत्मक्रिया द्वारा जो शुभाशुभ पुद्‌गल आकृष्ट होते हैं, उनके संयोग से आत्मा की वैसी ही परिणति हो जाती है, जिससे आत्मा को उसके अनुसार फल मिले। शराब को नशा कराने की तथा विष को मारने की ताकत का कब अनुभव होता है। तथापि जड शराब पीने से नशा होता है व विष खाने से मृत्यु। पथ्य भोजन आरोग्य देना नहीं जानता, न दवा रोग मिटाना जानती है। फिर भी पथ्य भोजन से स्वास्थ्य लाभ तथा औषधि सेवन से रोग मिटता ही है। बाह्य रुप से ग्रहण किये गये पुद्‌गलों का जब इतना असर होता है, तो आन्तरिक प्रवृत्ति से गृहित कर्मपुद्‌गलों का आत्मा पर असर होने में सन्देह कैसा ? उचित साधनों के सहयोग से विष और औषधि की शक्ति में परिवर्त्तन किया जा सकता है, वैसे ही तप-जपादि के द्वारा कर्म की फल देने की शक्ति में भी परिवर्तन संभव है। अधिक स्थिति एवं तीव्र फल देनेवाले कर्म में भी उनकी स्थिति और फल देने की शक्ति में अपवर्तना के द्वारा न्यूनता की जा सकती है।

१०५५) आत्मा के प्रदेश कितने है एवं शरीर में वे कहाँ हैं ?

उत्तर : आत्मा के असंख्यात प्रदेश हैं। वें सारे शरीर में व्याप्त हैं।

१०५६) कर्म से आत्मा को क्या हानि है ?

उत्तर : कर्मों से आत्मशक्ति बंदी बनकर रह जाती है। उसका परमात्म स्वरुप प्रकट नहीं हो पाता है।

कर्म तत्त्व की प्रकृतियों का विवेचन

१०५७) कर्म की प्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उत्तर : दो - मूलप्रकृति तथा उत्तरप्रकृति।

१०५८) मूल प्रकृति किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्मों के मुख्य भेदों को मूल प्रकृति कहते हैं।

घातीकर्म १ से ४

आँख पर पट्टी जैसा

ज्ञानावरणीय कर्म

राजा के द्वारपाल जैसा

दर्शनावरणीय कर्म

मदिरा जैसा

मोहनीय कर्म

राजा के भंडारी जैसा

अंतराय कर्म

अघाती कर्म ५ से ८

शहद लिपटी असिधारा जैसा

वेदनीय कर्म

बेडी जैसा

आयुष्य कर्म

चित्रकार जैसा

नाम कर्म

कुम्हार के घडे जैसा

गोत्र कर्म

१०५९) उत्तर प्रकृति किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्मों के अवान्तर भेदों को उत्तरप्रकृति कहते हैं ।

१०६०) कर्म की मूल प्रकृतियाँ कितनी व कौन कौन-सी है ?

उत्तर : आठ - (१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयुष्य, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अंतराय (इनका विवेचन पापतत्त्व में देखें ।)

१०६१) कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उत्तर : कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ १५८ है ।

१०६२) सर्वघाती कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो जीव के स्वाभाविक गुणों का सम्पूर्णरूप से घात करे, उसे सर्वघाती कर्म कहते हैं ।

१०६३) देशघाती कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो जीव के स्वाभाविक गुणों का देशतः घात करे, उसे देशघाती कर्म कहते हैं ।

१०६४) सर्वघाती कर्मप्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उत्तर : इक्कीस - (१) केवलज्ञानावरणीय, (२) केवलदर्शनावरणीय, (३-७) पांच निद्रा, (८-११) अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया लोभ, (१२-१५) अप्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया, लोभ, (१६-१९) प्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व मोहनीय, (२१) मिश्र मोहनीय ।

१०६५) देशघाती कर्मप्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उत्तर : छब्बीस - (१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्यव ज्ञानावरणीय, (५) चक्षुदर्शनावरणीय, (६) अचक्षु दर्शनावरणीय, (७) अवधि दर्शनावरणीय, (८-११) संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, (१२-२०) नौ नो-कषाय, (२१) सम्यक्त्व मोहनीय, (२२-२६) पांच अंतराय ।

१०६६) जीव विपाकी कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म का फल शरीरादि में न होकर जीव को प्राप्त हो, उसे जीव

विपाकी कर्म कहते हैं ।

१०६७) जीव विपाकी कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?

उत्तर : अठहत्तर - (१-५) ज्ञानावरणीय की पांच, (६-१४) दर्शनावरणीय की नौ, (१५-४२) मोहनीय की अठ्ठाईस, (४३-४७) अंतराय की पांच, (४८-४९) गोत्र की दो, (५०-५१) वेदनीय - दो, (५२) तीर्थंकर नामकर्म, (५३) उच्छ्वास नामकर्म, (५४) बादर, (५५) सूक्ष्म, (५६) पर्याप्त, (५७) अपर्याप्त, (५८) सुस्वर, (५९) दुःस्वर, (६०) आदेय, (६१) अनादेय, (६२) यश, (६३) अपयश, (६४) त्रस, (६५) स्थावर, (६६) शुभ विहायोगति, (६७) अशुभ विहायोगति, (६८) सुभग, (६९) दुर्भग, (७०-७३) चार गति, (७४-७८) पांच जाति ।

१०६८) पुद्गल विपाकी कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसका फल पुद्गल द्वारा जीव को प्राप्त हो, उसे पुद्गल विपाकी कर्म कहते हैं ।

१०६९) पुद्गल विपाकी कर्म प्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उत्तर : पुद्गल विपाकी कर्म की ७२ प्रकृतियाँ हैं – समस्त १५८ प्रकृतियों में से जीव विपाकी ७८, आनुपूर्वी - ४, आयुष्य-४, ये ८६ प्रकृतियाँ घटाने पर १५८-८६ = ७२ बाकी रही प्रकृतियाँ पुद्गल विपाकी है ।

१०७०) भवविपाकी कर्मप्रकृति किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव प्राप्त भव में रुके अर्थात् जो प्रकृति अपना फल नरकादि भव में बतावें उसे भवविपाकी कर्मप्रकृति कहते हैं । इसके ४ भेद हैं - (१) नरकायु, (२) तिर्यंचायु, (३) मनुष्यायु, (४) देवायु ।

१०७१) क्षेत्र विपाकी कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव मरण स्थान से उत्पत्ति स्थान पर पहुँचे, उसे क्षेत्रविपाकी कर्म कहते हैं ।

१०७२) क्षेत्र विपाकी कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार - (१) नरकानुपूर्वी, (२) तिर्यंचानुपूर्वी, (३) मनुष्यानुपूर्वी, (४)

देवानुपूर्वी ।

१०७३) कर्म की विविध अवस्थाएँ कौनसी हैं ?

उत्तर : कर्म की विविध अवस्थाएँ १० प्रकार से हैं - (१) बंध, (२) सत्ता, (३) उदय, (४) उदीरणा, (५) उद्वर्तना, (६) अपवर्तना, (७) संक्रमण, (८) उपशमन, (९) निधत्ति, (१०) निकाचन, (११) अबाधा ।

१०७४) बंध किसे कहते हैं ?

उत्तर : आत्मा के साथ कर्म परमाणुओं का नीरक्षीरवत् एक हो जाना बंध है । (इसके चारों भेदों का वर्णन बंधतत्त्व के प्रारंभ में देखे ।)

१०७५) सत्ता किसे कहते हैं ?

उत्तर : बद्ध कर्म परमाणु अपनी निर्जरा अर्थात् क्षय पर्यन्त आत्मा से सम्बद्ध रहते हैं । इस अवस्था का नाम सत्ता है । इस अवस्था में कर्म अपना फल प्रदान न करते हुए विद्यमान रहते हैं ।

१०७६) उदय किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्म की फल प्रदान करने की अवस्था को उदय कहते हैं । उदय में आने वाले कर्म अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार फल देकर निर्जीण (नष्ट) हो जाय तो फलोदय (विपाकोदय) है तथा फल को दिये बिना ही नष्ट हो जाय तो प्रदेशोदय कहलाता है ।

१०७७) उदीरणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : नियत समय से पूर्व कर्म दलिकों को प्रयत्न विशेष से खींचकर उदय में लाना और भोगना उदीरणा है । जैसे समय से पूर्व ही प्रयत्न से आम आदि फल पकाये जाते हैं, वैसे ही साधना-तपादि के द्वारा आबद्ध कर्म को नियत समय से पूर्व भोगा जा सकता है । सामान्यतः जिस कर्म का उदय चालू है, उसके सजातीय कर्म की ही उदीरणा होती है ।

१०७८) उद्वर्तना किसे कहते हैं ?

उत्तर : आत्मा के साथ बद्ध कर्मों की स्थिति और अनुभाग का निश्चय बन्ध के साथ प्रवहमान कषाय की तीव्रता तथा मन्दता के अनुसार होता है । उसके पश्चात् की स्थिति-विशेष अथवा भाव-विशेष के कारण उस

स्थिति एवं रस में वृद्धि हो जाना, उद्वर्तना कहलाता है।

१०७९) अपवर्तना किसे कहते हैं ?

उत्तर : यह अवस्था उद्वर्तना से एकदम विपरीत है। बद्ध कर्मों की स्थिति तथा अनुभाग को कालान्तर में नूतन कर्मबन्ध करते समय न्यून कर देना अपवर्तना है।

१०८०) उद्वर्तना - अपवर्तना को विस्तृत रुप से स्पष्ट करो ?

उत्तर : उद्वर्तना तथा अपवर्तना, इन दोनों की उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि आबद्ध कर्म की स्थिति और इसका अनुभाग एकान्ततः नियत नहीं है। उसमें अध्यवसायों की प्रबलता से परिवर्तन भी हो सकता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्राणी अशुभ कर्म का बंध करके शुभ कार्य में प्रवृत्त हो जाता है। उसका प्रभाव पूर्वबद्ध अशुभ कर्मों पर पडता है, जिससे उस लम्बी काल मर्यादा और विपाक शक्ति में न्यूनता हो जाती है। पूर्वश्रेष्ठ कार्य करके पश्चात् निकृष्ट कार्य करने से पूर्वबन्ध पुण्य कर्म की स्थिति एवं अनुभाग में मन्दता आ जाती है। सारांश यह है कि संसार को घटाने-बढाने का आधार पूर्वकृत कर्म की अपेक्षा वर्तमान अध्यवसायों पर विशेष आद्धृत है।

१०८१) संक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक प्रकार के कर्म परमाणुओं की स्थिति आदि का दूसरे प्रकार के कर्म परमाणुओं की स्थिति आदि में परिवर्तित हो जाने की प्रक्रिया का नाम संक्रमण हैं। यह संक्रमण किसी एक मूलप्रकृति की उत्तर प्रकृतियों में ही होता है। विभिन्न मूल प्रकृतियों में नहीं। अर्थात् सजातीय प्रकृतियों में ही होता है, विजातीय में नहीं। इस सजातीय संक्रमण में भी कुछ अपवाद है, जैसे आयुकर्म की नरकायु आदि चारों प्रकृतियों का अन्य आयुओं में परस्पर संक्रमण नहीं होता और न दर्शन मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय में।

१०८२) उपशमन किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्म के विद्यमान रहते हुए भी उन्हें उदय में आने के लिये अक्षम बना देना उपशमन है। अर्थात् कर्म की वह अवस्था, जिसमें उदय अथवा

उदीरणा का अभाव है परन्तु उद्वर्त्तना, अपवर्त्तना तथा संक्रमण की संभावना हो, वह उपशमन है । जैसे अंगारे को राख से इसप्रकार आच्छादित कर देना, जिससे वह कार्य न कर सके । वैसे ही उपशमन क्रिया से कर्म को इसप्रकार दबा देना कि जिससे वह अपना फल नहीं दे सके । किन्तु जैसे आवरण हटते ही अंगारे जलाने लगते है, वैसे ही उपशम भाव से दूर होते ही उपशान्त कर्म उदय में आकर अपना फल देना प्रारंभ कर देते हैं ।

१०८३) निधत्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसमें कर्मों का उदय तथा संक्रमण न हो सके किन्तु उद्वर्तन-अपवर्तन की संभावना हो, उसे निधत्ति कहते हैं ।

१०८४) निकाचित किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसमें उद्वर्त्तना, अपवर्त्तना, संक्रमण तथा उदीरणा, इन चारों का अभाव हो, वह निकाचित है । अर्थात् आत्मा ने जिस कर्म का जिस रुप में बन्ध किया है, उसे उसी रुप में अनिवार्यतः भोगना ।

१०८५) अबाधाकाल किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्म बंधने के बाद अमुक समय तक किसी प्रकार का फल न देना, अबाधाकाल है । अबाधा अर्थात् बाधा (फल) उपस्थित न करना ।

१०८६) अबाधाकाल का परिमाण क्या है ?

उत्तर : प्रत्येक कर्म का भिन्न भिन्न अबाधाकाल होता है । एक कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति पर सौ वर्ष का अबाधा काल होता है । इसप्रकार जिस कर्म की जितनी स्थिति है, उसका उतने ही सौ वर्ष का अबाधाकाल होता है । जैसे ज्ञानावरणीय कर्म की स्थिति ३० कोडाकोडी सागरोपम की है, तो उसका अबाधाकाल (३००० वर्ष) तीस सौ वर्ष का है ।

१०८७) ज्ञानावरणीय कर्म की उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति कितनी है ?

उत्तर : उत्कृष्ट ३० कोडाकोडी सागरोपम तथा जघन्य एक अंतर्मुहूर्त्त ।

१०८८) ज्ञानावरणीय कर्म का उत्कृष्ट तथा जघन्य अबाधाकाल कितना है ?

उत्तर : उत्कृष्ट तीस सौ (तीन हजार) वर्ष, जघन्य अंतर्मुहूर्त्त ।

१०८९) ज्ञानावरणीय कर्म का कार्य क्या है ?

उत्तर : ज्ञानावरणीय कर्म आंख पर बंधी पट्टी के समान है। जिसप्रकार आंख के आगे पट्टी बांधने से देखने में रुकावट होती है, वैसे ही ज्ञानावरणीय कर्म जानने में रुकावट/बाधा डालता है ।

१०९०) ज्ञानावरणीय कर्मबन्ध के हेतु क्या हैं ?

उत्तर : (१) ज्ञान प्रत्यनीकता - ज्ञान या ज्ञानी से प्रतिकूलता रखना ।

(२) ज्ञान निह्नव - ज्ञान तथा ज्ञानदाता का अपलपन करना अर्थात् ज्ञानी को कहना कि ज्ञानी नहीं है ।

(३) ज्ञानान्तराय - ज्ञान की प्राप्ति में अन्तराय / विघ्न डालना ।

(४) ज्ञानप्रद्वेष - ज्ञान या ज्ञानी से द्वेष रखना ।

(५) ज्ञान आशातना - ज्ञान या ज्ञानी का तिरस्कार करना ।

(६) ज्ञान विसंवादन - ज्ञानी या ज्ञानी के वचनों में विरोध दिखाना ।

१०९१) ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट होने पर आत्मा में कौनसा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर : अनंतज्ञान ।

१०९२) दर्शनावरणीय कर्म का क्या स्वभाव है ?

उत्तर : दर्शनावरणीय कर्म प्रतिहारी के समान है। जैसे प्रतिहारी (द्वारपाल) राजा के दर्शन में रुकावट डालता है, वैसे ही दर्शनावरणीय कर्म देखने में बाधा डालता है ।

१०९३) दर्शनावरणीय कर्म की उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति कितनी ?

उत्तर : दर्शनावरणीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ३० कोडाकोडी सागरोपम तथा जघन्य स्थिति एक अंतर्मुहूर्त्त है ।

१०९४) दर्शनावरणीय कर्म का उत्कृष्ट तथा जघन्य अबाधाकाल कितना ?

उत्तर : उत्कृष्ट अबाधाकाल ३ हजार वर्ष तथा जघन्य एक अंतर्मुहूर्त्त ।

१०९५) दर्शनावरणीय कर्म बंध के क्या कारण है ?

उत्तर : (१) दर्शनप्रत्यनीकता - दर्शन या दर्शनी से प्रतिकूलता रखना ।

(२) दर्शननिह्नव - दर्शन या दर्शनदाता का अपलपन करना ।

(३) दर्शनान्तराय - दर्शन को प्राप्त करने में अन्तराय डालना ।

(४) दर्शनप्रद्वेष - दर्शन या दर्शनी से द्वेष रखना ।

(५) दर्शन आशातना - दर्शन तथा दर्शनी की अवहेलना ।

(६) दर्शन विसंवादन - दर्शन तथा दर्शनी के वचनों में विसंवाद दिखाना ।

१०९६) दर्शनावरणीय कर्म नष्ट होने पर आत्मा में कौनसा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर : अनंत दर्शन ।

१०९७) वेदनीय कर्म किसके समान है ?

उत्तर : वेदनीय कर्म मधुलिप्त तलवार की धार के समान है । जिसप्रकार मधु से लिप्त तलवार की धार को चाटने से स्वाद मधुर लगता है, वह शाता वेदनीय है । परंतु जीभ कट जाती है, उसके समान अशाता वेदनीय है ।

१०९८) वेदनीय कर्म की उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति कितनी ?

उत्तर : उत्कृष्ट स्थिति ३० कोडाकोडी सागरोपम तथा जघन्य स्थिति १२ मुहूर्त्त है ।

१०९९) वेदनीय कर्म का उत्कृष्ट तथा जघन्य अबाधाकाल कितना ?

उत्तर : उत्कृष्ट ३ हजार वर्ष तथा जघन्य एक अंतर्मुहूर्त्त का अबाधाकाल है ।

११००) शातावेदनीय कर्मबंध के कारण क्या है ?

उत्तर : (१) भावानुकम्पा - प्राणियों पर अनुकंपा करने से ।

(२) व्रत्यनुकम्पा - अल्पांश या सर्वांश व्रतधारी पर अनुकंपा/दया करने से ।

(४) सराग संयम से ।

(३) दान - दुःखियों को दान देने से ।

(५) संयमासंयम - आंशिक संयम स्वीकार करना ।

(६) शौच अर्थात् मन, वचन, काया की पवित्रता से अथवा लोभवृत्ति आदि दोषों का शमन करने से ।

(७) अकाम निर्जरा से ।

(८) बालतप से

१०१) अशाता वेदनीय कर्म बंध के कारण क्या है ?

उत्तर : (१) दुःख - प्राणीयों को दुःख देने से ।
(२) शोक - शोक करने या कराने से ।
(३) ताप - संताप उपजाने से ।
(४) आक्रंदन - आक्रंदन करने से ।
(५) वध - प्राणों का घात करने से ।
(६) परिदेवन - करुण रुदन करने या कराने से ।

११०२) वेदनीय कर्मक्षय होने पर आत्मा में कौनसा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर : अव्याबाध सुख ।

११०३) मोहनीय कर्म को किसकी उपमा दी गयी है ?

उत्तर : मोहनीय कर्म को शराब (मद्य) की उपमा दी गयी है । जिस प्रकार शराबी व्यक्ति को सुध-बुध नहीं रहती, विवेक तथा बुद्धि नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है, ठीक उसी प्रकार मोह में अंधा जीव जिन धर्म पर श्रद्धा नहीं कर पाता तथा विषय-भोगों में लिप्त रहता है ।

११०४) मोहनीय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) दर्शन मोहनीय, (२) चारित्र मोहनीय ।

११०५) दर्शन मोहनीय कर्म बन्ध के हेतु कौन कौन से है ?

उत्तर : केवली, श्रुत, संघ, धर्म एवं देव, इन पांचो का अवर्णवाद करना, दर्शन मोहनीय कर्मबन्ध का हेतु है ।

११०६) चारित्र मोहनीय कर्मबंध के क्या क्या कारण है ?

उत्तर : (१) तीव्र क्रोध, (२) तीव्र मान, (३) तीव्र माया, (४) तीव्र लोभ ।

११०७) मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति कितनी ?

उत्तर : उत्कृष्ट ७० कोडाकोडी सागरोपम तथा जघन्य एक अंतर्मुहूर्त्त ।

११०८) मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट तथा जघन्य अबाधाकाल कितना ?

उत्तर : उत्कृष्ट ७ हजार वर्ष तथा जघन्य एक अंतर्मुहूर्त्त ।

११०९) मोहनीय कर्म का क्षय होने पर कौन सा गुण आत्मा में प्रकट होता है ?

उत्तर : अनंत चारित्र ।

१११०) आयुष्य कर्म किसके समान है ?

उत्तर : आयुष्य कर्म बेडी के समान है। जिस प्रकार बेडी से बंधा व्यक्ति उसे तोडे बिना मुक्त नहीं हो सकता, उसी प्रकार आयुष्य कर्म को भोगे बिना जीव एक भव से दूसरे भव में नहीं जा सकता ।

१११९) आयुष्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार - (१) नरकायुष्य, (२) तिर्यञ्चायुष्य, (३) मनुष्यायुष्य, (४) देवायुष्य ।

१११२) नरक आयुष्य का बंध किन कारणों से होता है ?

उत्तर : (१) महा-आरंभ करने से, (२) महा-परिग्रह रखने से, (३) पंचेन्द्रिय प्राणी का वध करने से, (४) मांसाहार, अनंतकाय भक्षण करने से ।

१११३) तिर्यंच आयुष्य का बंध किन कारणों से होता है ?

उत्तर : चार कारणों से - (१) माया करने से, (२) मायायुक्त झूठ बोलने से, (३) आर्त्तध्यान करने से, (४) कूट (खोटा) मापतोल करने से ।

१११४) मनुष्य आयुष्य का बंध कैसे होता है ?

उत्तर : (१) सरल-प्रकृति, (२) अल्पारंभ, (३) अल्प परिग्रह, (४) कषायों की मंदता ।

१११५) देव आयुष्य बंध के हेतु क्या है ?

उत्तर : (१) सराग संयम - रागयुक्त संयम का पालन ।

(२) संयमासंयम - श्रावकधर्म का पालन ।

(३) अकाम निर्जरा - मोक्ष की इच्छा के बिना की जाने वाली तपश्चर्या ।

(४) बालतप - मिथ्यात्वी या अज्ञानी की तपस्या ।

१११६) आयुष्य कर्म का क्षय होने पर आत्मा में कौन सा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर : अक्षय स्थिति ।

१११७) देव आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति कितनी ?

उत्तर : उत्कृष्ट ३३ सागरोपम तथा जघन्य दस हजार वर्ष ।

१११८) मनुष्य आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति कितनी ?

उत्तर : उत्कृष्ट तीन पल्योपम तथा जघन्य एक अंतर्मुहूर्त्त (क्षुल्लकभव) ।

१११९) तिर्यंच आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति कितनी ?

उत्तर : उत्कृष्ट ३ पल्योपम तथा जघन्य एक अंतर्मुहूर्त्त (क्षुल्लकभव) ।

११२०) नरक आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति कितनी ?

उत्तर : उत्कृष्ट ३३ सागरोपम तथा जघन्य दस हजार वर्ष ।

११२१) आयुष्य कर्म का उत्कृष्ट एवं जघन्य अबाधाकाल कितना ?

उत्तर : उत्कृष्ट - अंतर्मुहूर्त न्यून पूर्वकरोड का तीसरा भाग तथा जघन्य एक अंतर्मुहूर्त्त ।

११२२) नाम कर्म का कैसा स्वभाव है ?

उत्तर : नाम कर्म का स्वभाव चित्रकार के समान है । चित्रकार नये-नये चित्रों का निर्माण करता है, वैसे ही नामकर्म के उदय से तरह तरह के शरीर, नाना प्रकार के रुप, विभिन्न प्रकार की आकृतियों का निर्माण होता है ।

११२३) शुभ नामकर्म बंध के हेतु क्या है ?

उत्तर : चार - (१) कायऋजुता - दूसरों को ठगनेवाली शारीरिक चेष्टा न करना ।
(२) भावऋजुता - दूसरों को ठगने वाली मानसिक चेष्टा न करना ।
(३) भाषाऋजुता - दूसरों को ठगने वाली वचनचेष्टा न करना ।
(४) अविसंवादन योग - कथनी व करनी में विषमता न रखना ।

११२४) अशुभ नाम कर्मबंध के हेतु क्या है ?

उत्तर : (१) मन की वक्रता, (२) वचन की वक्रता, (३) काया की वक्रता, (४) विसंवाद ।

११२५) नाम कर्म की उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति कितनी ?

उत्तर : उत्कृष्ट २० कोडाकोडी सागरोपम तथा जघन्य ८ मुहूर्त्त ।

११२६) नामकर्म का उत्कृष्ट एवं जघन्य अबाधाकाल कितना ?

उत्तर : उत्कृष्ट दो हजार वर्ष, जघन्य एक अंतर्मुहूर्त्त ।

११२७) नामकर्म का क्षय होने पर आत्मा में कौन सा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर : अरूपीत्व ।

११२८) गोत्र कर्म का स्वभाव किसके समान है ?

उत्तर : गोत्र कर्म का स्वभाव कुम्भकार के समान है। जिसप्रकार कुम्हार कुंभ स्थापना के लिये शुभ व श्रेष्ठ घडे बनाता है, जो मांगलिक रुप में पूजे जाते हैं तथा मदिरा आदि भरने के लिये मिट्टी के बर्तन भी बनाता है, जो उत्तम कार्यों के लिये निन्दनीय होते हैं। गोत्र कर्म भी जीव को उच्च अथवा नीच कुल में जन्म दिलाता है।

११२९) उच्चगोत्र कर्म बंध के कारण क्या हैं ?

उत्तर : (१) दूसरों के सद्‌गुणों की प्रशंसा करना।
(२) अपने दुर्गुणों की निंदा करना।
(३) अपने सद्‌गुणों को छुपाना।
(४) दूसरे के सद्‌गुणों को प्रकाशित करना।
(५) नम्रवृत्ति - पूज्यजनों के प्रति विनम्रता रखना।
(६) अनुत्सेक - विशिष्ट श्रुत अथवा संपदा प्राप्त होने पर भी गर्व न करना।

११३०) नीच गोत्र कर्मबंध के कारण क्या है ?

उत्तर : (१) परनिन्दा, (२) आत्मप्रशंसा, (३) पर-सद्‌गुण आच्छादन, (४) पर-दुर्गुण प्रकाशन।

११३१) गोत्र कर्म की उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति कितनी ?

उत्तर : उत्कृष्ट २० कोडाकोडी सागरोपम तथा जघन्य ८ मुहूर्त्त।

११३२) गोत्र कर्म का उत्कृष्ट तथा जघन्य अबाधाकाल कितना ?

उत्तर : उत्कृष्ट दो हजार वर्ष तथा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त।

११३३) गोत्रकर्म के क्षय होने पर आत्मा में कौनसा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर : अगुरुलघुत्व।

११३४) अंतराय कर्म का कार्य क्या है ?

उत्तर : अंतराय कर्म भंडारी के समान है। जिस प्रकार राजा की दान देने की इच्छा होते हुए भी भण्डारी खजाने में कमी बताकर रोक देता है, उसी प्रकार अन्तराय कर्म दूर हुए बिना जीव को इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती।

११३५) अंतराय कर्म का बंध किन कारणों से होता है ?

उत्तर : पांच कारणों से - (१) दान, (२) लाभ, (३) भोग, (४) उपभोग, (५) वीर्य-शक्ति में अंतराय डालने से ।

११३६) अंतराय कर्म की उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति कितनी ?

उत्तर : उत्कृष्ट ३० कोडाकोडी सागरोपम तथा जघन्य एक अंतर्मुहूर्त ।

११३७) अंतराय कर्म का उत्कृष्ट तथा जघन्य अबाधाकाल कितना ?

उत्तर : उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष तथा जघन्य एक अंतर्मुहूर्त ।

११३८) अंतराय कर्म का क्षय होने पर आत्मा में कौनसा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर : अनंतवीर्य ।

११३९) किस कर्म का अबाधाकाल अनियमित है ?

उत्तर : आयुष्य कर्म का ।

११४०) आयुष्य कर्म के अबाधाकाल के कितने विकल्प है ?

उत्तर : चार - (१) जघन्य स्थिति में जघन्य अबाधाकाल ।
(२) जघन्य स्थिति में उत्कृष्ट अबाधाकाल ।
(३) उत्कृष्ट स्थिति में जघन्य अबाधाकाल ।
(४) उत्कृष्ट स्थिति में उत्कृष्ट अबाधा काल ।

११४१) बंध, उदय, उदीरणा व सत्ता में कर्म की कितनी प्रकृतियाँ होती है ?

उत्तर : बंध में १२०, उदय-उदीरणा में - १२२, तथा सत्ता में १४८/१५८ प्रकृतियाँ होती है ।

११४२) बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता योग्य प्रकृतियाँ कौन-कौन सी है ?

उत्तर : **(१) बंध योग्य १२० प्रकृतियाँ** - ज्ञानावरणीय - ५, दर्शनावरणीय - ९, वेदनीय - २, मोहनीय - २६, आयु - ४, नाम - ६७, गोत्र - २, अंतराय - ५

(२) उदय-उदीरणा योग्य प्रकृतियाँ - १२२ - बंधयोग्य १२० तथा सम्यक्त्व मोहनीय व मिश्र मोहनीय ये २ प्रकृतियाँ मोहनीय कर्म में अधिक जोडने पर मोहनीय कर्म की २८ होती हैं, अतः १२२ उदय-उदीरणा योग्य है ।

(३) सत्ता योग्य प्रकृतियाँ १५८ अथवा १४८ - ज्ञानावरणीय - ५, दर्शनावरणीय - ९, वेदनीय - २, मोहनीय - २८, आयुष्य - ४, नाम - १०३/९३, गोत्र-२, अंतराय - ५ ।

११४३) नामकर्म में ६७ या १०३ या ९३ का भेद क्यों है ?

उत्तर : बंध-उदय-उदीरणा में वर्ण चतुष्क की चार प्रकृतियाँ ही होती है। परंतु सत्ता में वर्ण-चतुष्क के अवान्तर भेद गिनने से कुल २० प्रकृतियाँ होती है। ६७ में वर्णादि ४ के १६ अवान्तर भेद साथ में जोडने पर ६७ + १६ = ८३ प्रकृतियाँ होती है। पाँच शरीर के ५ बंधन तथा ५ संघातन भेद जोडने पर ९३ तथा ५ बंधन के स्थान पर १५ बंधन गिनने पर १०३ प्रकृतियाँ नाम कर्म की होती हैं।

११४४) कर्मप्रकृतियों के १५८ तथा १४८ भिन्न भिन्न भेद क्यों हैं ?

उत्तर : नाम कर्म की ९३ प्रकृतियाँ गिनने पर १४८ व १०३ प्रकृतियाँ गिनने पर १५८ भेद होते हैं।

११४५) आठ कर्म की १५८ कर्मप्रकृतियों का नामोल्लेख करो ?

उत्तर : **(१) ज्ञानावरणीय - ५** (१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्यवज्ञानावरणीय, (५) केवल-ज्ञानावरणीय ।

(२) दर्शनावरणीय - ९ (१) चक्षुदर्शनावरणीय, (२) अचक्षु दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, (४) केवलदर्शनावरणीय, (५) निद्रा, (६) निद्रा-निद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचला-प्रचला, (९) स्त्यानर्द्धि ।

(३) वेदनीय - २ (१) शाता वेदनीय, (२) अशातावेदनीय ।

(४) मोहनीय-२८ (१) सम्यक्त्व मोहनीय, (२) मिश्र मोहनीय, (३) मिथ्यात्व मोहनीय, (४-७) अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माय लोभ, (८-११) अप्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया, लोभ, (१२-१५) प्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया, लोभ, (१६-१९) संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) हास्य, (२१) रति, (२२) शोक, (२३) अरति, (२४) भय, (२५) जुगुप्सा, (२६) पुरूष वेद, (२७) स्त्रीवेद, (२८) नपुंसकवेद ।

नामकर्म की उत्तरप्रकृति दर्शक चित्र

(५) **आयुष्य** - ४ (१) देवायु, (२) मनुष्यायु, (३) तिर्यंचायु, (४) नरकायु ।

(६) **नामकर्म** - १०३

(१) **गति**-४, १) नरक, २) तिर्यंच, ३) मनुष्य, ४) देव ।

(२) **जाति**-५ १) एकेन्द्रिय, २) द्वीन्द्रिय, ३) त्रीन्द्रिय, ४) चतुरिन्द्रिय, ५) पंचेन्द्रिय ।

(३) **शरीर**-५ १) औदारिक २) वैक्रिय, ३) आहारक, ४) तैजस, ५) कार्मण ।

(४) **अंगोपांग**-३ १) औदारिक अंगोपांग, २) वैक्रिय अंगोपांग, ३) आहारक अंगोपांग ।

(५) **बंधन**-१५ १) औदारिक-औदारिक बंधन, २) औदारिक-तैजस बंधन, ३) औदारिक-कार्मण बंधन, ४) औदारिक-तैजस-कार्मण बंधन, ५) वैक्रिय-वैक्रिय बंधन, ६) वैक्रिय-तैजस बंधन, ७) वैक्रिय-कार्मण बंधन, ८) वैक्रिय-तैजस-कार्मण बंधन, ९) आहारक-आहारक बंधन, १०) आहारक-तैजस बंधन, ११) आहारक-कार्मण बंधन, १२) आहारक-तैजस-कार्मण बंधन, १३) तैजस-तैजस बंधन, १४) तैजस-कार्मण बंधन, १५) कार्मण-कार्मण बंधन ।

(६) **संघातन**-५ १) औदारिक संघातन, २) वैक्रिय संघातन, ३) आहारक संघातन, ४) तैजस संघातन ५) कार्मण संघातन ।

(७) **संहनन**-६ १) वज्रऋषभनाराच संहनन, २) ऋषभनाराच संहनन, ३) नाराच संहनन, ४) अर्धनाराच संहनन, ५) कीलिका संहनन, ६) सेवार्त्त संहनन ।

(८) **संस्थान**-६ १) समचतुरस्त्र संस्थान, २) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान, ३) सादि संस्थान, ४) वामन संस्थान, ५) कुब्ज संस्थान, ६) हुण्डक संस्थान ।

(९) **वर्ण**-४ १) कृष्ण, २) नील, ३) रक्त, ४) पीत, ५) श्वेत ।

(१०) **गंध**-२ १) सुरभि, २) दुरभि ।

(११) **रस**-५ १) तिक्त, २) कटु ३) कषाय, ४) अम्ल, ५) मधुर ।

(१२) स्पर्श-८ १) शीत, २) उष्ण, ३) स्निग्ध, ४) रुक्ष, ५) गुरु, ६) लघु, ७) कठोर, ८) मृदु ।

(१३) आनुपूर्वी-४ १) नरकानुपूर्वी, २) तिर्यंचानुपूर्वी, ३) मनुष्यानुपूर्वी, ४) देवानुपूर्वी ।

(१४) विहायोगति-२ १) शुभविहायोगति, २) अशुभविहायोगति ।

(१५) प्रत्येक प्रकृतियाँ-८ १) पराघात, २) उच्छ्वास, ३) आतप, ४) उद्योत, ५) अगुरुलघु, ६) तीर्थंकर, ७) निर्माण, ८) उपघात

(१६) त्रसदशक-१० १) त्रस, २) बादर, ३) पर्याप्त, ४) प्रत्येक, ५) स्थिर, ६) शुभ, ७) सुभग, ८) सुस्वर, ९) आदेय, १०) यश

(१७) स्थावर दशक-१० १) स्थावर, २) सूक्ष्म, ३) अपर्याप्त, ४) साधारण, ५) अस्थिर, ६) अशुभ, ७) दुर्भग, ८) दुःस्वर, ९) अनादेय, १०) अपयश ।

(७) **गोत्र-२** (१) उच्चगोत्र, (२) नीचगोत्र ।

(८) **अंतराय-५** (१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय, (५) वीर्यान्तराय ।

(इन समस्त प्रकृतियों का विस्तृत वर्णन पुण्य तथा पापतत्त्व में देखे)

११४६) नामकर्म की ६७ प्रकृतियाँ कौन-सी हैं ?

उत्तर : पिंडप्रकृतियाँ - गति-४, जाति-५, शरीर-५, अंगोपांग-३, संहनन-६, संस्थान-६, आनुपूर्वी-४, विहायोगति-२, वर्णादि-४ ये कुल ३९ ।

प्रत्येक प्रकृतियाँ - ८, पराघातादि ।

त्रसदशक-१० त्रसादि । **स्थावर दशक-१०** स्थावरादि ।

३९ + ८ + १० + १० = ६७

११४७) बंधन किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो कर्म लाख के समान बंधे हुए और बंधनेवाले औदारिकादि शरीरों के पुद्गलों का आपस में सम्बन्ध कराता है - परस्पर मिलाता है, उस कर्म को औदारिकादि बंधन नामकर्म कहते हैं ।

११४८) औदारिक-बंधन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से पूर्वगृहीत औदारिक शरीर के पुद्गलों के साथ

गृह्यमाण-वर्त्तमान में ग्रहण किये जाने वाले पुद्गल आपस में संयुक्त हो, वह औदारिक बंधन नाम कर्म है।

११४९) वैक्रिय बंधन नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो कर्म पूर्व में बंधे हुए वैक्रिय पुद्गलों के साथ नवीन बध्यमान वैक्रिय पुद्गलों को परस्पर संयुक्त करता है, उसे वैक्रिय बंधन नामकर्म कहते हैं।

११५०) आहारक बंधन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से पूर्वगृहीत आहारक शरीर के पुद्गलों के साथ गृह्यमाण आहारक शरीर पुद्गलों का आपस में मेल हो, वह आहारक बन्धन नामकर्म है।

११५१) तैजस बन्धन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से पूर्वगृहीत तैजस शरीर के पुद्गलों के साथ गृह्यमाण तैजस शरीर के पुद्गलों का आपस में मेल हो, वह तैजस बन्धन नामकर्म है।

११५२) कार्मण बन्धन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से पूर्वगृहीत कार्मण शरीर के पुद्गलों के साथ गृह्यमाण कार्मण शरीर के पुद्गलों का आपस में मेल हो, वह कार्मण बन्धन नामकर्म है।

११५३) संघातन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो कर्म औदारिकादि शरीर के पुद्गलों को पिंडीभूत या संघातरुप करता है, उसे संघातन नामकर्म कहते हैं। औदारिकादि पांच शरीरों के भेद की अपेक्षा से इसके भी पाँच भेद हैं।

११५४) औदारिक संघातन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर के रुप में परिणत पुद्गलों का परस्पर सान्निध्य हो, वह औदारिक संघातन नामकर्म कहलाता है।

११५५) वैक्रिय संघातन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर रुप में परिणत पुद्गल परस्पर पिंडीभूत हो, वह वैक्रिय संघातन नामकर्म है।

११५६) आहारक संघातन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर रुप में परिणत पुद्गलों का परस्पर सान्निध्य हो, वह आहारक संघातन नाम कर्म है।

११५७) तैजस संघातन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से तैजस शरीर रुप में परिणत पुद्गलों का परस्पर संघात हो, उसे तैजस संघातन नाम कर्म कहते हैं।

११५८) कार्मण संघातन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से कार्मण शरीर रुप में परिणत पुद्गलों का परस्पर पिण्डीभाव हो, उसे कार्मण संघातन नामकर्म कहते हैं।

११५९) बंध तत्त्व को जानने का क्या उद्देश्य है ?

उत्तर : "संजोग मूला जीवेण पत्ता दुक्ख परंपरा" संयोग अर्थात् बंध, जो सभी दुःखों का मूल है और दुःखों की परंपरा को आगे बढाने वाला है। चार प्रकार के बंध को समझकर आत्मा अपने अंदर पडे हुए अनंत ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि गुणों को प्रगट करने का प्रयत्न करें। इसी बंध के कारण मुझे इस चार गति के ८४ लाख जीवयोनियों में भटकना पड़ रहा है, मेरी यथार्थ स्थिति से विपरीत अनेक प्रकार की विकृति से मेरी आत्मा गुजर रही है, जिससे मैंने अति कष्ट सहन किया है। प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेश के कारण कर्मों की स्थिति का ज्ञान मुझे होने लगा है अब मेरा हृदय इन कर्मों के जाल से, इस पिंजरे से छुटने को बेचैन हो रहा है, इस प्रकार से विचार कर बंध को हेय रूप में समझ उसे त्याग कर, आत्मा की अबंधक स्थिति को प्राप्तकर शाश्वत सुख का भोक्ता बने, यही उद्देश्य इस बंध तत्त्व को जानने का है।

मोक्ष तत्त्व का विवेचन

११६०) मोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर : आत्मा के संपूर्ण प्रदेशों से समस्त कर्म पुद्गलों का सर्वथा क्षय हो जाना, मोक्ष कहलाता है।

११६१) मोक्ष के मुख्य कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) द्रव्यमोक्ष, (२) भावमोक्ष

११६२) द्रव्य मोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर : आत्मा से कर्मपुद्गलों का विनष्ट होना द्रव्य मोक्ष है।

११६३) भावमोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्म एवं रागद्वेष रहित आत्मा का शुद्ध उपयोग भाव मोक्ष है।

११६४) मोक्ष तत्त्व के प्रकारान्तर से कितने भेद हैं ?

उत्तर : नौ अनुयोग द्वार रुप नौ भेद हैं - (१) सत्पदप्ररूपणा, (२) द्रव्यप्रमाण, (३) क्षेत्र, (४) स्पर्शना, (५) काल, (६) अंतर, (७) भाग, (८) भाव, (९) अल्पबहुत्व।

११६५) सत्पद प्ररूपणा द्वार किसे कहते हैं ?

उत्तर : कोई भी पद वाला पदार्थ सत् (विद्यमान) है या असत् है। अर्थात् उस पदार्थ का अस्तित्व जगत् में है या नहीं, उसकी विवक्षा करना, सत्पद प्ररूपणा द्वार है।

११६६) मोक्षपद सत् है या नहीं, यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर : मोक्षपद सत् (सत्य) है क्योंकि यह शुद्ध एक पदवाला नाम है। जो एक पद वाले नाम से वाच्य वस्तु होती है, वह अवश्य विद्यमान होती है, जैसे-कुसुम। दो पद से मिलकर बने हुए एक पदवाली वस्तु होती भी है और नहीं भी होती। जैसे-उद्यान-कुसुम होता है परंतु आकाश-पुष्प नहीं होता है। यह असत्पद है।

११६७) मोक्षपद की विचारणा किससे होती है ?

उत्तर : मार्गणाओं से।

चौदह मार्गणाओं का विवेचन

११६८) मार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : मार्गणा अर्थात् किसी वस्तु को खोजने के मुद्दे। अथवा विवक्षित भाव का अन्वेषण-शोधन मार्गणा कहलाता है।

११६९) मार्गणाएँ कितनी है ?

उत्तर : १४ - (१) गति, (२) इन्द्रिय, (३) काय, (४) योग, (५) वेद, (६) कषाय, (७) ज्ञान, (८) संयम, (९) दर्शन, (१०) लेश्या, (११) भव्य, (१२) सम्यक्त्व, (१३) संज्ञी, (१४) आहारी ।

११७०) मूल मार्गणाओं के कुल उत्तर भेद कितने है ?

उत्तर : १४ मूल मार्गणाओं के उत्तर भेद ६२ है - (१) गति-४ : नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव । (२) इन्द्रिय-५ : एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय ।, (३) काय-६ : पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय ।, (४) योग-३ : मनोयोग, वचनयोग, काययोग ।, (५) वेद-३ : पुरूषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद ।, (६) कषाय-४ : क्रोध, मान, माया, लोभ ।, (७) ज्ञान-८ : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यव ज्ञान, केवलज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान ।, (८) संयम-७ : सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यात, देशविरति, सर्वविरति ।, (९) दर्शन-४ : चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन ।, (१०) लेश्या-६ : कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पदम्, शुक्ल ।, (११) भव्य-२ : भव्य, अभव्य ।, (१२) सम्यक्त्व-६ : औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, मिश्र, सास्वादन, मिथ्यात्व ।, (१३) संज्ञी-२ : संज्ञी, असंज्ञी ।, (१४) आहारी-२ : आहारी, अनाहारी ।

११७१) ६२ मार्गणाओं को स्पष्ट करो ।

उत्तर : गति-४ : इसके चारों भेदों का वर्णन पुण्य तथा पाप तत्त्व में देखे ।, इन्द्रिय-५ : इसका वर्णन जीवतत्त्व में देखे ।, काय-६ : इसका वर्णन भी जीवतत्त्व में देखे ।, योग-३ : आश्रव तत्त्व में देखे ।, वेद-३ : पाप तत्त्व में देखे ।, कषाय-४ : पाप तत्त्व में देखे ।, संयम-७ : संवर तत्त्व में देखे ।, संज्ञी-२ : जीव तत्त्व में देखे ।

११७२) ज्ञान व अज्ञान के भेद कितने हैं ?

उत्तर : ज्ञान के भेद ५ व अज्ञान के ३ भेद हैं ।

११७३) मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : इन्द्रिय तथा मन के द्वारा जो ज्ञान होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं ।

११७४) श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : शास्त्रों के पठन-पाठन द्वारा जो ज्ञान होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

११७५) अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : इन्द्रियों तथा मन की सहायता के बिना केवल आत्मा से रूपी द्रव्यों का ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है।

११७६) मनःपर्यवज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस ज्ञान के द्वारा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जाना जाय, उसे मनः पर्यव ज्ञान कहते हैं।

११७७) केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो ज्ञान किसी की सहायता के बिना सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थों को विषय करता है अर्थात् इन्द्रियादि की सहायता के बिना मूर्त्त-अमूर्त्त सभी ज्ञेय पदार्थों को साक्षात् प्रत्यक्ष करने की शक्ति रखनेवाला ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है।

११७८) मति अज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : मतिज्ञान का विरोधी अर्थात् मिथ्यात्वी होने को होने वाला ज्ञान मति अज्ञान कहलाता है।

११७९) श्रुतअज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : मिथ्यात्वी को शास्त्रों के पठन-पाठन से तत्त्व के विपरीत जो ज्ञान होता है, उसे श्रुत अज्ञान कहते हैं।

११८०) विभंग ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर : मिथ्यादृष्टि जीव के अवधिज्ञान को विभंगज्ञान कहते हैं।

११८१) चक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : चक्षु द्वारा जो सामान्य ज्ञान होता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं।

११८२) अचक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : अचक्षु अर्थात् आँख के बिना अन्य चार इन्द्रियों से जो सामान्य ज्ञान होता है, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं।

११८३) अवधिदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : अवधि अर्थात् सीमा में रुपी तथा अरुपी पदार्थो का सामान्य ज्ञान होना अवधिदर्शन है ।

११८४) केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर : लोकालोक के रुपी तथा अरुपी समस्त पदार्थों का सामान्य अवबोध केवलदर्शन कहलाता है ।

११८५) लेश्या किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिनके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है, मन के ऐसे शुभाशुभ परिणामों को लेश्या कहते हैं ।

११८६) लेश्या के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : छह - (१) कृष्णलेश्या, (२) नीललेश्या, (३) कपोतलेश्या, (४) पीतलेश्या, (५) पद्मलेश्या, (६) शुक्ललेश्या ।

११८७) कृष्णलेश्या किसे कहते हैं ?

उत्तर : काजल के समान कृष्ण और नीम से अनन्तगुण कटु पुद्गलों के सम्बन्ध से आत्मा में जो परिणाम होता है, वह कृष्ण लेश्या है । इस लेश्या वाला जीव क्रूर, हिंसक, असंयमी, तथा रौद्र परिणामवाला होता है ।

११८८) नील लेश्या किसे कहते हैं ?

उत्तर : नीलम के समान नीले तथा सौंठ से अनन्तगुण तीक्ष्ण पुद्गलों के सम्बन्ध से आत्मा में जो परिणाम होता है, वह नीललेश्या है । इस लेश्यावाला जीव कपटी, निर्लज्ज, स्वाद लोलुपी, पौद्गलिक सुख में रत रहनेवाला होता है ।

११८९) कापोतलेश्या किसे कहते हैं ?

उत्तर : कबूतर के गले के समान वर्णवाले और कच्चे आम के रस से अनन्तगुण कसैले पुद्गलों के सम्बन्ध से आत्मा में जो परिणाम होता है, वह कापोत लेश्या है । कापोत लेश्यावाला जीव अभिमानी, जड, वक्र तथा कर्कशभाषी होता है ।

११९०) पीतलेश्या किसे कहते हैं ?

६ लेश्या की पहचान :- जंबूवृक्ष और चोर का दृष्टांत

उत्तर : हिंगुल के समान रक्त और पके आमरस से अनन्तगुण मधुर पुद्गलों के संयोग से आत्मा में जो परिणाम होता है, वह पीतलेश्या है। पीतलेश्या संयुक्त जीव पापभीरु, ममत्वरहित, विनयी तथा धर्म में रुचि रखनेवाला होता है।

११९१) पद्मलेश्या किसे कहते हैं ?

उत्तर : हल्दी के समान पीले तथा मधु से अनन्तगुण मिष्ट पुद्गलों के सम्बन्ध से आत्मा में जो परिणाम होता है, वह पद्म लेश्या है। पद्म लेश्यावाला जीव सरल, सहिष्णु, समभावी, मितभाषी तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण करनेवाला होता है।

११९२) शुक्ल लेश्या किसे कहते हैं ?

उत्तर : शंख के समान श्वेत और मिश्री से अनन्तगुण मिष्ट पुद्गलों के सम्बन्ध से आत्मा में जो परिणाम होता है, वह शुक्ल लेश्या है। शुक्ल लेश्यावाला जीव राग-द्वेष रहित, विशुद्ध ध्यानी तथा आत्मलीन होता है।

११९३) भव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिन जीवों में मोक्ष पाने की योग्यता है, वे जीव देव-गुरु-धर्म रुप सामग्री मिलने पर कभी न कभी अवश्यमेव सिद्धत्व को प्राप्त करेंगे, वे भव्य जीव कहलाते है।

११९४) अभव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : मूंग में कोरड के समान जो जीव देव-गुरु-धर्म का सान्निध्य मिलने पर भी सुलभ बोधि नहीं बनेंगे तथा अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करते रहेंगे, वे मोक्ष में जाने की अयोग्यता रखनेवाले जीव अभव्य कहलाते हैं।

११९५) भव्य जीव के कितने प्रकार है ?

उत्तर : तीन - (१) आसन्नभव्य, (२) मध्यम भव्य, (३) दुर्भव्य।

११९६) आसन्न भव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो जीव निकटभवी हो अर्थात् एकाधभव में ही मोक्ष प्राप्त करनेवाला

हो, उसे आसन्न भव्य कहते हैं।

११९७) मध्यम भव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : वह जीव, जो ३, ५, ७, ९ या कुछ अधिक भवों में मोक्ष प्राप्त करेगा, उसे मध्यम भव्य कहते हैं।

११९८) दुर्भव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : वह जीव, जो अनन्तकाल के बाद मोक्ष प्राप्त करेगा, दुर्भव्य कहलाता है।

११९९) सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम से जिन प्ररुपित तत्त्व पर श्रद्धा रुप जो आत्मा का परिणाम है, उसे सम्यक्त्व कहते हैं।

१२००) औपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : अनन्तानुबंधी कषायचतुष्क तथा सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, इन सात कर्म प्रकृतियों की अन्तर्मुहूर्त तक पूर्ण रुप से उपशान्ति होने पर आत्मा में जो विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है, उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं।

१२०१) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त सातों कर्म प्रकृतियों में से छह का उपशमन तथा सम्यक्त्व मोहनीय का उदय होकर क्षय हो रहा होता है, उस समय आत्मा के जो परिणाम होते हैं, उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं।

१२०२) क्षायिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त सातों कर्म प्रकृतियों का सर्वथा क्षय होने पर आत्मा में जो अत्यन्त विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं।

१२०३) मिश्र सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपरोक्त सातों प्रकृतियों में से मात्र मिश्र मोहनीय का उदय हो, बाकि छह प्रकृतियाँ उपशान्त हो, उस समय सम्यग्-मिथ्यारुप जो आत्मा का

परिणाम होता है, उसे मिश्र सम्यक्त्व कहते हैं। इस सम्यक्त्व से जीव को सुदेव, सुगुरु तथा सुधर्म पर न श्रद्धा होती है, न अश्रद्धा होती है।

१२०४) सास्वादन सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : औपशमिक सम्यक्त्व से पतित होता हुआ जीव अनन्तानुबंधी कषाय के उदय से मिथ्यात्व भाव को प्राप्त करने से पूर्व जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट छह आवलिका पर्यंत सम्यक्त्व का कुछ आस्वाद होने से सास्वादन सम्यक्त्वी कहलाता है। उस जीव के स्वरुप विशेष को सास्वादन सम्यक्त्व कहते हैं। सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व भाव को प्राप्त करनेवाले जीव को ही यह सम्यक्त्व होता है।

१२०५) मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जीव में जो मिथ्या भाव प्रकट होता है, उसे मिथ्यात्व कहते हैं। इससे जीव को कुदेव-कुगुरु तथा कुधर्म पर श्रद्धा होती है।

१२०६) आहारमार्गणा के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो - (१) आहारक तथा (२) अनाहारक

१२०७) आहारक व अनाहारक किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो जीव आहार ग्रहण करे, वह आहारक कहलाता है। जो जीव आहार रहित है, वह अनाहारक कहलाता है।

१२०८) आहार के कितने भेद हैं ?

उत्तर : तीन - (१) ओज आहार, (२) लोम आहार, (३) कवलाहार।

१२०९) ओज आहार किसे कहते हैं ?

उत्तर : उत्पत्ति क्षेत्र में पहुँचकर अपर्याप्त अवस्था में तैजस तथा कार्मण शरीर द्वारा ग्रहण किया जानेवाला आहार ओज आहार कहलाता है।

१२१०) लोमाहार किसे कहते हैं ?

उत्तर : शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने पर त्वचा तथा रोम से ग्रहण किया जानेवाला आहार लोमाहार है।

१२११) कवलाहार किसे कहते हैं ?

उत्तर : मुख से ग्रहण किया जाने वाला अन्न, फलादि चार प्रकार का आहार कवलाहार कहलाता है ।

१२१२) जीव कब आहारक और कब अनाहारक होता है ?

उत्तर : जीव एक शरीर को छोडकर दूसरे शरीर में जाता है, उस समय यदि दो समय लगते हैं तो एक समय अनाहारक, तीन समय लगते हैं तो दो समय अनाहारक, चार समय लगते हैं तो तीन समय अनाहारक होता है । इससे ज्यादा समय कभी नहीं लगता । आंख बंद कर खोलने में असंख्य समय व्यतीत हो जाते है, उसमें से संसारी जीव तीन समय ही अनाहारक रहता है । केवली प्रभु के वेदनीय आदि चार अघाती कर्म क्षय होने के लिये केवली समुद्घात होता है। उसमें मात्र आठ समय लगते हैं । उस दौरान तीसरे, चौथे व पांचवें, इन तीन समय में जीव अनाहारक होता है । चौदहवें गुणस्थान तथा उसके पश्चात् मोक्ष के सभी जीव अनाहारक ही होते हैं ।

१२१३) चौदह मार्गणाओं में से किन-किन मार्गणाओं में जीव मोक्ष पा सकते हैं ?

उत्तर : १० मार्गणाओं मे ही मोक्ष है - (१) मनुष्यगति, (२) पंचेन्द्रिय जाति, (३) त्रसकाय, (४) भव्य, (५) संज्ञी, (६) यथाख्यात चारित्र, (७) क्षायिक सम्यक्त्व, (८) अनाहारक, (९) केवलज्ञान, (१०) केवलदर्शन ।

१२१४) द्रव्य प्रमाणद्वार किसे कहते हैं ?

उत्तर : सिद्ध के जीव कितने हैं, इसका संख्या संबंधी विचार करना द्रव्य प्रमाण द्वार है । सिद्ध के जीव अनन्त हैं । क्योंकि जघन्य से एक समय के अन्तर में तथा उत्कृष्ट छह मास के अन्तर में अवश्य कोई जीव मोक्ष जाता है, ऐसा नियम है । एक समय में जघन्य एक तथा उत्कृष्ट १०८ जीव भी मोक्ष में जाते हैं । इसप्रकार अनन्त काल बीत गया है, अतः उस अनन्तकाल में अनन्त जीवों की सिद्धि स्वतः सिद्ध है ।

१२१५) क्षेत्रद्वार किसे कहते हैं ?

उत्तर : सिद्ध के जीव कितने क्षेत्र का अवगाहन करके रहते हैं, यह विचार करना क्षेत्र द्वार है।

१२१६) अनंतसिद्ध कितने क्षेत्र में रहते हैं ?

उत्तर : अनंतसिद्ध लोकाकाश के असंख्यातवें भाग जितने क्षेत्र में रहते हैं।

१२१७) एक सिद्ध की जघन्य अवगाहना कितनी ?

उत्तर : एक सिद्ध की जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अंगुल अधिक है।

१२१८) सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी ?

उत्तर : एक कोस (दो हजार धनुष) का छठा भाग यानि ३३३ धनुष ३२ अंगुल (१३३३ हाथ और ८ अंगुल) यह सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना होती है।

१२१९) सिद्धों की मध्यम अवगाहना कितनी ?

उत्तर : जघन्य अवगाहना से कुछ अधिक तथा उत्कृष्ट अवगाहना से कुछ कम, सब मध्यम अवगाहना कहलाती है।

१२२०) सिद्धों को शरीर नहीं होता है फिर अवगाहना कैसी ?

उत्तर : शरीर तो नहीं है परंतु चरम शरीर के आत्मप्रदेश का घन दो तिहाई भाग जितना होता है। जघन्य दो हाथ तथा उत्कृष्ट ५०० धनुष की अवगाहनावाले मनुष्य मोक्षप्राप्त कर सकते हैं। इसलिये उनके दो तिहाई भाग जितनी जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना होती है।

१२२१) सिद्धयमान जीव कितनी ऊँचाईवाले सिद्ध होते हैं ?

उत्तर : जघन्य सात हाथ और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की ऊँचाईवाले जीव सिद्ध होते हैं। जघन्य अवगाहना तीर्थंकरों की ७ हाथ, सामान्य केवलियों की दो हाथ की होती है।

१२२२) सिद्धक्षेत्र कैसा है ?

उत्तर : ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी (सिद्धशिला) पैंतालीस लाख योजन की लम्बी-चौडी और एक करोड, बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ गुण पचास योजन से कुछ अधिक परिधिवाली है। वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी बहुमध्य

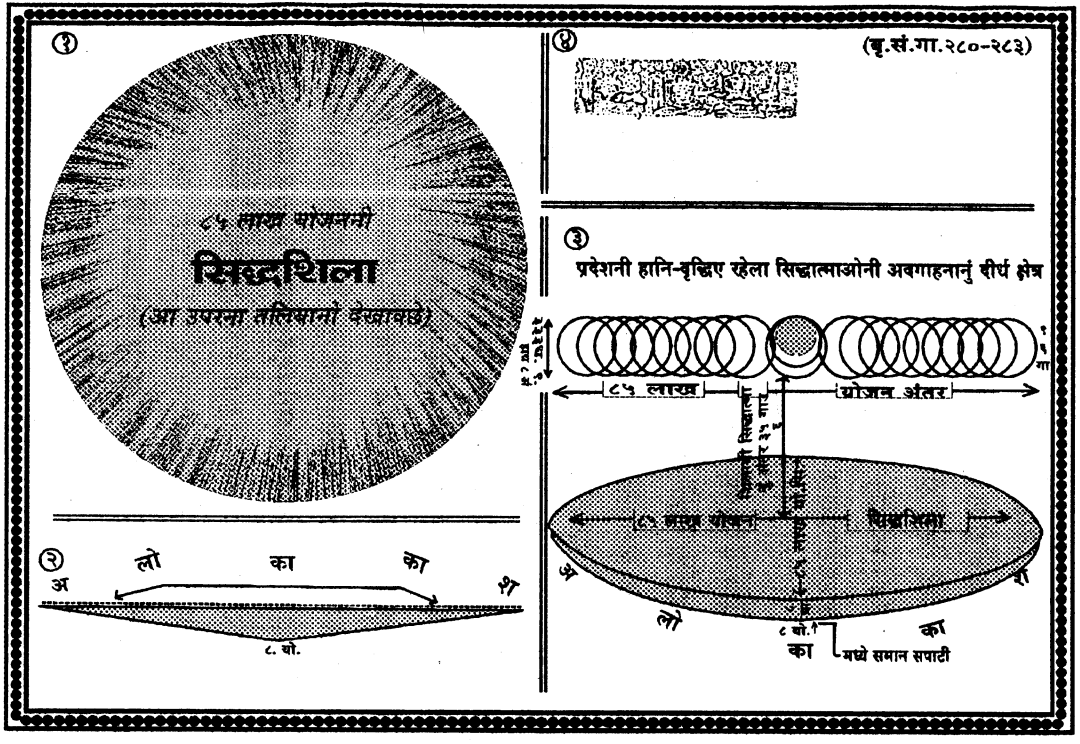

चित्र : सिद्धशिला और सिद्धात्माएं

देशभाग में आठ योजन जितने क्षेत्र में आठ योजन मोटी है। इसके बाद थोडी थोडी कम होती हुई सबसे अंतिम छोरें पर मक्खीं की पांख से भी पतली है। उस छोर की मोटाई अंगुल के असंख्येय भाग जितनी है।

१२२३) इतने ही क्षेत्र में सिद्ध होने का क्या कारण है ?

उत्तर : मनुष्य क्षेत्र (ढाई द्वीप) ४५ लाख योजन का है। ढाई द्वीप में से कोई जगह ऐसी नहीं, जहाँ अनंत सिद्ध न हुए हो। जिस स्थान से मोक्षगामी जीव शरीर से मुक्त होते हैं, उनके बराबर सीधी लकीर में एक समय मात्र में जीव उपर लोकाग्र में पहुँचकर सदाकाल के लिये स्थिर हो जाते हैं।

१२२४) इतने छोटे क्षेत्र में अनंत सिद्ध कैसे समा जाते हैं ?

उत्तर : जहाँ एक सिद्ध हो, वहाँ अनंत सिद्ध रह सकते हैं क्योंकि आत्मा अरुपी होने के कारण बाधा नहीं आती। जैसे एक कमरे में एक दीपक का प्रकाश भी समा सकता है और सौ दीपक का प्रकाश भी समा सकता है। हजार-लाख दीपक के प्रकाश को समाने में भी जैसे बाधा नहीं आती। ठीक उसी प्रकार आत्मा अरुपी एवं ज्योतिर्मय होने से एक ही स्थान में अनंत सिद्ध रह सकते हैं।

१२२५) किस आयुष्य वाला जीव सिद्ध होता है ?

उत्तर : जघन्य आठ वर्ष तथा उत्कृष्ट कोटि पूर्व के आयुष्य में जीव सिद्धत्व को उपलब्ध हो सकता है। इससे कम-ज्यादा आयुष्य वाले जीव सिद्ध नहीं हो सकते।

१२२६) स्पर्शना द्वार किसे कहते हैं ?

उत्तर : सिद्ध के जीव कितने आकाश प्रदेश को तथा सिद्ध को स्पर्श करते हैं, इसकी मीमांसा करना स्पर्शना द्वार है।

१२२७) सिद्ध जीव की स्पर्शना कितनी ?

उत्तर : सिद्ध की जितनी अवगाहना है, उससे स्पर्शना अधिक है क्योंकि जितने आत्मप्रदेश है, अवगाहना तो उतनी ही रहेगी परन्तु अवगाहना के चारों

तरफ चारों दिशाओं में तथा उपर-नीचे छह आकाश प्रदेश है तथा जहाँ स्वयं स्थित है, उस अवगाहना का एक प्रदेश, इस प्रकार कुल सात आकाश प्रदेशों की स्पर्शना सिद्ध जीव को होती है।

१२२८) कालद्वार किसे कहते हैं ?

उत्तर : सिद्धत्व कितने काल तक रहता है, इसका विचार करना, काल द्वार है। एक सिद्ध जीव की अपेक्षा से सादि अनन्तकाल तक तथा अनन्त सिद्ध जीवों की अपेक्षा से अनादि अनंतकाल तक की स्थिति है।

१२२९) अंतरद्वार किसे कहते हैं ?

उत्तर : सिद्ध में अंतर है या नहीं ? इस संबंधी विचारणा करना अन्तरद्वार है।

१२३०) सिद्धों में परस्पर क्या अंतर है ?

उत्तर : संसार में प्रतिपात अर्थात् पुनरागमन का अभाव होने से तथा केवलज्ञान-केवल दर्शन एक समान होने से सिद्धों में परस्पर कोई अंतर नहीं है।

१२३१) भागद्वार किसे कहते हैं ?

उत्तर : सिद्ध जीव संसारी जीवों से कितने वें भाग में है, ऐसा विचार करना भागद्वार है।

१२३२) सिद्ध जीव संसारी जीवों की अपेक्षा कितने हैं ?

उत्तर : सिद्ध के जीव समस्त संसारी जीवों के अनन्तवें भाग जितने ही हैं।

१२३३) अनंतसिद्ध के जीव संसारी जीवों के अनन्तवें भाग जितने ही क्यों है ?

उत्तर : जगत में असंख्याता निगोद के गोले है। एक-एक गोले में असंख्याता निगोद है। एक-एक निगोद में अनंत-अनंत जीव होते है। उस निगोद का अनंतवाँ भाग ही मोक्ष में गया है, अतः सिद्ध के जीव अनंतवें भाग जितने कहे गये हैं।

१२३४) भाव द्वार किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपशम, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक तथा पारिणामिक, इन पाँच भावों में से सिद्ध में कौनसा भाव है, यह विचारणा करना भाव द्वार है।

१२३५) उपशम (औपशमिक) भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर : मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न हुआ भाव उपशम भाव कहलाता है।

१२३६) उपशम भाव के कितने भेद है ?

उत्तर : दो - (१) उपशम समकित, (२) उपशम चारित्र।

१२३७) क्षायिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर : आठों कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुआ भाव क्षायिकभाव कहलाता है।

१२३८) क्षायिक भाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर : नौ - (१) दान, (२) लाभ, (३) भोग, (४) उपभोग, (५) वीर्य, ये पांच लब्धियाँ, (६) केवलज्ञान, (७) केवलदर्शन, (८) क्षायिक सम्यक्त्व और (९) क्षायिक चारित्र।

१२३९) क्षायोपशमिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर : ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय तथा अन्तराय, इन चार कर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न हुआ भाव क्षायोपशमिक भाव कहलाता है।

१२४०) क्षायोपशमिक भाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर : अठारह - ४ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन, चक्षुदर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधिदर्शन, दानादि ५ लब्धियाँ, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, देशविरति चारित्र, सर्वविरति चारित्र।

१२४१) औदयिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर : आठों कर्मों के उदय से उत्पन्न हुआ भाव औदयिक भाव कहलाता है।

१२४२) औदयिक भाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर : इक्कीस - गति-४, कषाय-४, लिंग-३, लेश्या-६, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, संसारीपन।

१२४३) पारिणामिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर : वस्तु का अनादि स्वभाव या स्वाभाविक परिणमन रुप भाव पारिणामिक भाव कहलाता है।

१२४४) पारिणामिक भाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर : तीन - जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ।

१२४५) सिद्ध जीव में कौन-कौन से भाव होते हैं ?

उत्तर : दो - (१) क्षायिक, (२) पारिणामिक ।

१२४६) क्षायिक तथा पारिणामिक भावों में से क्या-क्या प्राप्त होता है ?

उत्तर : क्षायिक भाव से केवलज्ञान तथा केवलदर्शन व पारिणामिक भाव से जीवत्व प्राप्त होता है ।

१२४७) अल्पबहुत्व द्वार किसे कहते हैं ?

उत्तर : सिद्धों के १५ भेदों में से कौन-कौन से भेद एक दूसरे से अल्पाधिक है अर्थात् भेदों में परस्पर संख्या की हीनाधिकता को बताना, अल्पबहुत्व द्वार कहलाता है ।

१२४८) नपुंसकलिंग से कितने जीव मोक्ष में जाते हैं ?

उत्तर : तीनों वेदों की अपेक्षा से सबसे कम जीव नपुंसकलिंग से मोक्ष में जाते हैं ।

१२४९) नपुंसकलिंगवाले एक समय में उत्कृष्ट से कितने मोक्ष में जाते है ?

उत्तर : उत्कृष्ट से १० एक समय में जाते हैं ।

१२५०) स्त्रीलिंग से कितने सिद्ध होते हैं ?

उत्तर : नपुंसकलिंग से संख्यातगुणा अधिक स्त्रीलिंग से सिद्ध होते हैं ।

१२५१) स्त्रीलिंग से एक समय में उत्कृष्ट से कितने जीव मोक्ष में जाते हैं ?

उत्तर : उत्कृष्ट से एक समय में २० ।

१२५२) पुरुष लिंग से कितने जीव मोक्ष में जाते हैं ?

उत्तर : स्त्रीलिंग से संख्यातगुणा अधिक ।

१२५३) पुरुषलिंग से एक समय में उत्कृष्ट कितने जीव मोक्ष में जाते हैं ?

उत्तर : एक समय में उत्कृष्ट से १०८ ।

१२५४) क्या नपुंसकलिंगी मोक्ष में जाता है ?

उत्तर : १० प्रकार के जन्म नपुंसक को चारित्र का ही अभाव होने से मोक्ष नहीं होता परंतु जन्म के बाद कृत्रिमता से होनेवाले छह प्रकार के नपुंसकों को चारित्र का लाभ होने से मोक्ष प्राप्त होता है ।

१२५५) १० प्रकार के जन्म नपुंसक कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : (१) पंडक - महिला जैसा स्वभाव व वाणी हो। (२) पातिक - संभोग बिना सहज न होनेवाला। (३) क्लीब - ब्रह्मचर्य पालन में असमर्थ हो। (४) कुंभी - जिसका पुरुष चिह्न बार-बार स्तब्ध हो। (५) ईर्ष्यालु, (६) शकुनि - कबूतरादि की तरह बार-बार मैथुन सेवन करने वाला, (७) तत्कर्म सेवी - स्त्रीसंग करने के पश्चात् अवाच्य अंग चाटने वाला। (८) पाक्षिक अपाक्षिक-शुक्लपक्ष में अधिक कामोत्तेजना व कृष्णपक्ष में अल्प कामोत्तेजना वाला, (९) सौगन्धिक - अवाच्य अंग सुंघने वाला। (१०) आसक्त - स्खलन के पश्चात् भी आलिंगन कर पडा रहने वाला।

१२५६) कृत्रिम नपुंसक के ६ भेद कौन से है ?

उत्तर : (१) वर्धितक - इन्द्रिय के छेदवाला पावइआ आदि। (२) चिप्पित - जन्म पाते ही मर्दन से गलाये हुए वृषण वाला। (३) मंत्रोपहत - मंत्र प्रयोग से नष्ट पुरुषत्व वाला। (४) औषधोपहत - औषध प्रयोग से नष्ट पुरुषत्व वाला। (५) ऋषिशप्त - मुनि के श्राप से नष्ट पुरुषत्व वाला। (६) देवशप्त - देव के श्राप से नष्ट पुरुषत्व वाला।

१२५७) मनुष्य की स्त्री में से आये हुए कितने मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर : एक साथ में २० जीव मोक्ष में जाते है।

१२५८) वैमानिक देवांगना में से आये हुए कितने जीव एक मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर : एक साथ २० जीव।

१२५९) ज्योतिष देवांगना में से आये हुए कितने जीव मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर : एक साथ में २० जीव।

१२६०) भवनपति आदि पातालवासी देवों की देवांगना में से आये हुए जीव एक साथ कितने मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर : एक साथ में पांच।

१२६१) तिर्यंच स्त्री में से आये हुए कितने जीव एकसाथ मोक्ष में जीते हैं ?

उत्तर : एक साथ में १० जीव।

१२६२) तिर्यंच पुरुष से मनुष्य हुए कितने जीव एकसाथ मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर : एक साथ में १० जीव ।

१२६३) ज्योतिषी देव से मनुष्य हुए कितने जीव मोक्ष में जाते हैं ?

उत्तर : एक साथ में १० जीव ।

१२६४) भवनपति आदि पातालवासी देवों में से मनुष्य हुए कितने जीव एक साथ मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर : भवनपति व्यंतरादि पातालवासी देवों में से मनुष्य हुए १० जीव एक साथ मोक्ष में जाते हैं ।

१२६५) वैमानिक में से आये हुए कितने जीव मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर : वैमानिक से मनुष्य हुए १०८ जीव एक साथ मोक्ष जाते हैं ।

१२६६) पृथ्वीकाय एवं अप्काय से आये हुए कितने जीव मोक्ष में जाते हैं ?

उत्तर : एक साथ में ४ जीव ।

१२६७) वनस्पतिकाय में से आये हुए कितने जीव एक साथ मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर : एक साथ में ६ जीव ।

१२६८) प्रथम तीन नरक से आये हुए कितने जीव एकसाथ मोक्ष में कितने जाते हैं ?

उत्तर : प्रत्येक नरक के भिन्न भिन्न एक साथ में दस-दस जीव मोक्ष में जाते हैं ।

१२६९) चौथी नरक से आये हुए कितने जीव एक साथ मोक्ष में जाते हैं ?

उत्तर : एक साथ में ४ जीव ।

१२७०) पुरुष से पुरुष हुए कितने जीव एक साथ मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर : पुरुष से पुरुष हुए एक साथ १०८ जीव मोक्ष जाते हैं ।

१२७१) पुरुष से स्त्री तथा पुरुष से नपुंसक हुए कितने जीव एकसाथ मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर : पुरुष से स्त्री तथा नपुंसक हुए प्रत्येक दस-दस एक साथ मोक्ष में जाते हैं ।

१२७२) स्त्री से पुरुष-स्त्री-नपुंसक हुए कितने जीव एकसाथ मोक्ष में जाते हैं ?

उत्तर : स्त्रीवेद से पुरुष-स्त्री या नपुंसक हुए जीव प्रत्येक भिन्न दस-दस एकसाथ मोक्ष में जाते हैं।

१२७३) नपुंसक में से स्त्री-पुरुष-नपुंसक हुए कितने जीव मोक्ष में जाते हैं ?

उत्तर : प्रत्येक भिन्न भिन्न दस-दस जीव एक साथ मोक्ष में जाते हैं।

१२७४) जिनसिद्ध से अजिनसिद्ध कितने अधिक हैं ?

उत्तर : जिनसिद्ध अल्प है तथा अजिन सिद्ध उनसे असंख्य गुणा अधिक है।

१२७५) अतीर्थसिद्ध तथा तीर्थसिद्ध में अल्पबहुत्व कितना है ?

उत्तर : अतीर्थसिद्ध अल्प है तथा तीर्थसिद्ध उनसे असंख्यगुणा अधिक है।

१२७६) गृहस्थलिंग, अन्यलिंग तथा स्वलिंग सिद्ध जीवों में अल्प-बहुत्व कितना है ?

उत्तर : गृहस्थलिंग सिद्ध अल्प है, उनसे अन्यलिंग सिद्ध असंख्यात गुणा अधिक है, उनसे स्वलिंग सिद्ध असंख्यातगुणा अधिक है।

१२७७) स्वयंबुद्धसिद्ध, प्रत्येकबुद्धसिद्ध तथा बुद्धबोधित सिद्ध में अल्पबहुत्व कितना ?

उत्तर : स्वयंबुद्धसिद्ध अल्प है, उनसे प्रत्येकबुद्ध सिद्ध संख्यात गुणा तथा उनसे बुद्धबोधित सिद्ध संख्यातगुणा अधिक है।

१२७८) अनेकसिद्ध तथा एकसिद्ध में अल्पबहुत्व कितना है ?

उत्तर : अनेकसिद्ध अल्प है, उससे एकसिद्ध असंख्यातगुणा अधिक है।

पंद्रह प्रकार के सिद्धों का विवेचन

१२७९) सिद्धजीवों के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर : पन्द्रह - (१) जिन सिद्ध, (२) अजिन सिद्ध, (३) तीर्थ सिद्ध, (४) अतीर्थ सिद्ध, (५) गृहस्थलिंग सिद्ध, (६) अन्यलिंग सिद्ध, (७) स्वलिंग सिद्ध, (८) स्त्रीलिंग सिद्ध, (९) पुरुषलिंग सिद्ध, (१०) नपुंसकलिंग सिद्ध, (११) प्रत्येकबुद्ध सिद्ध, (१२) स्वयंबुद्ध सिद्ध, (१३) बुद्धबोधित सिद्ध, (१४) एकसिद्ध, (१५) अनेकसिद्ध।

१२८०) जिन सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : तीर्थंकर पद प्राप्त कर जो मोक्ष में जाये, वे तीर्थंकर भगवान जिनसिद्ध कहलाते हैं। जैसे ऋषभादि चौबीस तीर्थंकर।

१२८१) अजिन सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : सामान्य केवली आदि, जो तीर्थंकर पद पाये बिना मोक्ष में जाते हैं, वे अजिन सिद्ध कहलाते हैं। जैसे गौतम आदि गणधर।

१२८२) तीर्थ सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : तीर्थंकर द्वारा तीर्थ की स्थापना के पश्चात् जो सिद्ध हुए हैं, वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं। तीर्थ का अर्थ यहाँ श्रुत-चारित्र रुप धर्म है, जिसकी प्ररुपणा तीर्थंकर करते हैं। जैसे चंदनबाला आदि।

१२८३) अतीर्थ सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : धर्मतीर्थ-स्थापना से पूर्व या तीर्थ के विच्छेद होने पर अतीर्थावस्था में मुक्त होनेवाले जीव अतीर्थ सिद्ध कहलाते हैं। जैसे मरुदेवी माता आदि।

१२८४) गृहस्थलिंग सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : गृहस्थ वेष में रहते हुए जो सिद्ध होते हैं, वे गृहस्थलिंग सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - भरत आदि।

१२८५) अन्यलिंग सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : अन्य वेष अर्थात् जैन वेष के अतिरिक्त संन्यासी, जोगी, तापस आदि वेष में रहा हुआ जो मोक्ष में जाता है, वह अन्यलिंग सिद्ध कहलाता है। जैसे वल्कलचिरि आदि।

१२८६) स्वलिंग सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : श्री जिनेश्वर भगवान ने जो वेष कहा है, उसी शास्त्रोक्त वेष से मोक्ष में जानेवाला जीव स्वलिंग सिद्ध कहलाता है। जैसे सुधर्मा स्वामी आदि।

१२८७) स्त्रीलिंग सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो स्त्री शरीर से मोक्ष में जाता है, वह स्त्रीलिंग सिद्ध कहलाता है। जैसे मृगावती आदि।

१२८८) पुरुषलिंग सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो पुरुष शरीर से मोक्ष में जाये, वह पुरुषलिंग सिद्ध कहलाता है।

१२८९) नपुंसकलिंग सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो नपुंसक (कृत्रिम) शरीर से मोक्ष में जाये, वह नपुंसकलिंग सिद्ध कहलाता है।

१२९०) प्रत्येकबुद्ध सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो बिना किसी उपदेश के किसी भी पदार्थ की अनित्यता से प्रेरित होकर कर्ममुक्त बने, वह प्रत्येकबुद्ध सिद्ध कहलाता है।

१२९१) स्वयंबुद्ध सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : दूसरों के उपदेश बिना, जो स्वयं वैराग्यवासित होकर सिद्ध हुए हैं, वे स्वयंबुद्ध सिद्ध कहलाते हैं।

१२९२) बुद्धबोधित सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : बुद्ध अर्थात् गुरु द्वारा बोध को प्राप्त कर मोक्ष में जाने वाले जीव बुद्धबोधित सिद्ध कहलाते हैं।

१२९३) एक सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक समय में एक ही मोक्ष में जाये, वह एकसिद्ध कहलाता है।

१२९४) अनेक सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक समय में अनेक जीव मोक्ष में जाये, वे अनेक सिद्ध कहलाते हैं।

१२९५) सिद्ध के भेदों का वर्णन किस सूत्र में है ?

उत्तर : उत्तराध्ययन सूत्र के ३६वें अध्ययन में।

१२९६) जिन सिद्ध कौन हैं ?

उत्तर : तीर्थंकर भगवान जिनसिद्ध हैं।

१२९७) अजिन सिद्ध कौन है ?

उत्तर : तीर्थंकर पद रहित पुंडरिक गणधर आदि तथा आचार्य, मुनि आदि सामान्य केवली अजिन सिद्ध कहलाते हैं।

१२९८) तीर्थ सिद्ध कौन है ?

उत्तर : तीर्थ स्थापना के पश्चात् ही गणधर स्थापना होती है और उसके बाद ही वे मोक्ष में जाते हैं अतः गणधर एवं दूसरे साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं।

१२९९) अतीर्थ सिद्ध कौन है ?

उत्तर : तीर्थ स्थापना से पूर्व मोक्ष में जानेवाली माता मरुदेवी अतीर्थ सिद्ध है।

१३००) गृहस्थलिंग सिद्ध कौन है ?

उत्तर : भरत चक्रवर्ती ।

१३०१) अन्यलिंग सिद्ध कौन है ?

उत्तर : वल्कलचीरी तापस ।

१३०२) स्वलिंग सिद्ध कौन है ?

उत्तर : गौतमस्वामी आदि ।

१३०३) स्त्रीलिंग सिद्ध कौन है ?

उत्तर : चन्दनबाला आदि ।

१३०४) पुरुषलिंग सिद्ध कौन है ?

उत्तर : गौतमस्वामी आदि ।

१३०५) नपुंसकलिंग सिद्ध कौन है ?

उत्तर : गांगेय मुनि ।

१३०६) प्रत्येकबुद्ध सिद्ध कौन है ?

उत्तर : करकंडु मुनि ।

१३०७) स्वयंबुद्ध सिद्ध कौन है ?

उत्तर : कपिल ।

१३०८) बुद्धबोधित सिद्ध कौन है ?

उत्तर : गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी आदि बुद्धबोधित सिद्ध हैं ।

१३०९) एकसिद्ध कौन है ?

उत्तर : भगवान महावीर एकसिद्ध है, क्योंकि वे एकाकी मोक्ष में गये ।

१३१०) अनेक सिद्ध कौन है ?

उत्तर : भगवान ऋषभदेव, उनके ९९ पुत्र एवं भरत चक्रवर्ती के ८ पुत्र, कुल १०८ एक ही साथ मोक्ष गये, अतः ये अनेक सिद्ध हैं ।

१३११) गृहलिंग में एक समय में एक साथ कितने सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : चार ।

१३१२) अन्य लिंग में एक समय में कितने एकसाथ सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : दस ।

१३१३) स्वलिंग में एक समय में कितने एकसाथ सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : १०८ ।

१३१४) उत्कृष्ट अवगाहना से युगपत् एक समय में कितने सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : दो ।

१३१५) जघन्य अवगाहना से युगपत् एक समय में कितने सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : चार ।

१३१६) मध्यम अवगाहना से युगपत् एक समय में कितने सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : १०८ ।

१३१७) उर्ध्वलोक में (मेरुचूलिका आदि पर) कितने युगपत् सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : चार ।

१३१८) तिर्यग्लोक से एक समय में कितने युगपत् कितने सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : १०८ ।

१३१९) समुद्र में एक समय में कितने युगपत् सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : दो ।

१३२०) नदी जलाशय में एक समय में युगपत् कितने सिद्ध हो सकते हैं ?

उत्तर : तीन ।

१३२१) महाविदेह क्षेत्र की प्रत्येक विजय में से युगपत् कितने मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर : प्रति विजय में से युगपत् बीस ।

१३२२) नंदनवन से युगपत् कितने मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर : युगपत् चार ।

१३२३) पांडुकवन में से युगपत् कितने मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर : युगपत् दो ।

१३२४) प्रति कर्मभूमि में से युगपत् कितने मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर : युगपत् १०८ ।

१३२५) प्रति अकर्मभूमि में से युगपत् कितने मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर : युगपत् दस ।

१३२६) उत्सर्पिणी के तीसरे आरे में युगपत् कितने मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर : युगपत् १०८ ।

१३२७) उत्सर्पिणी के पहले, दूसरे, चौथे, पांचवें तथा छठ्ठे आरे में युगपत् कितने मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर : युगपत् दस ।

१३२८) अवसर्पिणी के चौथे आरे में युगपत् कितने मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर : युगपत् १०८ ।

१३२९) अवसर्पिणी के पांचवें आरे में युगपत् कितने मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर : युगपत् २० जीव ।

१३३०) अवसर्पिणी के पहले, दूसरे, तीसरे व छठ्ठे आरे में कितने मोक्ष जा सकते हैं ?

उत्तर : युगपत् दस जीव ।

१३३१) एक समय में सिद्ध हो तो कितने जीव सिद्ध होते हैं ?

उत्तर : एक समय में जीव मोक्ष में जाय तो १०३-१०४-१०५, १०६-१०७ अथवा १०८ की संख्या में से कोई भी संख्या वाला जा सकता है। पश्चात् अवश्य विरह पड़ता है ।

१३३२) दो समय में मोक्ष में जाय तो कौनसी संख्या वाले जा सकते हैं ?

उत्तर : ९७-९८-९९-१००-१०१ अथवा १०२ में से कोई भी संख्या वाले जीव दो समय में मोक्ष जा सकते हैं, फिर अवश्य अंतर पड़ता है ।

१३३३) तीन समय तक मोक्ष जाय तो कौन सी संख्यावाले जा सकते हैं ?

उत्तर : ८५ से ९६ की संख्या में से कोई भी संख्यावाले जीव मोक्ष में जा सकते हैं । फिर अवश्य अंतर पड़ता है ।

१३३४) चार समय तक मोक्ष में जाय तो कितने ?

उत्तर : ७३ से ८४ तक की संख्या में से कोई भी संख्यावाले जा सकते हैं। फिर अवश्य अंतर पड़ता है ।

१३३५) पांच समय तक मोक्ष में जाय तो कितने ?

उत्तर : ६१ से ७२ तक की कोई भी संख्या वाले जा सकते हैं। फिर अवश्य विरह होता है।

१३३६) छह समय तक मोक्ष में जाय तो कितने ?

उत्तर : ४९ से ६० तक की कोई भी संख्यावाले जा सकते हैं। फिर अवश्य अंतर पड़ता है।

१३३७) सात समय तक मोक्ष में जाय तो कितने ?

उत्तर : ३३ से ४८ तक की संख्या में से कोई भी संख्यावाले जा सकते हैं। फिर अवश्य अंतर पड़ता है।

१३३८) आठ समय तक मोक्ष में जाय तो कितने ?

उत्तर : १ से ३२ तक की संख्या में से कोई भी संख्यावाले मोक्ष जा सकते हैं। फिर अवश्य अंतर पड़ता है।

१३३९) एक निगोद में कितने जीव होते हैं ?

उत्तर : एक निगोद में अनंत जीव होते हैं। (१) संज्ञी मनुष्य संख्याता, (२) असंज्ञी मनुष्य असंख्याता, (३) नारकी असंख्याता, (४) देवता असंख्याता, (५) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च असंख्याता, (६) बेइन्द्रिय जीव असंख्याता, (७) तेइन्द्रिय जीव असंख्याता, (८) चउरिन्द्रिय जीव असंख्याता, (९) पृथ्वीकाय असंख्याता, (१०) अप्काय असंख्याता, (११) तेउकाय असंख्याता, (१२) वायुकाय असंख्याता, (१३) प्रत्येक वनस्पतिकाय असंख्याता। इन समस्त जीवों को इकट्ठा कर जोडने पर उससे भी सिद्ध के जीव अनंतगुणा है। सुई के अग्रभाग पर रहे हुए छोटे से छोटे कण में उससे भी अनंतगुणा अधिक जीव है। यह विचारणा बादर निगोद जीवों की अपेक्षा से है।

१३४०) जगत् में निगोद के गोले कितने हैं ?

उत्तर : निगोद के असंख्य गोले है। एक-एक गोले में असंख्य निगोद है तथा एक-एक निगोद में अनन्त-अनन्त जीव है।

१३४१) अब तक मोक्ष में कितने जीव गये हैं ?

निगोद से मोक्षपर्यंत आत्मा का विकासक्रम

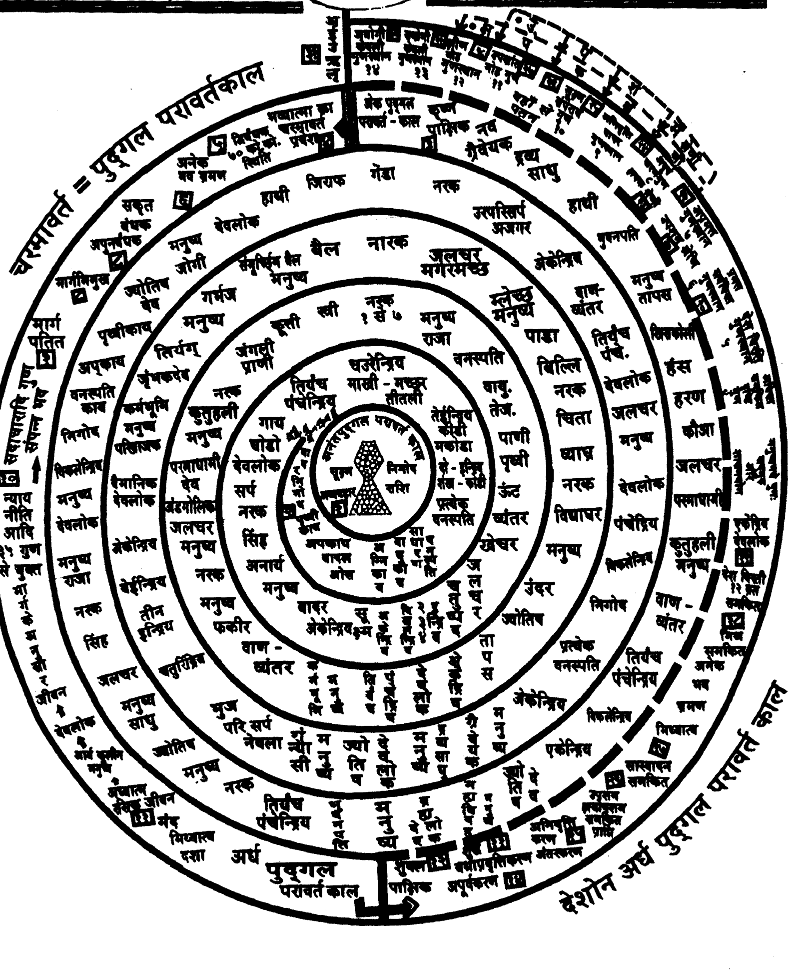

उत्तर : एक निगोद का अनन्तवाँ भाग ही मोक्ष में गया है।

१३४२) सूक्ष्म निगोद के जीवों को कितनी-वेदना होती है ?

उत्तर : सूक्ष्म निगोद में रहे हुए जीव प्रति समय अनंत-अनंत वेदना भोगते हैं। उसे एक दृष्टान्त से इस प्रकार समझ सकते हैं कि सातवी नरक का उत्कृष्ट आयुष्य ३३ सागरोपम है। उसमें जितने समय (असंख्याता) होते हैं, उतनी ही बार कोई जीव सातवीं नरक में ३३ सागरोपम की आयुष्यवाला नारकी रुप में उत्पन्न हो। वह सब दु:ख इकट्ठा करे, उससे भी अनंतगुणा दु:ख और वेदना एक समय में एक निगोद के जीव को होती है।

१३४३) जीवादि नवतत्त्वों को जानने का क्या फल है ?

उत्तर : जीवादि नवतत्त्वों का स्वरुप समझने वाले जीव को सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

१३४४) सम्यक्त्व प्राप्त होने का क्या फल है ?

उत्तर : जिन जीवों ने अंतर्मुहूर्त्त मात्र भी सम्यक्त्व का स्पर्श कर लिया है, उनका संसार में परिभ्रमण केवल अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल जितना ही शेष रहता है। अर्थात् अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल के अन्दर ही वह जीव अवश्यमेव सिद्धत्व को प्राप्त कर लेता है।

१३४५) पुद्गल परावर्तन काल किसे कहते हैं ?

उत्तर : अनन्त उत्सर्पिणी तथा अनन्त अवसर्पिणी बीत जाने पर एक पुद्गल परावर्तन काल होता है।

१३४६) नवतत्त्व जानने का सार क्या है ?

उत्तर : भव्य जीव इसका स्वाध्याय करके, जिनेश्वर प्ररुपित तत्त्व पर श्रद्धान करके विशुद्ध चारित्र पालन द्वारा मोक्ष को प्राप्त करें, यही नवतत्त्व के पठन-पाठन का सार है।

१३४७) मोक्ष तत्त्व जानने का क्या उद्देश्य है ?

उत्तर : मोक्ष तत्त्व को जानने के बाद आत्मा विचार करे कि परमात्मा भी कभी हमारी जैसी आत्मा ही थे लेकिन अपने पुरुषार्थ से, अपने आत्मबल

से, अपनी करूणा भावों से संसार को छोड़कर आगार से अणगार बने और बहिरात्मा से अंतरात्मा बन परमात्म पद को प्राप्त किया। परन्तु मैं अभी तक इस संसार के कीचड़ में फँसा हुआ हूँ, मैं कब अपने विभाव दशा से विमुख होकर स्वभाव दशा में आऊंगा ? कब पर को छोड़कर स्व में रमण करुंगा ? मैं भी परमात्मा की तरह स्व में रमण करते-करते परम पद को प्राप्त कर, अपने स्वरूप को अपनी मूल स्थिति को प्राप्त करूँ, अपने आभ्यंतर शत्रु काम-क्रोधादि का नाश करूँ, ऐसी विचारणा कर मोक्ष में पहुँचने की जिज्ञासा रखना, यही इस मोक्ष तत्त्व को जानने का उद्देश्य है ।

●

हमारे प्रकाशन

प्रवचन साहित्य

उग जाग मुसाफिर भोर भई	(अप्राप्य)
अमर भये ना मरेंगे	(अप्राप्य)
बीती रजनी जाग जाग	(अप्राप्य)
जय सिद्धाचल	(अप्राप्य)
तीर्थंकर तारणहार रे	(अप्राप्य)
मणि मंथन / मणिप्रभसागर	३० रुपये
जागरण / मणिप्रभसागर	३० रुपये
विद्युत् तरंगे / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	३० रुपये
नवप्रभात / मणिप्रभसागर	२५ रुपये
पाथेय / आचार्य जिनकान्तिसागरसूरि	१५ रुपये
वक्त की आवाज / मणिप्रभसागर	५ रुपये
अहम् कोऽस्मि / मणिप्रभसागर	५ रुपये
अनुगूंज / आचार्य जिनकान्तिसागरसूरि	३० रुपये

काव्य साहित्य

चिंतन चक्र	(अप्राप्य)
अमीझरणा	(अप्राप्य)
पूजन सुधा	(अप्राप्य)
प्रार्थना / संकलन	१ रुपये
वंदना	(अप्राप्य)
बज उठी बांसुरी	(अप्राप्य)
समर्पण	(अप्राप्य)
चौबीशी	(अप्राप्य)
शत्रुंजय स्तवनावली	(अप्राप्य)

संगीत के स्वर

स्तुति स्तवन सज्झाय संग्रह	(अप्राप्य)
ऋषिदत्ता रास / मणिप्रभसागर	१० रुपये
मलयसुंदरी रास / मणिप्रभसागर	२० रुपये
पूजन वाटिका / मणिप्रभसागर	५० रुपये
नाच उठा मन मोर / मणिप्रभसागर	४० रुपये
सुधारस / मणिप्रभसागर	१० रुपये
प्रतिध्वनि / मणिप्रभसागर	१० रुपये

कथा साहित्य

राही और रास्ता	(अप्राप्य)
अधूरा सपना	(अप्राप्य)
इनसे शिक्षा लो	(अप्राप्य)
गुरुदेव की कहानियाँ भाग-१, २	(अप्राप्य)
भीगी भीगी खुश्बू	(अप्राप्य)
दिशा बोध	(अप्राप्य)
जटाशंकर / मणिप्रभसागर	२५ रुपये
स्वप्न दृष्टा / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	२० रुपये
खुश्बू कहानियों की / मुनि मनितप्रभसागर	८० रुपये

इतिहास

दादा चित्र संपुट	(अप्राप्य)
नाकोड़ा तीर्थ का इतिहास	(अप्राप्य)
अनुभूति अभिव्यक्ति	(अप्राप्य)
क्षमाकल्याणचरित्रम्	(अप्राप्य)
करूणामयी माँ	
जैन तीर्थ परिचायिका	१०० रुपये
तस्मै श्री गुरवे नमः / मणिप्रभसागर	१०० रुपये
गुरुदेव / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभा श्री	३० रुपये

कुशल गुरुदेव / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	३० रुपये
जहाज मंदिर का इतिहास / मणिप्रभसागर	५ रुपये
गच्छ गौरव गाथा / मुनि मनितप्रभसागर	१० रुपये

तत्त्वज्ञान

पंच प्रतिक्रमण विधि सहित	५० रुपये
पंच प्रतिक्रमण अर्थ सहित	८० रुपये
पंच प्रतिक्रमण सूत्र (पाठशाला संस्करण)	२० रुपये
दो प्रतिक्रमण सूत्र (पाठशाला संस्करण)	१० रुपये
दो प्रतिक्रमण विधि सहित	भेंट
दो प्रतिक्रमण सूत्र (अंग्रेजी) / अनु. मनितप्रभसागर	३० रुपये
प्यासा कंठ मीठा पानी / मुनि मनितप्रभसागर	१५० रुपये
जीव विचार प्रकरण सार्थ / मुनि मनितप्रभसागर	६० रुपये
प्रथम कर्मग्रन्थ सार्थ / मुनि मनितप्रभसागर	८० रुपये
नवतत्त्व प्रकरण सार्थ / साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री	६० रुपये
प्रीत प्रभु से कीजिये / साध्वी विज्ञांजनाश्री	

शोध प्रबन्ध

द्रव्य विज्ञान / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	५० रुपये
सूत्रकृतांग का दार्शनिक अध्ययन / साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री	१५० रुपये

विविध

विहार डायरी / मणिप्रभसागर	८० रुपये
स्तोत्र वाटिका / संकलन	२० रुपये
प्रव्रज्या योग विधि / सं. मणिप्रभसागर	३० रुपये
दीक्षा रंगशाला (भाग १ से ८) / मिश्रीमल बोथरा	२० रुपये प्रत्येक
सुप्रभातम् / संकलन	भेंट
भव आलोचना / मुनि मनितप्रभसागर	५ रुपये
क्षमापना / मुनि मनितप्रभसागर	५ रुपये

मिच्छामि दुक्कडम् / मुनि मनितप्रभसागर ५ रुपये
मित्ती में सव्वभूएसु / मुनि मनितप्रभसागर ५ रुपपये
जैन धर्म विज्ञान के आलोक में / डॉ. एम. आर. गेलडा १०० रुपये
जहाज मंदिर मासिक-प्रकाशन
पंचाग का प्रतिवर्ष प्रकाशन

प्रकाशन की प्रक्रिया में

दादावाडी दर्शनम्
बारसा सूत्र (सचित्र)
श्रमणाचार
देवद्रव्यादि विचार
प्रवाह
जैन धर्म और विज्ञान
मन के घोड़े की थामे लगाम
तप विधि संग्रह

लेखन की प्रक्रिया में

आचारांग सूत्र सविवेचन
चैत्यवंदन भाष्य सार्थ
गुरूवंदन भाष्य सार्थ
पच्चक्खाण भाष्य सार्थ
दण्डक प्रकरण सार्थ
लघु संग्रहणी प्रकरण सार्थ

भगवान श्री केशरियानाथजी

गज मंदिर केसरियाजी

जहाज मंदिर - मांडवला